शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 31 | अक्टूबर-दिसंबर 2015 | 200 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ॰ हरिशरण वर्मा
एफ-120, सेक्टर 10
डी॰एल॰एफ॰ (के॰एल॰ मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल 07838090237

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन :
व्यक्तिगत : पाँच हज़ार रुपए
संस्थागत : पाँच हज़ार रुपए
वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) पूर्व प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के॰एम॰मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ॰ बाबूराम, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
डॉ॰ रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
डॉ॰ दामोदर खड़से, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
प्रो॰ शंकर बुंदेले, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती
डॉ॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
डॉ॰ पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ हरेराम पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
डॉ॰ श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं॰वि॰, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ संतोषकुमार गौड़, एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ घनश्याम अरोरा, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)
डॉ॰ सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना॰ महा॰, मेरठ
डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, सहायक प्राध्यापक अँग्रेजी, शासकीय महाराजा पी॰जी॰ महा॰, छतरपुर (म॰प्र॰)

 ISSN 0975-735X

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाज़ियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ सुचित्राा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग,
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰,
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001

डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्राचार्य,
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन,
भानवारथल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰) मो॰ 09425386234

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

कविता यादव
पुत्री श्री सुनिलकुमार,
ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली (गुड़गाँव)

प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावडू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

ISSN 0975-735X

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰
09423933402

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको,
अहमदनगर 414003
09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
09423017017

प्रा. डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे,
तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी,
नासिक 422004 (महा॰)
09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट,
नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

प्रा. डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेज़ी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज,
अकोला (महा॰)

प्रा॰ दत्तात्राय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, ज़िला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
ज़िला जालना (महा॰) 431212
09765944586

डॉ॰ भरत त्रयंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
ज़िला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर,
नासिक (महा॰) 422006
09850760866

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
09011449636

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
ज़िला नासिक (महा॰)

प्रा. करुणा दत्तात्राय अहिरे
व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा. डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. ज़िला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
ज़िला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा. डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर,
धुले 424002

प्रा. डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

ISSN 0975-735X

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी,
पुणे 411058
08087612123

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय,
नवापुर, ज़िला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी,
पुणे-411046

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
ज़िला धुले (महा॰)

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड,
सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

सुश्री मीनल वार्वे
बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिन्दपुर, तह॰ नेवासा
ज़िला अहमदनगर (महा॰)

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰)
मो॰ 09011444059

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर,
तहसील यावल (जलगाँव)

प्रो॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील ज़िला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा॰) 424002
099923811609

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता,
ज़िला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
ज़िला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट,
पुणे 412101
मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब,
नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महा॰
डोंगर कठोरे, यावल,
ज़िला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
09850947267

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड, पुणे 411019 महाराष्ट्र
09420848635, 07276268922

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी, बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam, Chennai-600100

 ISSN 0975-735X

संपादकीय

क्या है आतंकवाद

आतंकवाद को प्रायः ऐसे विद्रोही और उग्रवादी संगठनों तक ही सीमित करके देखा जाता है, जो किसी देश के एक भाग या कुछ विशेष भागों में अपनी राजनीतिक माँगों को मनवाने के लिए हिंसा का मार्ग अपना लेते हैं। उस क्षेत्र में विभिन्न नामों के कुछ उग्रवादी संगठन बन जाते हैं, जो अपनी माँगों को सरकार से मनवाने के लिए अपहरण और हत्याएँ करते हैं, बैंक डकैतियाँ डालते हैं, बम विस्फोट तथा अन्य आपराधिक वारदातें करते हैं। ऐसी उग्रवादी कार्रवाईयाँ कभी क्षेत्रीय आज़ादी, कभी धर्म, कभी राजनीतिक व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव, कभी भाषाई और सीमाई समस्याओं को लेकर होती हैं। जो भी हो, लेकिन तथ्य यही है कि आतंकवाद चाहे जिस श्रेणी का हो, उसका लक्ष्य आतंक फैलाकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना ही होता है।

हमने आतंकवाद को तनिक विस्तृत संदर्भों में देखने, परखने और समझने की कोशिश की है। हमने इसके क्षेत्र को उन आतंकवादी कार्रवाइयों तक भी व्यापक कर दिया है, जो किसी देश की सत्ता की ओर से जनता पर की जाती हैं। युद्ध के समय सेना इसलिए भी आतंक फैलाती है, ताकि दूसरा पक्ष हथियार डालने तथा अपनी पराजय स्वीकार करने के लिए विवश हो जाए। दूसरे विश्वयुद्ध के समय जापान के शहर हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर लाखों लोगों को मारना और आतंक फैलाना इसी 'युद्ध आतंकवाद' की श्रेणी में आता है। सेनाओं के द्वारा किसी देश की जनता पर अमानवीय अत्याचार करके विद्रोहों को दबाने के लिए आतंक फैलाना भी आतंकवाद की परिधि में आता है। बांग्लादेश में पाकिस्तान के पूर्व शासक याहिया खाँ की सैनिक कार्रवाइयों के दौरान हमने देखा कि उसने अत्यधिक बर्बरता से पूर्वी बंगाल के निर्दोष लोगों का क़त्लेआम किया। हज़ारों महिलाओं के साथ बलात्कार किए गए। छात्रों और बुद्धिजीवियों को गोलियों से भूना गया। उद्देश्य एक ही था कि आतंक और अत्याचार से घबराकर विद्रोही हथियार डाल दें और राज्य की सैनिक शक्ति से टकराने का साहस न करें।

ऐसे ही आतंक की स्थिति वियतनाम के युद्ध में देखी गई, जहाँ एक पक्ष ने दूसरे पक्ष की जनता को आतंकित करने के लिए जैविक एवं रासायनिक हथियारों का अंधाधुंध प्रयोग किया। हज़ारों एकड़ उपजाऊ धरती को केवल इसलिए बंजर बना दिया गया, हज़ारों मीलों में फैले हुए जंगलों को इसलिए तहस-नहस कर दिया गया ताकि प्रदूषण और भुखमरी फैले, लोगों का जीना मुश्किल हो जाए और वे चुपचाप सिर झुकाने के लिए विवश हो जाएँ। कई बार विजयी सेना पराजित देश की जनता के साथ जो अत्याचार करती है, वह भी आतंकवाद

का ही एक रूप है। वह अपनी शक्ति का अनियंत्रित प्रदर्शन इसलिए करती है ताकि लोग इतने आतंकित हो जाएँ कि भविष्य में सिर उठाने का साहस ही न कर सकें। जैसे ब्रिटेन ने भारत पर विजय प्राप्त करने के बाद यहाँ के लोगों के साथ अमानवीय अत्याचार किए ताकि भारतीय भविष्य में विद्रोह करने का साहस न कर सकें।

अन्याय पर आधारित ये सारे हथकंडे, चाहे वे कुछ संगठनों की ओर से हों, अथवा सेना या सरकार की ओर से, आतंकवाद की परिभाषा में ही आने चाहिए; क्योंकि इनके द्वारा निर्दोष एवं शांतिप्रिय जनता को हताहत व आतंकित करके अपने राजनीतिक हितों को पूरा करने की कोशिश की जाती है। विश्व-स्तर पर सदियों पहले से ही यह सिद्धांत सर्वमान्य है कि युद्ध या टकराव की स्थिति में संघर्षरत पक्षों की सामरिक शक्तियाँ ही एक-दूसरे के विरुद्ध जूझेंगी, जनसाधारण पर हमले नहीं होंगे, उन्हें चैन और शांति के साथ रहने दिया जाएगा। फिर सेनाओं और संगठनों द्वारा जनजीवन से क्रूर खिलवाड़ किए जाने का कोई औचित्य भी नहीं। यदि ऐसी खिलवाड़ की जाती है तो उसे आतंकवाद की परिधि में ही रखा जाएगा।

मान लीजिए कि क्षेत्रीय आज़ादी अथवा धार्मिक या राजनीतिक स्वतंत्रता की आवाज़ उठाने वाले संगठन अपने देश की पुलिस या सैनिक शक्ति से जूझ रहे हैं, अपने देश की सरकारों से टकरा रहे हैं, तो अधिक-से-अधिक उन्हें विद्रोही माना जाएगा, किंतु जब ये संगठन जनसाधारण की हत्याएँ करेंगे अपहरण करेंगे, डकैतियाँ डालेंगे, बलात्कार जैसे घिनौने अपराध करेंगे तो वे आतंकवाद की सीमा में प्रवेश कर जाएँगे। ठीक इसी तरह जब एक देश की सेना, दूसरे देश की सेना से रणभूमि में संघर्षरत रहेगी, अथवा जब एक देश की सेना अपने ही देश में उठे विद्रोह को कुचलने के लिए बग़ावत कर रहे संगठनों के ख़िलाफ़ कार्यवाही करेगी तो उसके पास ऐसा करने के लिए उचित तर्क रहेंगे, किंतु जब वह जनसाधारण पर अत्याचार करने लगेगी तो उसकी यह कार्यवाही आतंकवाद की सीमा में आ जाएगी। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अवैधानिक तथा हिंसक तरीक़े अपनाकर जनजीवन को अशांत बनाना ही, वास्तव में, आतंकवाद है। सैनिक युद्धों में जन-धन की हानि होती है, किंतु उसे आतंक का नाम नहीं दिया जाता। यह रक्तपात उस समय आतंक का रूप धारण करता है, जब जनसामान्य का जीवन, विशेष रूप से निर्दोष लोगों का जीवन, प्रभावित होने लगता है।

राजनीतिक आतंकवाद :

एक और उदाहरण के माध्यम से उक्त तथ्यों का विश्लेषण कीजिए। मान लीजिए कि चुनाव के समय कुछ अवसरवादी राजनीतिक दल अपनी सफलता सुनिश्चित करने के लिए मतदाताओं की धार्मिक भावनाओं को उभारने का प्रयास करते हैं, तो वे लोकतांत्रिक मूल्यों की अवहेलना के दोषी तो अवश्य माने जाएँगे, किंतु आतंक फैलाने के अपराधी नहीं। आतंक फैलाने के अपराधी वे तब माने जाएँगे, जब वे योजना बनाकर सांप्रदायिक दंगे भड़काएँगे और राजनीतिक लाभ उठाने का प्रयास करेंगे। वे जनजीवन में तथा संप्रदाय-विशेष में आतंक फैलाकर अपने राजनीतिक हित पूरे करने के दोषी होंगे। ऐसी सामूहिक हिंसक कार्रवाइयाँ भी

 ISSN 0975-735X

आतंकवाद की सीमा में आएँगी, जिनमें शक्तिशाली वर्ग अपनी शक्ति तथा प्रभाव से कमज़ोर वर्गों के लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन कर रहे हैं। हमारा तर्क है कि जब विद्रोही संगठनों द्वारा जनसाधारण के प्रति की जा रही हिंसा को आतंकवाद की परिधि में रखा जा सकता है तो फिर शासन, सेना, राज्य तथा राजनीतिक दलों द्वारा की गई ऐसी हर हिंसा को आतंकवाद माना जाना चाहिए, जिसके द्वारा आम आदमी या समाज के किसी वर्ग को आतंकित कर अपने स्वार्थों की पूर्ति की जा रही हो और इन हिंसक कार्यवाहियों से मानव-अधिकारों का हनन हो रहा हो। आज विश्व में कतिपय आतंकवादी संगठनों द्वारा ही आतंक नहीं फैलाया जा रहा है, बल्कि राज्यों की सैनिक शक्तियाँ भी इसकी दोषी विशेष रूप से यह स्थिति तो बहुत ही चिंताजनक है कि एक देश दूसरे देश को तोड़ने के लिए आतंकवादी संगठनों को हथियार तथा पैसे की मदद देकर बढ़ावा दे रहा है। जैसे पाकिस्तान ने भारत में कश्मीर और पंजाब तथा अफ़ग़ानिस्तान में आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा दिया है। कुछ देशों की जासूसी एजेंसियाँ, जिनमें पाकिस्तान की आई॰एस॰आई॰ है, इज़राइल की मौसाद तथा अमरीका की सी॰आई॰ए॰ है, ऐसी ही ख़तरनाक भूमिका अदा कर रही हैं। इस तरह विद्रोही संगठनों से लेकर राज्य-स्तर तक एक भयंकर आतंक पूरी दुनिया में व्याप्त है। प्रश्न यह है कि इस स्थिति से मुक्ति कैसे मिले?

आतंकवाद का इतिहास नया नहीं है। प्राचीनकाल में भी प्रत्येक शक्तिशाली क़बीला अपने से निर्बल क़बीले के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाहियाँ करके आतंक फैलाता था। लेकिन उस समय तक यह आतंकवादी प्रवृत्ति अपने लिए अधिक शक्ति तथा सुख-सुविधाएँ जुटाने के लिए थी, किसी राजनीतिक उद्देश्य से नहीं थी। सामंती युग में भी आतंकवादी हिंसा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। लेकिन तब ये इतने सुनियोजित नहीं थे और इनका क्षेत्र भी इतना विस्तृत नहीं था, जितना अब है। तब युद्ध भी एक सिद्धांत से बँधा था और उन सिद्धांतों को बहुत मुश्किल से तोड़ा जाता था।

आधुनिक आतंकवाद तो बीसवीं शताब्दी की शस्त्र-सभ्यता के गर्भ से पैदा हुआ है। इसकी जड़ें मजबूत करने और फैलाने के लिए उचित वातावरण देने में वर्तमान युग का पश्चिमी उपनिवेशवाद सबसे अधिक उत्तरदायी है। पश्चिमी देशों ने अपनी आक्रामक गतिविधियों और सामरिक शक्तियों के सहारे अपनी सीमाएँ बेतहाशा बढ़ाईं। विश्व के अधिकतर देशों को पराजित करके उन्हें एक विस्तृत साम्राज्य में विलीन कर लिया, लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जनक्रांति के बाद जब साम्राज्यवादी शक्तियों को ग़ुलाम देशों से वापस लौटना पड़ा तो वे उन स्वतंत्र देशों को मुक्त करते समय उनमें ऐसी कतर-ब्यौंत कर गए, जिनके कारण आतंकवादी संगठनों को बनने और हिंसात्मक कार्रवाई करने का अनुकूल वातावरण मिला। भारत और फिलिस्तीन को उदाहरण के रूप में लें। अगर भारत का विभाजन न हुआ होता तथा फिलीस्तीन की धरती पर अँग्रेज़ साम्राज्य ने विष के बीज न बोए होते तो क्या भारत में कश्मीरी और पंजाबी आतंकवाद और फिलिस्तीन में अरब आतंकवाद पैदा होता?

आतंकवादी हिंसा को जन्म देने के लिए हमारे युग की दो परस्पर विरोधी राजनीतिक

विचारधाराओं की भूमिका भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। ये विचारधाराएँ, जो समाजवादी दर्शन तथा पूँजीवादी लोकतंत्र के नाम से जानी जाती हैं, लंबे समय से एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्षरत रही हैं। सब जानते हैं कि इन्हीं विचारधाराओं के कारण पूरी दुनिया दो विरोधी ख़ेमों में बँट गई थी। एक समाजवादी ख़ेमा था, दूसरा पूँजीवादी लोकतंत्र का ख़ेमा था। समाजवादी ख़ेमे ने जहाँ प्रचार एवं शक्ति के सहारे विश्व-भर में अपने-आपको फैलाना चाहा, वहीं पूँजीवादी लोकतंत्र ने उसको रोकने के लिए शक्ति का प्रयोग किया। दोनों विचारधाराओं के बीच चलनेवाले इस शीतयुद्ध ने दोनों पक्षों को घातक युद्ध-संबंधी हथियारों के उत्पादन के लिए उकसाया। दोनों ही पक्षों ने भयंकर और विनाशकारी हथियारों का भंडार जमा किया। दुनिया को बारूद के एक ऐसे ढेर पर लाकर दिया गया, जहाँ एक छोटी-सी चिंगारी भी उसे भक से उड़ा देने के लिए काफ़ी थी। दुनिया ने दोनों विचारधाराओं में बँटे उन उग्रवादी संगठनों को पहचान लिया, जिन्होंने दुनिया के बहुत से भागों में ज़बरदस्त आतंक फैलाया था। जर्मनी की रैड आर्मी तथा इटली के दक्षिणपंथी अराजकदल इसी वर्ग में आते है। भारत में नक्सलवादी आंदोलन भी इसी की एक कड़ी है। पूँजीवादी ख़ेमे ने भी समाजवादी विचारधारा को रोकने के लिए गुप्तचर एजेंसियों तथा अन्य विध्वंसक शक्तियों को संगठित किया। उन्होंने समाजवादी सत्ताओं का तख़्ता पलटने तथा उनके नेताओं की हत्याएँ कराने में आतंकवादी तरीक़ों का प्रयोग किया। अफ़ग़ानिस्तान, क्यूबा, वियतनाम आदि के उदाहरण याद कीजिए।

स्पष्ट है कि आधुनिक आतंकवाद को जन्म देनेवाले अनेक कारण रहे हैं। आतंकवाद की यह समस्या अब इस सीमा तक विश्वव्यापी हो गई है कि कोई भी देश अकेले अपने बलबूते पर इससे छुटकारा नहीं पा सकता। विडंबना यह है कि लोकतंत्र के इस युग में लोकतांत्रिक मूल्यों की दुहाई देनेवाले कई देश या तो आतंकवाद को परोक्ष रूप से स्वयं बढ़ावा दे रहे हैं अथवा चोरी-छिपे उन शक्तियों को आगे बढ़ा रहे हैं, जो आतंकवाद की प्रतीक हैं। आधुनिक दुनिया को सबसे पहले ऐसे देशों की ओर संकेत करना होगा, जो आतंकवादी संगठनों का पोषण करके अन्य देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहे हैं। निष्पक्ष भाव से संगठित होकर ऐसे सभी देशों का राजनीतिक एवं आर्थिक बहिष्कार करना होगा, ताकि उनके द्वारा पोषित आतंकवाद से निबटा जा सके, यह भी सुनिश्चित करना होगा कि आतंकवादी संगठनों को किसी भी वैध-अवैध तरीक़े से घातक हथियार उपलब्ध न हो सकें। हथियारों की उपलब्धता रुकेगी तो आतंकवाद की धारा टूटेगी, किंतु यह हो कैसे? हिंसा भड़काने वाले विभिन्न देश अपने-अपने स्वार्थों से जुड़े हैं और उन पर रोक लगानेवाली शक्तियाँ अपनी स्वार्थपूर्ण राजनीति के कारण मौन हैं।

उपाय क्या है :

आतंकवाद की समस्या का निदान अंतर्राष्ट्रीय तालमेल से ही किया जा सकता है। बाहरी हस्तक्षेप के कारण जिन देशों में हिंसक गतिविधियाँ चल रही हैं, वहाँ केवल प्रशासनिक सतर्कता अथवा सुरक्षातंत्र के बल पर उन पर काबू पाना मुश्किल है। इन पर काबू पाने के लिए

 ISSN 0975-735X

विभिन्न देशों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना होगा, प्रशासनिक स्तर पर भी पर्याप्त सावधानी रखनी होगी। आतंकवादी तत्त्वों को समाप्त करने के लिए पुलिस एवं सुरक्षाबल प्रायः अपनी सीमा से बाहर चले जाते हैं, इससे निर्दोष नागरिक भी उनके अत्याचारों की ज़द में आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रशासन को आतंकवादियों के विरुद्ध जनसमर्थन नहीं मिलता या बहुत कम मिलता है। सुरक्षाबलों तथा पुलिस पर जनता का विश्वास नहीं रहता। ऐसी शिकायतें मिलने पर दोषी सुरक्षाकर्मियों के विरुद्ध भी वही कार्यवाही की जाए, जो ऐसे अपराधों में जनसाधारण के साथ की जाती है। ऐसा बिलकुल न सोचा जाए कि इससे पुलिस व सुरक्षाकर्मियों का मनोबल टूटेगा।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करनेवाले मानव-अधिकार संगठनों को भी थोड़ी सावधानी रखनी होगी। जब भी आतंकवादी तत्त्वों के विरुद्ध पुलिस या सुरक्षाबल शक्ति का प्रयोग करते हैं, ये संगठन मानव-अधिकारों के हनन का सवाल खड़ा कर देते हैं। उन संगठनों की नज़र आतंकवादी हिंसा के कारण होनेवाले मानव-अधिकारों के उल्लंघन की ओर नहीं जाती। उनकी इस नीति से आतंकवादी संगठनों को नैतिक बल मिलता है और वे अधिक प्रबल हो जाते हैं।

जहाँ तक कुछ सरकारों के आतंक का प्रश्न है, इसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा गुटनिरपेक्ष देशों के संगठन को कठोर बनना होगा। इसी के साथ दबाव में चुप रहने अथवा अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए अत्याचार करनेवाले पक्ष का समर्थन करने की नीति त्यागनी होगी। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो आतंकवादी हिंसा को रोक पाना बहुत कठिन है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

संपादक

अनुक्रम

नवगीत परंपरा और नवगीतकार शचींद्र भटनागर/ **डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया** 15
भारतेंदु मंडल और राधाचरण गोस्वामी के हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध
डॉ॰ अशोक उपाध्याय 22
गढ़वाली लोकगाथाओं का लोकसाहित्यिक स्वरूप/ डॉ॰ वीरेंद्रसिंह बर्त्वाल 27
गढ़वाली लोकगीतों में नारी/ **कुमारी सुमन** 32
छंदशास्त्र को डॉ॰ गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र' की देन/ **डॉ॰ नूतन राय** 38
प्रेमचंद और स्वयंप्रकाश की कहानियों का तुलनात्मक विवेचन/ **डॉ॰ मनोरंजनकुमार** 42
'उर्वशी' में संस्कृति-निरूपण/ **सरिता** 48
केदारनाथ अग्रवाल की कविता : दृष्टि और सृष्टि/ **डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया** 58
अमावस की रात कथ्य और शिल्प/ **मोनिका** 64
वर्तमान संदर्भ में मीरा की प्रासंगिकता/ **डॉ॰ बाबूराम** 70
समकालीन हिंदी कहानी : पारिवारिक मान्यताएँ और नारी-शोषण/ **डॉ॰ ऋषिपाल** 73
अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक जनजीवन/ **प्रो॰ शर्मिला सक्सेना** 77
सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी/ **डॉ॰ रणधीर सिंह** 85
'बच्चों के मंचीय नाटक' में चित्रित समसामयिक समस्याएँ : एक अध्ययन
प्रो॰ गणेश दयाराम शेकोकार 90
शोध के क्षेत्र में असाधारण संदर्भ-ग्रंथ/ **डॉ॰ महेश दिवाकर** 100
पुष्टिमार्गीय सेवापद्धति एवं वल्लभ संप्रदाय/ **डॉ॰ रश्मि जोशी** 103
अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता : तुलनात्मक अध्ययन/ डॉ॰ सतीश यादव 109
हिंदीकाव्य में गीतिकाव्य की परंपरा/ **डॉ॰ दीप्ति** 121
अज्ञेय की कविताओं में छायावादोत्तर विश्वचेतना का प्रभाव/ **डॉ॰ गायत्री** 126
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में पीढ़ी दर पीढ़ी की समस्याएँ
डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी 132
प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या'/ **नंदिनी जोशी** 139
वैदिककाल से अब तक नारी/ **मुकेश** 145
एक विस्मृत रचनाकार : प्रभाकर माचवे/ **डॉ॰ कृष्णा शर्मा** 155
भारतीय संस्कृति के चिंतक साहित्यकार निर्मल वर्मा/ **डॉ॰ रजनी** 164
साहित्य-अध्ययन के लिए अंतर्ज्ञानानुशासनात्मकअध्ययन की आवश्यकता/
डॉ॰ नीतू कौशल 168
नयी राह और दृष्टि का दिग्दर्शन है 'कुल का चिराग'/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 171
अँधेरे की खिलाफत के कवि : राजेंद्र मिश्र/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 176
एक नयी दुनिया बसाने की कोशिश है 'रिश्ते नए अब जोड़िये'/
डॉ॰ रमेश तिवारी 181

 ISSN 0975-735X

नवगीत परंपरा और नवगीतकार शचींद्र भटनागर

प्रोफ़ेसर (डॉ॰) आदित्य प्रचंडिया, डी॰लिट्॰

नवीनता, सतत जागरूक हमारी सर्जनशील आत्मा की ज्वलंतता और मौलिकता की आकांक्षा का प्रतीक है। आत्मा का यह गुण जितनी स्पष्टता से कलाओं में प्रकाशित होता है उतना संभवत: और कहीं भी नहीं। इसलिए नवीनता किसी भी सच्ची कला की पहली माँग है, और होनी भी चाहिए। कला का आनंददायी होना भी इस नवीनता के गुण में ही सन्निहित है। जो भी कला अपनी लंबी काल-यात्राा करके हम तक चली आ रही है, वह इसी कारण कि उसमें चिरनावीन्य के गुण शक्तिगर्भ बीज रूप में स्वभावत: अंतर्निहित थे। गीत मनुष्य की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति का नाम है। उल्लास और वेदना दोनों ही मनुष्य के मुख से अभिव्यक्त भाषा में परिवर्तन कर देते हैं। रोना और गाना दोनों ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। गीत सहज ढंग से गाए गए होंगे। राग-रागनियों से सज्जित गान को संगीत कहा गया है और छंदबद्ध गेय रचनाओं को गीत। इस दृष्टि से भारत में गीत का आरंभ 'ऋग्वेद' के मंत्राों से ही ढूँढ़ा जाता है। वैदिककाल में स्तुति, अभिचार, गोचारण आदि कई रूप से गीतकाव्य में विविधता थी। संस्कृत में भी गीतकाव्य की परंपरा विकसित हुई। जयदेव का 'गीतगोविंद' अपने सही अर्थ में गीत के शिल्प पर ही विनिर्मित हुआ है। अपभ्रंश में वज्रयानी सिद्धों के पदों में भी गीतकाव्य का एक स्वरूप हमें प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में मध्यकाल में गीतकाव्य की पर्याप्त रचना हुई। हिंदी में कबीर की सबदी, सूरदास, तुलसीदास और जैन हिंदीकवि बनारसीदास, द्यनतराय, भागचंद्र, भूधरदास, रामचंद्र आदि के पदों में गीत का भी स्वरूप हमें सुलभ होता है। आधुनिककाल के आरंभ में भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही खड़ीबोली के गीतों का युग प्रारंभ हो जाता है। द्विवेदीयुग में मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय ने आधुनिक प्रगीत शैली की प्रभूत रचनाएँ लिखीं। छायावाद युग तो प्रगीतों के अनुकरण पर लिखे गए गीतों का खजाना था। वस्तुत: छायावादी गीतों का परिष्कृत, परिमार्जित और विकसित रूप ही नवगीत है।

नवगीत पारंपरिक गीतों से ही विकसित नव्य काव्य है। नवगीत की विकास-प्रक्रिया का आरंभ तो भारतेंदु से ही हो गया था, पर उसका वास्तविक प्रारंभ निराला की कविताओं से माना जाना चाहिए। उसे गति देने का प्रारंभिक कार्य नई कविता के सप्तकीय कवियों ने ही किया। नई कविता और नवगीत में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों में स्थूल अंतर केवल इतना ही है कि नई कविता मुक्तछंद में या छंदमुक्त रूप में लिखी जाती है और 'नवगीत' छंदोबद्ध होता है। नई कविता की भाँति नवगीत भी अपनी भाषागत विशिष्टता, भावगत आधनिकता, प्रतीकात्मक और सांकेतिक बिंबयोजना आदि के कारण पूर्ववर्ती छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं से तथा छायावादोत्तर काल के सस्ते रूमानी गीतों से पृथक् दिखाई पड़ता है। इस पर

आधुनिकता की गहरी छाप है।[1] नवगीत हिंदी कविता का अधुनातम प्रारूप है, जिसमें संवेदना, वैचारिकता, संबोध और ताजातरीन शिल्प प्रविधियों का समाहार है। नवगीत आधुनिक जीवन की संवेदनाओं से जुड़ी अनुभूतियों की छांदसिक अभिव्यक्ति है। नवगीत नव्यता और गीतत्व का संश्लिष्ट रूप है और वह है 'बिंबधर्मीकाव्य'। नवगीत के विकास के चार चरण निर्धारित किए जा सकते हैं–1. उद्‌भवकालीन नवगीत (1935-1950) 2. विकासकालीन नवगीत (1951-1960) 3. संघर्षकालीन नवगीत (1961-1970) 4. नवगीत का उत्कर्षकाल (1971-1985)[2]; 1985 से अब तक की प्रवृत्ति में भी कोई विशेष अंतर नहीं आया है बल्कि नवगीत इस कालावधि में निर्धारित मान्यताओं के आधार पर ही गतिमान है। 'नवगीत दशक' भाग एक, दो और तीन का प्रकाशन नवगीत की विकासयात्राा का परिचायक है। इन दशकों के श्रेष्ठ नवगीतकारों के नवगीतों में इस बात की पड़ताल की गई है कि उनमें नवगीत के लक्षण विद्यमान हैं कि नहीं। नवगीत दशक भाग एक में नईम, सोम ठाकुर, देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', देवेंद्रकुमार, भगवानस्वरूप 'सरस', उमाकांत मालवीय, शिवबहादुर सिंह 'भदौरिया', रामचंद्र 'चंद्रभूषण', ठाकुरप्रसाद सिंह तथा शंभूनाथसिंह के गीत संकलित हैं। इस दशक के नवगीत प्रौढ़तम समवेत का वृत्यात्मक आकलन है। 'नवगीत दशक' भाग दो में कुमार शिव, अनूप अशेष, राम सेंगर, ओम प्रभाकर, उमाशंकर तिवारी, कुमार रवींद्र, गुलाबसिंह, श्रीकृष्ण तिवारी, माहेश्वर तिवारी, अमरनाथ श्रीवास्तव के नवगीतों का संकलन उनके वक्तव्यों के साथ किया गया है। सन् 1984 में 'नवगीत दशक' भाग तीन का प्रकाशन हुआ जिसमें अखिलेशकुमार सिंह, राजेंद्र गौतम, डॉ॰ सुरेश, सुधांशु उपाध्याय, विजय किशोर, यादवेंद्रदत्त शर्मा, जहीर कुरैशी, बुद्धिनाथ मिश्र, निदेशसिंह और विनोद निगम की रचनाएँ संकलित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'नवगीत दशक' ने हिंदी नवगीत को न केवल एक आधुनिक काव्यधारा के रूप में प्रतिष्ठित किया, अपितु उसने नवगीत की तात्त्विक और शिल्पगत विशेषताओं को भी सामने लाकर इसकी पहचान को भी रेखांकित करने का प्रशंस्य प्रयास किया। वस्तुत: हिंदी नवगीत के विकास की दिशा निर्धारित करने वाले ये दशक-त्राय, महनीय सोपान हैं। नई पीढ़ी के नवगीतकारों में योगेंद्र व्योम, विनोद श्रीवास्तव, दिनेश प्रभात, रामकिशोर दहिया, जयकृष्णराय तुषार, चित्रांश बाघमारे आदि अनेक नाम हैं, जो अपनी सम्यक् सक्रियता के साथ नवगीत के समकालीन परिदृश्य पर हैं। पूर्णिमा वर्मन के ब्लॉग में 'नवगीत की पाठशाला' के अंतर्गत भी एक पूरी की पूरी पीढ़ी तैयार हो रही है। निश्चित ही नवगीत आज नए क्षितिज की तलाश कर रहा है।

अस्सीवर्षीय नवगीतकार शचींद्र भटनागर का पूरा नाम महेंद्रमोहन भटनागर है। अपने नवगीत संग्रह 'कुछ भी सहज नहीं' में शचींद्र भटनागर स्पष्ट रूप से कहते हैं–'साठ के दशक में जितनी सृजनात्मक जींवतता मुझमें रही, बाद के तीन दशकों में उतनी ही निष्क्रियता आ गई थी। वर्ष 1960 से 1967 तक मैं आगरा में रहा। वहाँ घनश्याम अस्थाना, देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', उदित साहू, सोम ठाकुर, निखिल सन्यासी अच्छा लिख रहे थे। मिलना होता रहता था, साहित्यिक वातावरण था। प्रेरणा मिलती थी। नगरी प्रचारिणी सभा एवं आगरा विश्वविद्यालय के समृद्ध ग्रंथागारों में अध्ययन की सुविधा थी। वहाँ से सन् 1970 के पूर्वार्द्ध तक मैं अलीगंज (एटा) रहा। उस क्षेत्र के श्रेष्ठ गीतकार बलवीर सिंह रंग एवं मलखानसिंह सिसौदिया मुझे खूब स्नेह देते थे। सुनते थे और सहज सुनाते भी थे। साठ के दशक के अंत तक मेरे लेखन, प्रकाशन और प्रसारण

 ISSN 0975-735X

में प्रगति का श्रेय इन सभी को है।[3] पारसनाथ गोवर्धन 'आनुभूतिक संवेदना का यथार्थ चिंतन में लिखते हैं–'समकालीन नवगीत कवियों में कविवर शचींद्र भटनागर ऐसे रचनाकार हैं जिनकी रचनाओं में संवेदना का टटकापन है, विचारों का मंथन है। मानवता का क्रंदन है। इसके साथ ही युगद्रष्टा की दृष्टि है।[4] शचींद्र भटनागर का प्रथम गीत-संग्रह 'खंड-खंड चाँदनी' वर्ष 1973 में निखिल संन्यासी ने प्रकाशित किया। इसमें सन् 1960 से 1970 के मध्य पारंपरिक गीतों से इतर शैली में लिखी गई रचनाएँ हैं जो शिल्प, विषयवस्तु एवं कहन में पूर्ववर्ती गीतों से भिन्न हैं। 'हिरना लौट चलें' के गीतों की रचना 1970 से 1995 के मध्य हुई। 'ढाई आखर प्रेम के' शचींद्र भटनागर के विवाह की स्वर्ण जयंती पर जीवनसहचरी कृष्णा को समर्पित ऐसे नए-पुराने गीतों का संकलन है, जिसमें प्रेम के वृहत् स्वरूप से संबंधित भावाभिव्यक्तियाँ हैं। इसमें वर्ष 1962 से 1995 के बीच ही लिखे गए गीत हैं। 'त्रिवर्णी' संकलन के प्रथम अठारह गीत 'खंड-खंड चाँदनी' से उसके बाद के बीस गीत 'हिरना लौट चलें' से तथा अंतिम सोलह गीत 'ढाई आखर प्रेम के' से लिए गए हैं, कुल मिलाकर चौवन चयनित गीत जो अपने रचना-वर्ष में कादम्बिनी, साप्ताहिक हिंदुस्तान, माध्यम, शताब्दी, वातायन, सरिता तथा मुक्ता आदि उल्लेखनीय प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। शचींद्र भटनागर के 1970 के गीत आज भी प्रासंगिक है, उनमें नयापन जो है। नवगीतकार शचींद्र भटनागर अपने कहन और कथ्य को प्रतीक-बिंब के माध्यम से, सहजता के साथ संप्रेषित करने में सफल सिद्ध हुए हैं। नवगीत की जितनी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है, वे सारी की सारी प्रवृत्तियाँ शचींद्र भटनागर की रचनाओं में आरंभ से ही उपस्थित हैं। जनसंख्या-वृद्धि और उससे तज्जन्य समस्याओं को शचींद्र भटनागर इस तरह संप्रेषित करते हैं–

सौ-सौ उद्यानों का प्यार है निछावर
एक कली जुही
एक गेंदे के फूल पर
आओ हम रोपें दो पौधे फुलवारी में
इतना ही काफी है
छोटी-सी क्यारी में
हर पौधे की अपनी सपनों की बस्ती हो
अपनी कुछ धरती हो
अपनी कुछ हस्ती हो।[5]

आधुनिक युग की नवीन परिस्थितियों में विज्ञान, यंत्रा, महानगरीय जीवन के विविध आयामों के प्रभाव से मानव-मन में एक नवीन भावबोध का अभ्युदय हुआ। नए भावबोध ने पुरानी परंपराओं और मान्यताओं को नकारकर नए विचारों को जन्म दिया। आधुनिकता एक कालबद्ध चेतना न होकर विशेष नई परिस्थितियों की उपज है। आधुनिक दृष्टि रचनाकार की आत्मसजगता की परिचायक है तथा उसे वर्तमान संदर्भों से जोड़ती है। अपनी परिस्थिति और परिवेश से संपृक्ति का भाव ही रचनाकार की अनुभूति को प्रामाणिक बनाने में सक्षम है। आधुनिक बोध नवगीत का सबसे प्रधान वैचारिक लक्षण माना गया है। यथा–

हमने पश्चिम की

कुछ धुँधली छायाओं को
वस्त्रों-सा ओढ़ा है
द्रुतगति परिवर्तित होती
जीवन-शैली को
उन सबसे जोड़ा है
भटकाती रहीं हमें पर अंधी वीथियाँ
कसे रहीं बाहुपाश में हमें कुरीतियाँ।[6]

शचींद्र भटनागर का यथार्थ, जीवन की वस्तुपरक अनुभूतियों को अपने दृष्टिकोण या आकांक्षाओं का रंग चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। यथा–

गंध का न छोर मिलेगा
हिरना लौट चलें
अभिनंदन करती
आवाज़ों के शोर बीच
भाव मुखर एक भी नहीं
सभी यंत्रचालित हैं
बोलते खिलौने हैं
जीवित स्वर एक भी नहीं
इन ऊँचे शिखरों पर
बहुत याद आता है
बादल बन बन-बगियों में घिरना
लौट चलें।[7]

नवगीतकार शचींद्र भटनागर यथार्थ दृष्टि में एक आदर्श भी प्रतिष्ठित करने के पक्षधर हैं। यथा–

बहुत बढ़े
देवालय मसजिद
रोज कथा-कीर्तन होते हैं
होती
उपदेशों की वर्षा
नित जागरण हवन होते हैं
दुर्भावों की कीचड़ फिर भी
हृदय-बीच बढ़ती ही जाती
जैसे गंगा बीच किसी पर
परत कलुष की चढ़ती जाती
पावन गंगा रज कहलाता
मैं न वहीं पत्थर बन पाया।[8]

'क्या है' से आगे 'क्या होना चाहिए' यह भी शचींद्र भटनागर का विचार-क्षेत्र है।

 ISSN 0975-735X

आधुनिकता की इस दृष्टि पर भारतीय जीवनदृष्टि का प्रभाव है। शचींद्र भटनागर आधुनिकता को सार्वभौम न मानकर युग-सापेक्ष और देश-सापेक्ष मानते हैं। उदार मानवतावादी दृष्टि, लोकतांत्रिक चेतना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण महानगरों का अभिशप्त जीवन और भारतीयता की अस्मिता नवगीत में आधुनिकता के उक्त लक्षणों को शचींद्र भटनागर ने प्रतिपादित किया है। नवगीत की यह आधारभूमि और विस्तृत होती गई। आंचलिकता और ग्रामबोध भारतीय अस्मिता की अवधारणा के अंतर्गत ही आता है, क्योंकि भारत अंचलों में, गाँवों में, खेतों और किसानों में ही अधिक है। जब आम आदमी की बात की जाती है तो स्वभावतः हमारी दृष्टि गाँव की ओर जाती है। यथा–

गाँव सारा चल दिया
जाने किधर
हम निमंत्राण को तरसते रह गए
रुक गईं/ वे दुधमुँही किलारियाँ
मौन भाषा चिट्ठियों की खो गई
थम गई/ रिमझिम फुहारें सावनी
गंध सौंधी मिट्टियों की खो गई?[9]

नवगीत पूर्णतः यथार्थ जीवन की त्रासदी और उत्पीड़न को अभिव्यक्त करनेवाला आधुनिकतावादी गीत बन गया है। शचींद्र भटनागर के नवगीतों में आधुनिक जीवन की यथार्थ तस्वीर नई भाषा के मुहावरे में बड़ी प्राणवत्ता के साथ प्रस्तुत हुई है। यथा–

यहाँ बहुत मैले प्रतिबिंब हैं
चलो चलें और कहीं दर्पण मन मेरे
कैसे पहचानी/ पगडंडी हम छोड़ें
कैसे गंधों से/ संबंध यहाँ जोड़ें
दूर तक भयंकर-से फैले वीरानों में
क्रूर बबूलों से
रस किस तरह निचोड़ें
झुलसाते अणुओं की गोद से
चलो चलें और कहीं चंदन-मन मेरे।[10]

और

यहाँ स्वार्थ ही है
संबंधों की सीमा
एक वृत्त तक है
स्वच्छंदों की सीमा
हृदयों की नहीं मात्र अधरों की बाते हैं
सारे-के सारे/ अनुबंधों की सीमा
इन सब सीमाओं को तोड़कर
चलों चलें और कहीं उन्मन मन मेरे।[11]

शचींद्र भटनागर की शृंगारिक अनुभूतियों के बिंबीकरण में कहीं भी पुरानापन नहीं है।

संयोग के अनभिव्यक्त क्षण में नवगीतकार को पहले आषाढ़ी घन के झरने का सुख प्राप्त होता है और जब यही क्षण अकेलेपन में बदलते हैं तो शचींद्र भटनागर के कविहृदय की निर्मल झील 'नीर की हर बूँद दर्पण बन गई' प्रतीत होती है। नवगीतकार शचींद्र भटनागर के नवगीत प्रकृति-उद्दीपन और मानवीकरण के बिंबों की चित्ताकर्षक चित्राशाला हैं। उनके नवगीतों में भाषा-सौंदर्य देखते ही बनता है। भाषा में एक ओर लोक के शब्दों और दूसरी ओर शुद्ध साहित्यिक शब्दों के प्रयोग से तथा शब्द-पुनरावत्ति से एक उल्लेखनीय भावगम्यता की सृष्टि हुई है। शचींद्र भटनागर नवगीत में छंद दासत्व नहीं स्वीकारते, अपितु वह भावनाओं के अनुकूल गेयत्व को महत्त्व देते हैं।

शचींद्र भटनागर की प्रत्येक गीत-रचना में सामाजिक सरोकार तथा संवेदना और यथार्थ का सम्मिलन है। उनमें सामान्यजन की पीड़ा है, जीवन-संघर्ष और जिजीविषा है। सभ्यता-संस्कृति का पतन, मानवमूल्यों का क्षरण, संस्कारों से च्युत होना, प्रेम और सद्भाव का अभाव होना आदि ऐसी स्थितियाँ है, जिसमें बदलाव के बादल गरज रहे हैं और अवनति की ओर उन्मुख हो रहे हैं। शचींद्र भटनागर ने समय से संवाद सतत किया, उनकी अभिव्यक्ति (सन् 1970 के आस-पास की) द्रष्टव्य है–

हर दिशा से/ आज कुछ ऐसी हवाएँ चल रही हैं
आदमी का आचरण बदला हुआ है
इस तरह छाया हुआ भय और संशय है परस्पर
बात मन से/ मन नहीं करता यहाँ पर
हर लहर में उच्चता की होड़ इतनी है
कि जिसको देखकर/ सागर स्वयं डरता यहाँ पर
कल्पना विध्वंस की करता यहाँ पर
एक भी निःश्वास/ स्वाभाविक नहीं वातावरण में
इस कदर वातावरण बदला हुआ है
लोग कहते हैं नया परिधान पहना है समय ने
और सूरज। बहुत ऊपर चढ़ गया है
पर मुझे लगता कि सबको। स्वप्न धोखा दे रहा है
घोर दल-दल बीच ही रथ अड़ गया है
आदमी भीषण भँवर में पड़ गया है
सभ्यता के ग्रंथ में/ पन्ने पुराने ही भरे हैं
किंतु ऊपर आवरण बदला हुआ है।[12]

इस तरह की उद्भावनाएँ नवगीतकार शचींद्र भटनागर के गहन चिंतन और समाज के प्रति प्रतिबद्धता का ही परिणाम है। यथा–

ओस भरी अंजुरी का
क्या हो आभास यहाँ
दहक रहे हों जब अंगारे सिरहाने
कौन छद्म वेशों में सगा या पराया है

 ISSN 0975-735X

नहीं जान पाते हम
अपनी धरती की हत्या के षड्यंत्रों की
योजना बनाते हम
एक से मुखौटे सब
पहने हैं फिर बोलो
भले-बुरे को कोई कैसे पहचाने[13]

इस प्रकार अपने नवगीतों से शचींद्र भटनागर राष्ट्र के साथ-साथ विश्वकल्याण की कामना करते हैं और भव्य भावनाओं का महल खड़ा करते हैं। नवगीतकार की 'एक निमिष तृप्ति' देखिए–

बहुत थका-हारा है/ पोर-पोर मन
कुछ बात करें हम/ कुछ बात करो तुम।[14]

समग्रतः शचींद्र भटनागर के नवगीत रागबोध और आधुनिकता-बोध की युग-संवेदना को अनुभव के मंत्रा से अपनी अनुभूति की प्रवणता से शब्द-अधिष्ठान और भाव-प्रतिष्ठान संस्थापित करते हैं। वस्तुतः शचींद्र भटनागर समकालीन नवगीत के सशक्त ज्योतिर्मान नक्षत्रा हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ शंभूनाथसिंह, समकालीन हिंदी कविता का परिप्रेक्ष्य और नवगीत, पृ॰ 87
2. नवगीत अर्द्धशती, पृ॰ 19
3. शचींद्र भटनागर, कुछ भी सहज नहीं है, पृ॰ 5
4. आनुभूतिक संवेदना का यथार्थ चित्रण (पारसनाथ गोवर्धन), शचींद्र भटनागर, कुछ भी सहज नहीं, पृ॰ 8
5. शचींद्र भटनागर, त्रिवर्णी, दो पौधे, पृ॰ 25
6. त्रिवर्णी, ओढ़ी हुई आधुनिकता, पृ॰ 67
7. त्रिवर्णी, हिरना लौट चलें, पृ॰ 83
8. त्रिवर्णी, कसबे का दर्द, पृ॰ 48
9. त्रिवर्णी, पलायन, पृ॰ 49
10. त्रिवर्णी, और कहीं, पृ॰ 91
11. त्रिवर्णी, और कहीं, पृ॰ 92
12. त्रिवर्णी, पृ॰ 11
13. त्रिवर्णी, छदमवेश, पृ॰ 79
14. त्रिवर्णी, एक निमिषतृप्ति, पृ॰ 109

मंगलकलश
394, **सर्वोदयनगर,**
आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 **(उ॰प्र॰)**
दूरभाष : (0571) 2410486
मो॰ : 09897144022

भारतेंदु मंडल और राधाचरण गोस्वामी के हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
हिंदी विभाग, बरेली कालेज, बरेली

भारतेंदुजी ने सन् 1857 ई॰ की क्रांति की असफलता के अवसाद से ग्रस्त भारतीय समाज एवं बुद्धिजीवी वर्ग को नए प्रकार से जीवन संग्राम हेतु तत्पर करने के लिए हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में नए युग का सूत्रपात करके अत्यंत सफल तथा सार्थक प्रयास किया। उन्होंने अपने अनुयायी साहित्यकारों का मंडल बनाकर जनजीवन को लेखनी की शक्ति की उद्घोषणा के माध्यम से नवजागरण की स्वर्णिम किरणों का स्वर्णिम प्रभामंडल प्रदान किया। उनके मुख्य उद्देश्य थे–निजभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार और समाज सुधार। इनको सर्वव्यापी बनाने के लिए उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन तथा प्रकाशन प्रारंभ किया। इनमें गंभीर बातों को रोचक तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए हास्य-व्यंग्य के सामर्थ्यपूर्ण उपादान का आश्रय लिया। डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी के अनुसार–'जब हास्य विशद आनंद या रंजन को छोड़ प्रयोजननिष्ठ हो जाता है, वहाँ वह व्यंग्य का मार्ग पकड़ लेता है। आलंबन के प्रति तिरस्कार उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़ने वाला हास्य व्यंग्य कहलाता है। व्यंग्य इसीलिए सामाजिक कुरीतियों, व्यवहारों या रूढ़िमुक्त परंपराओं को हेय या हास्यास्पद रूप में रखने की चेष्टा करता है।'[1] इसके लिए निंदा, वर्तमान अथवा जीवित लक्ष्य का तथ्यपरक अनुसंधान तथा सामाजिक हित साधन की सुधारवादी दृष्टि की सदैव आवश्यकता होती है। राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद गंभीर प्रवृत्ति के रचनाकार थे। उस समय तक किसी भी लेखक ने हिंदी में हास्य-व्यंग्य के प्रति अपनी लेखनी का शौर्य प्रदर्शित नहीं किया था। भारतेंदुजी और उनके मंडल के लेखक बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, ठाकुर जगमोहनसिंह, राधाकृष्णदास तथा बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने इस दिशा में अत्यंत सराहनीय प्रयास किए और हिंदी हास्य-व्यंग्य साहित्य को यथेष्ट लोकप्रियता प्रदान की। श्रीजगन्नाथप्रसाद शर्मा ने हास्य-व्यंग्य को 'मन फेर का मसाला' कहा है। उनके अनुसार–'चटनी के अभाव में जैसे सेरभर मिठाई खानेवाला व्यक्ति आधसेर, ढाईपाव ही खाने पर घबरा उठता है और भूख रहने पर भी जी के ऊब जाने से वह अपना पूरा भोजन नहीं कर सकता, उसी प्रकार सदैव गंभीर साहित्य का अध्ययन करते-करते जनसमाज का चित्त ऊब उठता है। ऐसी अवस्था में वह मन फेर का मसाला न पाकर दूसरी भाषाओं का मुखापेक्षी बनता है।'[2]

मानव जीवन के उत्थान और कल्याण के प्रति व्यंग्यकार की निष्ठा गंभीर साहित्य लेखकों के समान ही उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। डॉक्टर की कड़वी औषधि अथवा तीक्ष्ण

 ISSN 0975-735X

नोकवाली सुई जैसा व्यंग्य सामाजिक बीमारियों के निवारण तथा जन-जीवन की प्रगति के लिए अतिआवश्यक है। भारतेंदु युग में भी यही हुआ। धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक एकेश्वरवाद को अभिमंडित करने के लिए विभिन्न स्थानों पर रोचक और प्रभावशाली व्याख्यान दिए तथा आर्य समाज की स्थापना की। आर्यसमाज धार्मिक वाद-विवाद और व्याख्यान मालाओं के लिए विख्यात हुआ। खड़ीबोली में अत्यंत प्रभावपूर्ण सबल भाषा शैली की उद्‌भावना हुई। एक ही बात को कई रूपों में घुमाफिराकर समझाना और विरोधियों की बातों का सटीक उत्तर देकर उन्हें हतप्रभ करने की शैली आर्य समाजियों के प्रभाव से भारतेंदुजी के कार्यकाल तक विकसित हो चुकी थी। पं॰ जगन्नाथ शर्मा का मत है कि इस समय की 'गद्यशैली में जो व्यंग्य-भाषा का रुचिकर रूप दिखाई पड़ता है, वह भी इसी धार्मिक आंदोलन का अप्रत्यक्ष परिणाम है। इस आर्यसमाज के प्रतिपादकों को जिस समय भिन्न धर्मावलंबियों से वाद-विवाद करना पड़ता था, उस समय ये अपने दिली गुबारों को बड़ी मनोरंजक, आकर्षक तथा व्यंग्यपूर्ण भाषाओं में निकालते थे। यही नहीं वाद-विवाद एवं वक्ताओं के सिलसिले में ये लोग सीधी, तीव्र और लक्कड़तोड़ भाषाओं का प्रयोग करते थे। इन सब विशेषताओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से उस समय के गद्य लेखकों पर पड़ा।'[3] भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी इत्यादि के व्यंग्य निबंध इसका प्रमाण हैं। विषय प्रतिपादन की ऐसी सरल और मनोरंजक आत्मीयतापूर्ण शैली हास्य-व्यंग्य के वैशिष्ट्यपूर्ण आलोक में दमकी कि भारतेंदु युग का समस्त विचार-वैभव इसके चुंबकीय आकर्षण में समाविष्ट हो गया।

भारतेंदुजी ने तत्कालीन बुद्धिजीवी समाज का नेतृत्व करते हुए उन्हें सामयिक आवश्यकताओं से परिचित कराया और तदनुरूप उनके निराकरण के लिए प्रोत्साहित किया। पंडित राधाचरण गोस्वामी ने स्वीकार किया कि 'बाबू हरिश्चंद्र का मैगज़ीन (मासिक पत्र) भी तभी निकाला था। वह पत्र मैंने देखा और मेरी प्रवृत्ति देशोपकार की ओर जमी। फिर कुछ काल मैंने 'विवेचना सुधा' की सुधापान की और नवजीवन लाभ किया। इस समय मुझे बड़ी घबराहट हुई। नई रोशनी तो अपनी ओर खींचती थी और पुराने गुरुजन पुरानी लकीर पर चलने की चिंता में थे। वही बात हुई, दुविधा में दोऊ गए, माया मिली न राम। नई रोशनी का विषय बड़ा तीव्र है, सावधान रहना।'[4] इस नई रोशनी से प्रभावित दो प्रसिद्ध लेखक हैं—बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र। भारतेंदु जी की रीति-नीति का अनुसरण करते हुए दोनों ने ही हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंधों के विकास में अपना सकारात्मक योगदान प्रस्तुत किया। डॉ॰ मोहन अवस्थी का कथन है कि 'बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है, किंतु मिश्र जी में विनोद एवं चपलता का प्राधान्य है। एक खरी बात कहता है, तो दूसरा उसे रसभरी बात बनाकर पेश करता है। मिश्र जी का फक्कड़पन कभी-कभी उन्हें मुँहफट बना देता है, परंतु भट्ट जी संयम से काम लेते हैं और अपनी चिड़चिड़ाहट व्यंग्य के माध्यम से प्रकट करते हैं। भट्टजी के निबंधों में हम बुजुर्ग मित्र का स्वर पाते हैं और मिश्र जी के निबंधों में हमारा हमजोली लंगोटिया यार बोलता है। मिश्र जी के निबंधों में हमें लोक-रस का आस्वाद मिलता है।'[5] भट्ट जी ने अपने निबंधों का उद्‌देश्य बताते हुए लिखा है कि 'आप लोगों ने कुछ अनुपकार हमारे लिए करना ठानी हो कभी न चूकिए, हम आपका सब प्रहार सहने को मुस्तैद बैठे हैं; पर तुम्हें बिना राह लगाए न हटैंगे पर न हटैंगे। क्या करो दो एक लमड़ों के बहकावे में लगे हो, जिससे तुम पर अंधकार छाया

हुआ है और न उनके जीते जी यह तामसी तिमिर कभी दूर होने वाला है। मसल है 'हमने तुम्हारे लिए बाँसुरी बजाया तुम न नाचे, हम तो हित की बात सुझावें और तुम्हें बुरा लगे तो लाचारी है।'[6] व्यंग्यपूर्ण बक्रता और विनोदप्रियता मिश्र जी की लेखन शैली की प्रमुख विशेषता है। बैसवाड़े की ग्राम्य कहावतें और पूरवीपन से परिपूर्ण शब्दावली भी इसमें उन्होंने अपनी मौज के अनुसार प्रयुक्त की हैं। 'फूटी सहैं आँजीन सहैं, घूरे के लत्ता बिनै कनातन के डौल बाँधे, 'कलिकोष', 'हुची चोट निहाई के माथ', 'ऊँच निवास नीच करतूती', मरै का मारै साहमदार', 'दाँत', 'एक', 'भलमंसी', तथा 'धोखा' इत्यादि व्यंग्य निबंधों के शीर्षक भी इसी का प्रमाण हैं। 'समझदार की मौत है' निबंध में उन्होंने संस्कृत सूक्तियों का उपयोग करते हुए लिखा है कि 'जहाँ समझने की शक्ति हुई कि बस बात-बात में चिंता। चित्त और चिंता का ऐसा संबंध है कि जुदे होते ही नहीं। और चिंता की तारीफ शास्त्रकारों ने की ही है कि 'चिंता, चिता समाख्याता तस्माच्चिंतागरीयसी।' एक बिंदु अधिक है न। 'चिंता दहति निर्जीवं चिंता जीवषुतंतनु' क्या ही सत्य है। शरीर की चिंता रही, घर की चिंता रही, सब पर तुर्रा देश की चिंता। खूसटदास यह भी नहीं पूछते कि 'क्यौं मरे जाते हो?' पर देशभक्त इसलिए जीव होमे देते हैं कि इनका निस्तार हो। इसी से कहते हैं कि समझदार की मौत है।'[7]

वास्तविकता यह है कि भारतेंदुजी द्वारा विकसित मार्ग का अनुसरण करते हुए प्रताप नारायण मिश्र के निबंधों में निहित हास्य-व्यंग्य ने हिंदी साहित्य-जगत के पाठकों को एक नए प्रकार का रोचक मसाला प्रदान किया। उनके द्वारा बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी इत्यादि के साथ कदम से कदम मिलाते हुए पर्याप्त रुचिपूर्ण साधारण जनप्रिय व्यावहारिक साहित्य का सृजन करके यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया कि भाषा सार्वजनीन है। उसका संबंध एकमात्र विचारशील विषयों के प्रतिपादन, व्याख्यायन तथा समालोचना से ही नहीं है, अपितु इसमें नित्य जीवन के तात्कालिक व्यवहारशील विषयों का भी हृदयाकर्षक मनोहर विवेचन बड़ी सहजता से किया जा सकता है। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेंदुजी के प्रिय मित्र थे। उनकी बातचीत का तरीका पूर्णतया निराला तथा आभिजात्य से परिपूर्ण था। उन्होंने 'अपने युग की परिस्थितियों में होकर समाज में जागृति लाने के उद्देश्य से अनेक व्यंग्य निबंधों की रचना की। प्रेमघन जी अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति के प्रति सदैव जागरूक बने रहे। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों का शोषण, उनकी रीतियों-नीतियों, भारतीयों की परंपराप्रियता, फैशन, कर्त्तव्यहीनता, आलस्य आदि सभी उनके व्यंग्य का लक्ष्य बने।'[8] प्रेमघन जी ने कुंडली मिलाकर विवाह करने की परंपरा पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, 'चाहे जिस प्रकार का व्याह हो, ख्याल प्राय: दो ही बातों का रहता है, एक तो पंडितजी की कुंडली मिलाने का अर्थात् चाहे अंधा हो, काना, कुबड़ा, लँगड़ा, लूला, काला, कुरूप, मूर्ख, दुष्ट, क्या सर्वदोषयुक्त क्यों न हो, कुंडली की विधि मिलने से लक्ष्मी के समान रूप संपन्न कन्या का विवाह कर देवेंगे।'[9]

भारतेंदुजी के युग में लोकसेवा, जनसंरक्षण, देशोपकार, शिक्षा का विकास तथा सभी प्रकार के हानिकारक विषयों में सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता थी। उन्होंने पत्रकारिता के प्रचार-प्रसार द्वारा मातृभाषा के उद्धार का लोकव्यापी प्रयत्न किया। इसमें उन्हें हास्य-व्यंग्य प्रधान निबंधों से भी यथेष्ट लाभ मिला। 'हास्य-विनोद की प्रवृत्ति इस काल के प्राय: सब लेखकों में थी। प्राचीन और नवीन के संघर्ष के कारण उन्हें हास्य के अवलंबन दोनों पक्षों में मिलते थे।

 ISSN 0975-735X

जिस प्रकार बात-बात में बाप-दादों की दुहाई देने वाले, धर्म के आडंबर की आड़ में दुराचार छिपानेवाले पुराने खूसट उनके विनोद के लक्ष्य थे, उसी प्रकार पश्चिमी चाल-ढाल की ओर मुँह के बल गिरने वाले फैशन के गुलाम भी।'[10] राधाचरण गोस्वामी ने भी भारतेंदुजी का अनुकरण करते हुए हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंधों की यथाशक्ति रचना की है। उन्होंने राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की 'आमफहम और खास पसंद' भाषा-नीति के समर्थकों की आलोचना करते हुए व्यंग्यात्मक स्वर में लिखा है कि 'हमने एक हिंदी पत्र प्रचलित किया, निज पाणिनि की टकसाल के खुद संस्कृत शब्दों का उसमें व्यवहार करते हैं और हमारे पाठकजन भी उसे बड़ी प्रसन्नता से पढ़ते हैं, पर तुम्हें क्या? तुम क्यों उसे अपने न समझने के कारण बुरा कहते हो? देश में सभी तुमसे लाल-बुझक्कड़ हैं! हमने यह प्रस्ताव लिखा, केवल तुम्हें क्या, तुम्हें क्या' की झड़ी बाँध दी, पर तुम्हें क्या? वास्तव में तुमसे तो कुछ नहीं कहते, तुम क्यों वृथा बुरा मानते हो? जो ऐसे हैं उनसे कहते हैं, तुम्हें क्या?'[11] इसप्रकार का उत्तर देने की क्षमता भारतेंदु युग के सभी व्यंग्यकारों की विलक्षण प्रतिभा का साहसपूर्ण प्रदर्शन है। 'वैद्यराज स्तवराज' में उन्होंने तत्कालीन आयुर्वेद चिकित्सकों को व्यंग्यात्मक स्वर में समझाया है कि 'हे वैद्यराज अथवा बैलराज! आपको नमस्कार। हे चिकित्साशास्त्रचतुर! आपको सुर कहें वा असुर? सुर इसलिए कि आपके आचार्य अश्विनीकुमार हैं। असुर इसलिए कि आपने हजारों मनुष्य मारकर यह पद पाया। प्रमाण 'शतमारीभवेद् वैद्यः सहस्रमारी चिकित्सकः। लक्षमारी भिषकज्ञेयः कोटिमारीतुवैद्यराज।'[12] 'वैद्यराज का स्तवन' करने के साथ-साथ उन्होंने रेलवे का स्तवन भी 'रेलवे स्तोत्र' में किया है। उन्होंने इसका गुणगान करते हुए लिखा है कि 'हे रेल! तेरी जय हो, जय हो! हे धूमवाहिनी! तुम्हारे विषय में अग्नि साक्षात् रूप से, वरुण जलरूप से, वायुधोंकनी रूप से, विष्णु व्यापक रूप से, लक्ष्मी खजाना स्वरूप से, इंद्र खिड़की रूप हजारों नेत्रों से, सूर्य सुर्ख लालटेन रूप से, चंद्रमा श्वेत लालटेन रूप से, यमराज गार्ड रूप से, यमदूत चपरासी रूप से और भगवान सदाशिव मृत्यु को साथ लेकर गाड़ी लड़ने के समय काल रूप से निवास करते हैं। अतएव हो सर्वदेवानां प्रिये! हे सर्वतोभद्रचक्रे! तुम स्वर्ग, वैकुंठ, कैलाश, नरक सबकी आधार हो।'[13]

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में प्रशस्तिगान द्वारा सभी को प्रसन्नता प्रदान करने वाले चाटुकारों के युग में सरकारी व्यवस्था पर जमकर व्यंग्य करने की क्षमता गोस्वामीजी की तेजस्वी लेखनी का साहसिक प्रमाण है। डॉ॰ रामविलासस शर्मा ने उन्हें भारतेंदुयुग में सबसे उग्रविचारों के लेखक का सम्मान प्रदानि किया है। 'सच तो यह है कि उनके आचार और विचार उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में किसी प्रकार की असंगति नहीं थी। उनका प्रचार कार्य किसी संप्रदाय से संबद्ध न था और न तो किसी मतवाद से उनकी मनोभूमि शासित थी। और यही कारण है कि उनकी सहजता कहीं खंडित नहीं हुई, जातीय स्वर मद्धिम नहीं पड़ा।'[14] गोस्वामी जी का व्यंग्य लेखन जितना तीक्ष्ण और सोद्देश्यपूर्ण है, उतना ही तर्कसंगत तथा निर्भीकतापूर्ण भी है। संस्कृत शब्दावली के साथ ब्रजभाषा के माधुर्य से मिश्रित खड़ीबोली का जैसा उपयोग तत्कालीन सुधारवादी नूतन विचारों के प्रसार हेतु उन्होंने अपने व्यंग्यनिबंधों में किया है, वैसा आधुनिककाल के अधिकांश लेखक नहीं कर पाए हैं। 'जब वह धार्मिक अंधविश्वासों पर चोट करते हैं, तो उनकी बोली में कबीर के प्राण बजते दीखते हैं। कबीर के व्यंग्य में कटु तीखापन है, गले से उतरते हुए लकीर-सी खिंचती है, गोस्वामी जी का व्यंग्य शहद में डूबा हँसी में लिपटा और

कल्पना से रंगीन है।'[15]

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य में हास्यरस, डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, 1957 ई॰, पृ॰ 42
2. हिंदी गद्य शैली का विकास, जगन्नाथप्रसाद शर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत 1990 वि॰, पृ॰ 18
3. वही, पृ॰ 60
4. राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, राधाचरण गोस्वामी, संपादक कर्मेंदुशिशिर, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990 ई॰, पृ॰ 19
5. हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास, डॉ॰ मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1970 ई॰, पृ॰ 154–155
6. भट्ट निबंधमाला (द्वितीय भाग), बालकृष्ण भट्ट, संपादक श्री धनंजय भट्ट, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, संवत 2030 वि॰, पृ॰ 64
7. प्रतापनारायण ग्रंथावली, प्रतापनारायण मिश्र, संपादक विजयशंकर मल्ल, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, संवत 2049, पृ॰ 50
8. हिंदी के व्यंग्य निबंध, डॉ॰ आनंदप्रकाश गौतम, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना (गुजरात), 1990 ई॰, पृ॰ 31
9. प्रेमघन सर्वस्व (द्वितीय भाग), बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, पृ॰ 186
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत 2012, पृ॰ 309
11. राधाचरण गोस्वामी की चुनी हुई रचनाएँ, राधाचरण गोस्वामी, संपादक कर्मेंदुशिशिर, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990 ई॰, पृ॰ 64
12. वही, पृ॰ 54
13. वही, पृ॰ 41
14. हिंदी पत्रकारिता, डॉ॰ कृष्णबिहारी मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1985 ई॰, पृ॰ 191
15. हिंदी निबंधकार, डॉ॰ जयनाथ नलिन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ॰ 98

द्वारा श्रीमती रजनी उपाध्याय
डॉक्टर्स कालोनी
मेहरा स्टेट, सिविल लाइंस
बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ : 09927373723

गढ़वाली लोकगाथाओं का लोकसाहित्यिक स्वरूप

डॉ॰ वीरेंद्रसिंह बर्त्वाल

गढ़वाली लोकगाथाएँ यहाँ के संगीत की अभिन्न अंग रही हैं। आख्यानमूलक इन गाथाओं में यहाँ के लोक के इतिहास, धर्म एवं जनजीवन का सुंदर प्रतिबिंबन होता है। लोक की भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति इन गेय कथाओं में प्राचीन गढ़वाल के हर्ष-विषाद, हास-परिहास, समृद्धि, निर्धनता, करुणा-अनुराग एवं शौर्य-पराक्रम का उत्कृष्ट प्रदर्शन मिलता है।

लोकगाथा पौराणिक आख्यान है। ऐसा आख्यान, जो गाकर प्रस्तुत किया जाता है। अर्थात् लोकगाथा गीतों के रूप में गाकर कही जाने वाली कथा है, जिसमें प्राचीनता, ऐतिहासिकता, भक्ति, साहस और धर्म के तत्त्व समाविष्ट होते हैं। आख्यानमूलक इस गेयता में सच और कल्पना का सुंदर आकर्षक समन्वय होता है।

लोकगाथा गीत की भाषा में लंबा-चौड़ा वह रोचक आख्यान है, जिसमें कल्पना के साथ ऐतिहासिक बिंदु भी होता है।[1]

लोकगाथाएँ प्रबंधात्मक गीत हैं। इनमें गेयता के साथ कथानक की प्रधानता होती है।... लोकगाथाएँ आकार में बड़ी और विस्तृत तथा लोकगीत छोटे होते हैं। इनमें प्रेम का गहरा पुट, संघर्ष और अंत में प्रेम की जीत होती है।...ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पद्य अथवा गीत के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'गामिन' शब्द का प्रयोग गाने वाले के अर्थ में किया गया है। 'गाथा' शब्द एक विशिष्ट विधा के लिए प्रयोग किया मिलता है।[2]

गढ़वाली लोकगाथाओं में अतीत से वर्तमान और वर्तमान से अतीत का प्रभाव व्यक्त हुआ है। युग-युग से यहाँ निवास करती आई कोल, यक्ष, गंधर्व, द्रविड़ जातियों की परंपराओं का प्रभाव संचित होकर इनमें आता रहा होगा।[3]

स्पष्ट होता है कि लोकगाथाएँ वास्तव में ऐसे रोचक गीत होते हैं, जिनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय रहता है। यह गाथाएँ गेय होती हैं, जो अवसर विशेष पर गाई जाती हैं। लोकगीतों की तरह ही गढ़वाल में लोकगाथाओं का विशद् भंडार है। एक समय में गढ़वाल में ये अनुष्ठान का अंग होने के साथ ही मनोरंजन का भी प्रमुख माध्यम थीं।

गढ़वाल में लोकगीतों के समान ही लोकगाथाओं का बहुत बड़ा अक्षय भंडार है। अंतर इतना ही है कि लोकगीत खास अवसर की अपेक्षा नहीं रखते, किंतु लोकगाथाएँ अवसर-विशेष से संबंधित होती हैं। जागर गाथाएँ धार्मिक गाथाएँ होने के नाते आनुष्ठानिक होती हैं, चैती गाथाएँ चैत के महीने में औजियों द्वारा किसी समय गृह-द्वारों पर गाई जाती थीं और वीरगाथाएँ तो युद्ध के समय चंफ्या, हुड़क्याओं तथा भाटों द्वारा मध्यकाल में रची और गाई जाती रहीं।[4]

आकार, भाव, गायन-पद्धति और वर्ण्य-विषय के आधार पर गढ़वाली लोकगाथाओं को कई रूपों में विभाजित किया जा सकता है, लेकिन इस वर्गीकरण में एक गाथा की दूसरी से कुछ-कुछ मेल खाती विशेषता इसमें बाधा उत्पन्न कर देती है। उदाहरण के लिए प्रणय-प्रधानता के कारण इन गाथाओं को प्रणय-गाथा कहा जा सकता है, लेकिन वीरता की घटनाओं वाली तथा धर्मप्रधान गाथाएँ इनसे अछूती नहीं हैं। इस तरह प्रणय-गाथाओं में भी वीरता के प्रसंग आते हैं तो अनेक जागरों में प्रणय-प्रसंग। वैसे प्रकृति के आधार पर यदि विचार करें तो गढ़वाली गाथाएँ धर्म, वीरता, प्रणयतत्त्वों की प्रधानतावाली ही हैं। धर्मतत्त्व वाली गाथाएँ वे हैं, जिनके प्रस्तुतिकरण में देवी-देवता अवतरित होते हैं। वीरता वाली गाथाएँ युद्ध-संघर्षों के वर्ण्यविषय वाली हैं तथा प्रणयतत्त्व वाली गाथाओं का वर्ण्यविषय प्रेम है। कुछ इसी प्रकार का वर्गीकरण गढ़वाली लोकगाथाओं के मर्मज्ञ डॉ॰ गोविंद चातक ने किया है। उन्होंने इन गाथाओं को चार वर्गों में विभाजित किया है।[5]

जागर गाथाएँ : इन्हें धार्मिक गाथाएँ भी कहा जा सकता है। जागर, गीत और गाथा दोनों रूपों में मिलते हैं। जागर गाथाएँ सामान्यत: दैवीशक्ति के आह्वान तथा माध्यम को देवता के रूप में नचाते हुए जागरी पुरोहित अथवा आवजी-वादक द्वारा गाई जाती हैं। नागराजा, पांडवों आदि की गाथाएँ जागर गाथाओं के अंतर्गत आती हैं।

पवाड़े अथवा वीरगाथाएँ : ये मध्यकाल की रचनाएँ हैं, जब गढ़वाल 52 गढ़ों में विभाजित था। इन गढ़ों में सामंत अपनी सत्ता के लिए एक-दूसरे से लड़ाई करते थे। वे स्वयं वीर होने के साथ ही वीरों को जागीर या वेतन देकर सेना में भी रखते थे। इन गढ़वाली गाथाओं के अंतर्गत कफू चौहान, कालू भंडारी, सुरजू कुँवर, ब्रह्मकुँवर, तीलू रौतेली, भानू भौंपेलो आदि पवाड़े आते हैं।

प्रणय-गाथाएँ : प्रणय-गाथाएँ प्रेमगाथाएँ हैं। प्रेम इनका मुख्य विषय है। घटनाओं का विचित्र ढंग से घटना, स्वप्न में प्रेम के भाव का उदय अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से मुग्ध हो जाना, नायिका तक नायक के पहुँचने का प्रयत्न, बाधा उपस्थित होना, उस पर विजय प्राप्त करना और अंत में विवाह संपन्न होना, बीच में युद्ध होना, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना का प्रयोग, देवताओं का अनुग्रह अथवा कोप, जीव-जंतुओं के द्वारा सहायता प्राप्त करना आदि इनकी विशेषताएँ हैं।

विषय की दृष्टि से इन्हें भी रूपाकर्षणपरक सत अथवा दांपत्य जीवनपरक, योगपरक, धर्मपरक तथा मातृप्रेमपरक पाँच भागों में विभाजित किया गया है। जीतू बगड्वाल, फ्यूंली रौतेली, रामी, सरू, राजुला, मलूशाही आदि गाथाएँ इनके अंतर्गत आती हैं।

चैती गाथाएँ : इन गाथाओं को औजी (ढोल वादक) सवर्णों के गृहद्वारों पर अन्न माँगते हुए गाते हैं। वर्ण्यविषय की दृष्टि से इनमें मायके और वहाँ के स्वजनों विशेषत: भाइयों के प्रति अपार स्नेह व्यक्त हुआ है। सदेई की गाथा इस वर्ग की प्रमुख गाथा है। दान को प्रेरित करती राजा बलि की गाथा भी इस वर्ग की गाथा के अंतर्गत आती है।

लोकसाहित्य के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करें तो गढ़वाली लोकगाथाओं का यहाँ के लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में लोकसाहित्य लोक की अभिव्यक्तियों का ऐसा ढाँचा है, जिसमें अस्तित्व निर्माण में अनेक अज्ञात हाथों का योगदान समाहित होता है। कालांतर में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रहने वाला यह ढाँचा सबके लिए उपयोगी थाती बन जाता है। लोक की

 ISSN 0975-735X

अभिव्यक्ति जनसामान्य की थाती, व्याकरणीय सीमा से मुक्त जैसी लोकसाहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ गढ़वाली लोकगाथाओं में दृष्टिगोचर होती हैं।

गढ़वाली लोकगाथाएँ संपूर्ण गढ़वाल लोक की थाती हैं। यह किसी रचनाकार अथवा जाति-समुदाय विशेष की संपत्ति नहीं हैं। जब तक गढ़वाल का लोकरचनाकार-विशेष की गेय कथा को स्वीकृति प्रदान नहीं करता, तब तक वह गाथा नहीं बन पाती है। इस धरोहर पर यहाँ के संपूर्ण लोक का स्वामित्व है, क्योंकि संपूर्ण लोक उसका आनंद लेता और उपयोग करता है। ये गाथाएँ न तो एक व्यक्ति द्वारा गाई जाती हैं और न ही एक व्यक्ति उनका श्रोता होता है। यह सामूहिक रूप से गाई-सुनी जाती हैं। एक ही आराध्य की उपासना-स्तुति विभिन्न उपासकों द्वारा अपनी-अपनी विधि से किए जाने का सिद्धांत भी यहाँ सार्थक सिद्ध नहीं होता है। कोई गाथाकार किसी गाथा को अपनी ही विशेष विधि से प्रस्तुत करता है तो गाथा से न केवल रोचकता समाप्त हो जाएगी, बल्कि वह उपहास का विषय भी बन जाएगी।

लोक की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। लोक में घटित होनेवाली घटनाएँ, परंपरा, विश्वास आस्था और प्रकृति से मानवसंबंधों आदि को गीतों, कथाओं और गाथाओं के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

गढ़वाली लोकगाथाओं में भी इसी तरह लोक की सर्वांगीण-सर्वपक्षीय अभिव्यक्ति हुई है। कई गाथाओं में इतिहास की मूल घटनाएँ अभिव्यक्ति के लिए अवलंब बनाई गई हैं। अर्थात् मूल घटनाओं की आत्मा में अभिव्यक्ति का अवरण ओढ़ उसे कल्पना तत्त्वों से अलंकृत करने के पश्चात गाथा का स्वरूप दिया गया है। जीतू बगड्वाल की गाथा में अपशकुन, अंधविश्वास और रूढ़ि को प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। जीतू के अपनी बहन (सोबनी/शोभनी) की ससुराल जाने से पहले बकरी का छींकना, उसके कपड़ों का अनायास मैले-कुचैले होना, अरसों (एक पहाड़ी पकवान) के पाग टूटना जैसा लोक में व्याप्त अपशकुन के पूर्वाभासों को इस गाथा में व्यक्त किया गया है–

तिला बखरी तेरी छ्यूंदी
x x x x
तेरी कपड़ी होईन झोसी-मोंसी
आरस्यों का पाग ठन-इन टूटीगे।[6]

किसी भी लोक की सरल और स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति लोकसाहित्य कहलाता है। यह व्याकरणीय सीमाओं में बँधा नहीं होता है। गढ़वाली लोकगाथाएँ भी व्याकरणीय बंधन से मुक्त हैं। यहाँ तक कि गढ़वाली साहित्य का कुछ अंश भी अभी तक व्याकरणीय सीमा से मुक्त है।

गढ़वाली गद्य में अभी तक परिपक्वता नहीं आ पाई है, जो अपेक्षित है। इस क्रम में कठिनाई यह रही है कि गढ़वाली में अभी तक एक सर्वसम्मत व्याकरण के नियमों पर आधारित ठोस गद्य नहीं बन पाया है। बल्कि पौड़ी, चमोली, टिहरी और उत्तरकाशी के आंचलिक संस्कार उसमें भरे पड़े हैं।[7]

लोकसाहित्य की एक प्रवृत्ति है कि वह लिपिबद्ध नहीं होता है।

शिष्ट साहित्य लिखित होता है, लोकसाहित्य की तरह श्रुति-परंपरा पर आधारित नहीं होता, लेखबद्धता इनकी प्रमुख विशेषता है, जबकि लोकसाहित्य को लिपिबद्ध कर देने के पश्चात्

उसकी अनुप्राणिक शक्ति नष्ट हो जाती है।[8] गढ़वाली लोकगाथाओं में लोकसाहित्य की यह प्रवृत्ति विद्यमान है। जागरी, बाद्दी एवं आवजी ढोल वादक इनके संरक्षक, प्रचारक एवं प्रसारकर्ता हैं।

लोकसाहित्य का स्वरूप अभी भी स्थिर नहीं रहता है। इसमें प्रकृति की तरह परिवर्तनशीलता है। इन लोकगाथाओं में भी परिवर्तनशीलता का यह लक्षण है। ये मौखिकता के कारण ही परिवर्तनशील हैं। समय और स्थान (देश-काल) के अनुसार ये परिवर्तित होती रहती हैं। एक ही वंश की भिन्न-भिन्न पीढ़ियाँ इन्हें भिन्नता के साथ गाती आ रही हैं। दादा की गाई गाथा में पिता, पिता की गाई गाथा में पुत्र कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य करता है।

लोकसाहित्य पूरी तरह समाज से संबद्ध होता है, क्योंकि वह लोक की अभिव्यक्ति होता है और लोक ही उसे शब्दों का रूप देता है, जो उसके जीवन के चारों ओर घटित होता है। लोकसाहित्य एक परंपराजन्य साहित्य है, जिसका सीधा संबंध समाज से होता है।[9]

गढ़वाली लोकगाथाएँ यहाँ के समाज से घनिष्ठता के साथ संबद्ध हैं। ये गाथाएँ प्राचीन गढ़वाली समाज को तो प्रतिबिंबित करती ही हैं, साथ ही वर्तमान समाज में पारस्परिक संबंधों, प्रकृति के साथ मानव के संबंधों, संगीत एवं लोकविश्वासों का भी उद्घाटन करती हैं।

गढ़वाल में विवाह जैसे संस्कारों के निर्विघ्न समापन के लिए मंगलाचार और गणेश आदि देवताओं का आह्वान कर कामना की जाती है। गाथाओं में आरंभिक चरण में भी विभिन्न देवी-देवताओं का नामोच्चारण किया जाता है। जागर गाथाओं में देवी-देवताओं के नामोच्चारण के साथ ही विभिन्न तीर्थस्थलों का भी नाम लिया जाता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गढ़वाली लोकगाथाएँ यहाँ के लोक की उत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं। इनमें गढ़वाल के लोकजीवन के इंद्रधनुषी ताने-बाने और यहाँ के समाज के सुख-दुखों की सुंदर झलकियाँ विद्यमान हैं। ये गाथाएँ मनोरंजन का स्रोत ही नहीं हैं, अपितु इनकी शब्द-संपदा और गायन-पद्धति भी आकर्षक एवं अनूठी है। इनका शिल्प-सौंदर्य अद्वितीय है। इनके गायन और प्रस्तुतिकरण के निश्चित सिद्धांत हैं। विभिन्न चरणों की गाथाएँ करने वाली गाथाओं के प्रत्येक सोपान का विशेष महत्त्व होता है। इनकी गायन-शैली ऐसी लयात्मक और भावना प्रधान होती है कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। कल्पना, फंतासी, बुद्धि और वाक्चातुर्य, रहस्य और औत्सुक्य तत्त्वों से निर्मित गाथाओं में अतीत और वर्तमान के दर्शन एक साथ होते हैं। गाथाओं के प्रत्येक शब्द मंत्रों के समान परिलक्षित होते हैं। अर्थात् जितना ठोस इनका भावपक्ष होता है, उतना ही सशक्त कलापक्ष। क्षेत्र के मनोविज्ञान एवं भाषाविज्ञान की दृष्टि से इनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

जागर गाथाओं में गढ़वाल की धर्म-अध्यात्म भावना का प्रकटन होता है। ये गेय गाथाएँ भक्तों को वैदिक एवं प्राचीनकालीन गढ़वाल की यात्राएँ कराने में सक्षम हैं। जागर गाथाओं का शब्द-समन्वय, वाक्य-गठन एवं लय इस प्रकार की होती है कि उससे स्वत: एक धार्मिक-आध्यात्मिक वातावरण की अभिसृष्टि हो जाती है। अनूठी शब्दसंपदा और संगीत-ध्वनियों के कारण इन गाथाओं का स्वरूप मांत्रिक प्रतीत होता है। इनकी यही विशेषता मानव पर देवता अवतरित कराने में सक्षम है।

गढ़वाली लोकगाथाएँ यहाँ के लोकजीवन में प्रचलित अनूठा काव्य हैं। इनके आधार पर पौराणिक, ऐतिहासिक आख्यान एवं काल्पनिक कथा-विचार हैं। अनूठी शब्द-संपदा, समन्वय एवं

 ISSN 0975-735X

अनूठे संगीत के कारण ये मंत्रों का स्वरूप ले पाई हैं। जागरों के गायन में देवता अवतरण का यही कारण हो सकता है। भावों की गंभीरता एवं रससंपृक्तता इनकी प्रमुख विशेषता है। मानव-मन को मोहित करने वाली शक्ति से युक्त इन गाथाओं में भिन्न-भिन्न वातावरण उत्पन्न करने की अनोखी क्षमता है।

संदर्भ

1. मोहनलाल बाबुलकर, गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्क अध्ययन, पृ॰ 92
2. वही, हिमओज (अप्रैल-जून 2003) पृ॰ 12
3. अबोधबंधु बहुगुणा, धुयांल, पृ॰ 30
4. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोकगाथाएँ, पृ॰ 4
5. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ मध्य हिमालय, पृ॰ 243-45, 267-70, 289-301, 304-6
6. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोकगाथाएँ, पृ॰ 291
7. डॉ॰ सरला रमण, गढ़वाल और गढ़वाल (सं॰ चंद्रपालसिंह रावत) पृ॰ 154
8. डॉ॰ आरपीएस चौहान, दिनकर के प्रबंधकाव्य : लोकतत्त्व एवं शिल्प, पृ॰ 11
9. डॉ॰ आरपीएस चौहान, दिनकर के प्रबंधकाव्य : लोकतत्त्व एवं शिल्प, पृ॰ 10

अतुल्य उत्तराखंड
एच-३०१, नेहरू कालोनी, धर्मपुर, देहरादून
उत्तराखंड-248001
मो॰ 09411341443
मेल- veeremdra.bartwal8@gmail.com

गढ़वाली लोकगीतों में नारी

कुमारी सुमन
डी॰ए॰वी॰ (पी॰जी॰) कालेज
देहरादून (उत्तराखंड)

गढ़वाली लोकगीतों में लोक अर्थात् जनसामान्य की विविध गहन भावानुभूतियों का मर्मस्पर्शी चित्रण दृष्टिगोचर होता है। इन गीतों में स्त्री-मन की विविध स्थितियों का भावमय अंकन हुआ है। नारी के अंत:स्थल में उठनेवाली अनेक संवेदनाओं का अंकन गढ़वाली गीतों में हुआ है। इसी प्रकार गढ़वाल की नारी के जीवन के विविध आयामों को इन गीतों में दर्शाया गया है। गढ़वाली खुदेड़ गीतों में नारी के अनेक सुकोमल भावों की सरस, सजल अभिव्यंजना हुई है। गढ़वाली नारी की पीड़ा अथवा वेदना को इन गीतों में सहजता से अवगुंठित किया गया है। इसी प्रकार प्रणय-गीतों में नारी के बाह्य सौंदर्य का चित्रण भी किया गया है। डॉ॰ गोविंद चातक का कथन है–'खुदेड़ गीत केवल स्त्रियों के गीत हैं, क्योंकि मायके की 'खुद' प्रकृति रूप से उन्हीं के हिस्से आई है।'[1]

अपने पीहर अर्थात् मायके से विलग होकर नारी निरंतर उसके विरह में तड़पती है और कहती है कि अन्य लोग तो कुछ समय के लिए ही दुखी होते हैं किंतु मायके से दूर रहकर बेटी बारह महीने दुख से संतप्त रहती है–

हौर लोक झूरला दिन द्वि दिन, बेटी झूराली बारओं मास।[2]

मायके की स्मृति का दंश उसे निरंतर झेलना पड़ता है। अपने अनमोल वैवाहिक जीवन से त्रस्त गढ़वाली नारी माता-पिता के प्रति आक्रोश के भाव को व्यक्त करती है। छोटी उम्र में विवाह हो जाने पर असीम पीड़ा, दुखों को झेलती हुए गढ़वाली नारी अपने माता-पिता को उलाहना देते हुए व्यंग्यपूर्वक कहती है कि पिताजी मैं तो तुम्हारे आँगन की चिड़िया थी, तुम्हारे असीम स्नेह की अधिकारी थी, किंतु तुमने मेरा विवाह करके मुझे अपने से बहुत दूर कर दिया–

मी छाई बाबा तुमारी रौल्यों की चोली
x x x
तुमल कख भी पिंजड़ा ढोली ब्यौ को लोब![3]

और अपनी माँ से कहती है–

मी छाई मां जी, तेरी लाड की पालीं
x x x
मी पर पड़ीन मांजली हातू हथगड़ी, पैरू मा बेड़ी! [4]

अत: असीम प्रेम के वातावरण में पली-बढ़ी नारी जब ससुराल में निरंतर कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करती है, तो अपनी माँ से शिकायत भरे शब्दों में कहती है कि तू कितनी निष्ठुर

 ISSN 0975-735X

है। मेरा स्मरण भी नहीं करती है। पिताजी बैरी बन गए और तू भी रूठ गई है–
और अपनी माँ से कहती है–

तेरी लगदी खुद माँजी भैजी रूमैल

x x x

कै मू बुझौण माँजी यो खुद्यूं पराणी माँजी रूमैल। [5]

अपने ससुराल को निर्दयी लोगों की नगरी बतलाते हुए वह अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती है–

मैं छऊं बैणी निरदया नगुरी

x x x

जौं कू बाटो हिटेन्दू मां जी, तौंका खुट्टू, मा कने सेयूलू? [6]

असीम कष्टों से जीवन का उल्लेख करते हुए गढ़वाली नारी कहती है कि जिस प्रकार वृक्ष, सूख जाता है उसी प्रकार मेरा शरीर भी शिथिल पड़ चुका है। अत: अब ससुराल में सुख मिलने की संभावना नहीं है और मायके में भी सुख की अनुभूति नहीं हुई–
और अपनी माँ से कहती है–

आँगण सूखे डाली मेरो तसो सूखंद गात
क्या सुख मिलण सैसर क्या सुख मिलै मैत।[7]

गढ़वाली नारी अपने माँ-पिता को संबोधित करते हुए अपनी पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है–

धार उरख्याली डांडू बथधौं नीच!

x x x

मेरा खुटा, बंध्यां ब्वै अटकीक चलेन्दू भी नी चू।[8]

प्रस्तुत गीत में गढ़वाली नारी ससुराल में मिलने वाले विविध कष्टों का वर्णन करती है और अपने मायके द्वारा याद न किए जाने पर निराशा के भाव से घिर जाती है। इसी प्रकार नारी अपने अशिक्षित होने पर भी दुखी होती है। अपने पिताजी को उलाहना देते हुए वह कहती है कि यदि मैं बेटी के स्थान पर अपने पिता का बेटा होती तो वे मुझे स्कूल भेजते, किंतु मैं तो जैसे उनकी शत्रु निकली। उन्होंने मेरा विवाह कर दिया अर्थात् शिक्षा से मुझे वंचित कर दिया। उन्होंने विवाह करके मुझे अपने से दूर कर दिया–

बाबू को लाड़ी होंदी मां, रंदी स्कूल।

x x x

ब्वै का लाडा ब्वै मू होला मैं बेटी दुराई![9]

नारी अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहती है कि जब मैं केवल बारह वर्ष की छोटी-सी बालिका थी, तो उसी समय अपने ऋण से मुक्त होने के लिए पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् ससुराल में मुझे अनेक कष्ट उठाने पड़े। इन कष्टों को सहते हुए अब मैं कैसे धैर्य धारण करूँ। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

बार बरस की कन्या कुँवारी
बाबा जील दीने माँजी कर्ज की मारी!

कनै धीरज धरूँ सूरू करौं साँसू।[10]

अपने विडंबनापूर्ण दुखमय जीवन से व्यथित होकर नारी कहती है कि हे माँ मेरा जीवन कष्टों से भरा हुआ है। मेरे इस दुखपूर्ण जीवन पर परमात्मा को भी दया नहीं आती है, अर्थात् वे भी मेरे लिए निष्ठुर बने हुए हैं, यहाँ अर्थात् ससुराल में कठिन परिश्रम करने के पश्चात् भी सुख की आशा नहीं दिखाई देती–

कनी तकदी ह्वै माँ जी मेरी
सदानी रैन जिंदगी मा खैरी।

x x x

नजीक नी चबण दुरू छ पाणी।[11]

गढ़वाल की नारी को ससुराल में मिलने वाले कष्टों के केंद्र में सास भी होती है। गढ़वाली लोकगीतों में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार एक स्त्री अर्थात् सास, दूसरी स्त्री अर्थात् बहू पर अत्याचार करती है। इस स्थिति का अवलोकन करके कहीं न कहीं घरेलू हिंसा जैसी घटना पर प्रकाश पड़ता है। सास द्वारा मिलने वाले विविध कष्टों का उल्लेख करते हुए वह कहती है कि हे माँ! मेरी सास मेरे हृदय को ठेस पहुँचाती है। वह मुझे रूखा-सूखा खाना देती है और गालियाँ भी देती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार से मुझे यातनाएँ देती है–

सासू जी न करे माँ जी, जिकूड़ी का छेंड!

x x x

तुमारी छै लाड़ी माँजी सैसर्यों की बूरी![12]

इसी प्रकार अन्यत्र भी ससुराल में सास द्वारा दिए जाने वाली यातनाओं का मार्मिक उद्घाटन गढ़वाली नारी इस प्रकार करती है–

देखा रे लोगू सासू का हाल, करणी छ कनी या मेरी क्वाल!

x x x

तुई बतौ अब हे मेरी माँ जी, इना सैसर कनकैक मैं रां जी![13]

अर्थात् मेरी सास मेरे साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करती है और मुझे मानसिक प्रताड़ना देती है। सास द्वारा दिए जाने वाले शारीरिक और मानसिक कष्टों से दुखी होकर आँसू बहाते हुए वह कहती है–

साउरो मेरो भलो माणस कंजरी मेरी सासू।

x x x

रोई रोई काईं, रूमैल भीजी कुई ना पूँछे आँसू![14]

सास द्वारा प्रताड़ित गढ़वाली नारी की वेदना का एक कारण पति का सुदूर निवास करना भी है। अनमेल विवाह भी गढ़वाली नारी के दुखों का एक प्रमुख कारण है। इनका चित्रण भी गढ़वाली लोकगीतों में हुआ है। पति से दूर रहकर जीवन निर्वाह करने के दर्द को नारी इन शब्दों में व्यक्त करती है–

तौं सणी माल को ढब, मैं सणी पाड़ की माया।
मेल्वड़ी बासली, खुद मा मी बौलेई गयूं ह्वै गयूं एखुली।[15]

अर्थात् मेरे पति को तो मैदानों में निवास करने की आदत है और मुझको इन पहाड़ों

से लगाव है। अत: उनकी स्मृतियों में खोकर, उन्मत्त होकर मैं एकाकी जीवन व्यतीत कर रही हूँ। अपने प्रिय के अभाव में उद्विग्न होकर वह कहती है कि समस्त धरा पर अनेक प्रकार के पुष्प पल्लवित हो रहे हैं किंतु प्रिय के अभाव में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है–क

ऐ गए पंचमी संकराँद ऐ गए

x x x

मेरो मायादार जोड़ीदार घर छै नी![16]

परदेश में बसे अपने पति की स्मृतियों में लीन नारी अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए कहती है कि मैं नितांत अकेली हूँ, क्योंकि मेरे स्वामी (पति) परदेश में रह रहे हैं। उनका कोई संदेश भी मुझे प्राप्त नहीं होता। जिससे मैं दिन-रात उनके लिए चिंतित रहती हूँ–

एकलू पराण दीदी, कुछ नी मैं गौंदी

x x x

ऊंको दंदोल दीदी, मैं क दिन राती![17]

अन्यत्र भी वह इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहती है–

ज्वानि उडिगे ब्वै बाटो हेरी हेरी

x x x

मेरी जीकूड़ी मा ब्वै, कुयड़ि सी लौंकी![18]

और–

स्वामी म्यारा परदेश क्वी नी पूछदारो

बण गै छई घर आई कि ना?[19]

अर्थात् मेरे प्रिय पति परदेश गए हैं। यहाँ ससुराल में किसी को मुझसे कोई मतलब नहीं है कि मैं लकड़ी, घास लेने जंगल गई थी घर आई कि नहीं आई।

इसी प्रकार अनमेल विवाह होने के कारण गढ़वाल की नारी का जीवन विषम परिस्थितियों से घिर जाता है। अपने से अधिक उम्र के पुरुष से विवाह होने के तदंतर दुखों को झेलती नारी कहती है कि हे पिताजी! तुमने मेरा विवाह एक बूढ़े व्यक्ति से कर दिया है। जिससे मुझे अत्यधिक कष्ट हो रहा है। मैं इतनी दुखी हूँ कि पेड़ पर लटककर फाँसी लूँगी या फिर खाई में गिरकर प्राण त्याग दूँगी–

मैं दिन्यूं बाबा बुड्या खाड्या दूजे दिने बाटा को गाऊँ

कित लालू बाबा डाला फाँस, कित सालू मारलू दाऊँ।[20]

बूढ़े पति द्वारा दी गई यातनाओं को सहते हुए नारी अपने अंतर्मन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती है–

बाबान नी देखो बुड्या को रूप।

x x x

यो बुड्या नी जान ये मैनी पोर, ये सणी खायान देवता मायेसोर![21]

इसी प्रकार अन्यत्र भी अनमेल अर्थात् बूढ़े पति से विवाह करके कष्टपूर्ण जीवनयापन करते हुए नारी कहती है–

बाट पुंगड़ी लड़बडी तोर, बुड्या नी जांदो संगरादी पोर।

x x x

पकी जालो भात पसायो मांड, कन कैक रैलो बालातन रांड?[22]

अपनी तरुणावस्था में बूढ़े पति के साथ जीवनयापन करती नारी अत्यंत करूणाभरे स्वर में कहती है–

के पैलू मैंन जलम लीक, तरुणी उमर मैं बुड्या जीक।
रोणी की रंदी मैं सेरी रात, छोटू नी बड़ो क्वी मेरा सात।[23]

अनमेल विवाह से त्रस्त नारी के ही समान मैदानों के सुविधापूर्ण जीवन में पली-बढ़ी नारी पहाड़ों में आकर अर्थात् पहाड़ क्षेत्र में विवाह करने के उपरांत असीम पीड़ा का अनुभव करती है और कहती है–किलैचचा जूल पहाड़ बिवाई? ....ये पापी पहाड़ घाघरी पैरानी।[24] और–

भवां मा दवाती घुड्यों मा किताबी

x x x

चाचा कू मर्यान, पहाड़ बेवाई।[25]

इन सब कठिन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह करनेवाली स्त्री का एकमात्र सहारा प्रकृति ही है। प्रकृति के विविध उपादानों का आश्रय लेकर गढ़वाली नारी अपनी संवेदानाओं को प्रकट करती है। गढ़वाल अंचल के विविध फूलों, पक्षियों इत्यादि प्राकृतिक अवयवों के माध्यम से नारी अपनी मार्मिक अनुभूतियों को उद्भासित करती है। प्रकृति के असीम वैभव का अवलोकन करके उसे अपने मायके की याद आने लगती है–

सिरी पंचमी मऊ की/ बाँटी हरयाली जऊ की।

x x x

खुद लगीं च मैत की/ फुलीं डाली चैत की![26]

प्रकृति के द्वारा नारी संदेश-प्रेषण का कार्य करती है। घुगूती अर्थात् फाख्ते को वह अपनी माँ तक संदेश पहुँचाने को कहती है–

मेरी प्यारी घुगती जैली, मेरी माँ को रैबार लैली।

x x x

मैं भी अपणा मैत जौलू, अपणी माँजी-भेंटीक औलू![27]

कफू पक्षी को अपना आत्मीय जन बतलाते हुए नारी कहती है–

कफू बासलो मेरा मैत्यों का मैती/ कफू बासलो मेरा मैत्यों की तिर।[28]

इसी प्रकार अपने पीहर की प्यारी पवन, नदी-नालों, कफू, हिलास, पक्षियों को संबोधित करते हुए नारी कहती है कि तुम सब जाकर मेरी माँ को संदेश दे दो कि मैं सदैव तुम्हारी स्मृतियों में डूबी रहती हूँ, इसके साथ ही तुम मेरे मायके के गीत सुनाओ–

मैत कि तु त पौन प्यारि

x x x

मैत को मेरा तुम गीत गावा।[29]

अत: गढ़वाली लोकगीतों में नारी के जीवन के विविध आयामों का अकृत्रिम, मनमोहक चित्रण हुआ है। नारी के अंत:स्थल के सुकोमल, मार्मिक भावानुभूतियों का सहज चित्रण इन गीतों में हुआ है।

संदर्भ

1. गोविंद चातक, गढ़वाली लोकगीत, रवींद्र भवन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000
2. वही, पृ॰ 28
3. वही, पृ॰ 86
4. वही, पृ॰ 87
5. वही, पृ॰ 67
6. वही, पृ॰ 51
7. वही, पृ॰ 119
8. वही, पृ॰ 105
9. वही, पृ॰ 103
10. वही, पृ॰ 96
11. वही, पृ॰ 91
12. वही, पृ॰ 103
13. वही, पृ॰ 98
14. वही, पृ॰ 96
15. वही, पृ॰ 30
16. वही, पृ॰ 39
17. वही, पृ॰ 63
18. वही, पृ॰ 72
19. वही, पृ॰ 100
20. वही, पृ॰ 104
21. वही, पृ॰ 111
22. वही, पृ॰ 113
23. वही, पृ॰ 89
24. वही, पृ॰ 89
25. वही, पृ॰ 90
26. वही, पृ॰ 32
27. वही, पृ॰ 54
28. वही, पृ॰ 55
29. वही, पृ॰ 61

द्वारा मोहन कुकरेती
गौतम विहार, पद्मपुर सुखरो
कोटद्वार 246149 **(पौड़ी गढ़वाल)**
मो॰ : 09758109636

छंदशास्त्र को डॉ॰ गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र' की देन

डॉ॰ नूतन राय
प्लस टू शिक्षिका (हिंदी)
टी॰एन॰बी॰ कॉलेजिएट इंटर स्कूल, भागलपुर (बिहार)

छंद की आत्मा लय है और लय एक संयत व्यवस्था है, जो स्वर के आरोह-अवरोह से जन्म ग्रहण करती है। दूसरे शब्दों में, छंद प्राणों (अल्पप्राण-महाप्राण) की लयात्मक काया है। यह लयात्मक वाणी हमारे कंठ से तब फूट पड़ती है, जब हम सुख-दु:ख के आधिक्य से अभिभूत हो उठते हैं (जैसे-वेद के ऋषि जब प्रकृति की रमणीयता को देखकर आनंद-गद्‌गद् हो गए, उसके विराट व्यापार का अवलोकन कर विस्मय-विमूढ़ हो गए तथा उसके क्षण-क्षण परिवर्तित होने वाले रूप एवं कर्म में उन्होंने किसी अविनाशी परोक्ष सत्ता का आभास पाया, तो उनकी वाणी सहसा लयात्मक रूप में फूट पड़ी। वही वाणी आज हमें ऋग्वेद के मंत्रों के रूप में उपलब्ध है, अर्थात् हृदय की गहनतम संवेदनाओं को छंद काव्य के रूप में प्रकट करता है।

'छंद:पादो तु वेदस्य' छंद के ज्ञान के बिना वेद का शुद्ध पाठ नहीं किया जा सकता। छंद:शास्त्री डॉ॰ गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र' के अनुसार जिस प्रकार पैरों के बिना मनुष्य खड़ा नहीं हो सकता, वैसे ही छंद के बिना वेद लड़खड़ाने लगता है। यह बात वेद ही नहीं सभी काव्यों के साथ चरितार्थ होती है।

छंद की इसी उपादेयता को ध्यान में रखकर प्राचीनकाल में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। परंतु, अपने पूर्ववर्ती ग्रंथों में अनेक कमियाँ और कठिनाइयाँ देखते हुए 'द्विजेंद्र' जी ने छंद-संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना की (1) छंदोदर्पण (1977) (2) सूरसाहित्य का छंद:शास्त्रीय अध्ययन (1969) (3) हिंदी-साहित्य का छंदोविवेचन (1975) (4) संस्कृत-साहित्य के छंदों का विहगावलोकन (अप्रकाशित) (5) छंदोविचिति।

छंदोदर्पण में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी में रचित अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रंथों का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए अपने ग्रंथ-प्रणयन का कारण स्पष्ट करते हुए 'द्विजेंद्र' जी ने कहा है-'कालसीमा में आबद्ध मनुष्य की जो कृति होती है, उसमें आगे आनेवाले युग में कुछ कमी का दिखलाई पड़ना प्रकृतिसिद्ध है। इन छंद:शास्त्रों के मंथनस्वरूप जो यत्किंचित कमी मुझे दिखलाई पड़ी और अपने प्रारंभिक रचनाकाल में इनमें जिस कठिनाई का मैंने अनुभव किया, उसी कमी और कठिनाई से निरंतर प्रेरित होकर मैं एक अभिनव छंद:शास्त्र के प्रणयन के लिए बद्धपरिकर हुआ।'[1] उनकी दृष्टि में पूर्ववर्ती ग्रंथों में निम्नांकित कमियाँ और कठिनाइयाँ हैं-

(क) छंदों का अवैज्ञानिक वर्गीकरण; (ख) छंदोलक्षण की जटिलता; (ग) छंदों के अपर्याप्त लक्षण; (घ) स्वरचित उदाहरण; (ङ) प्राचीनकालीन प्रयुक्त छंदों की उपेक्षा; (च)

 ISSN 0975-735X

आधुनिककालीन प्रयुक्त छंदों का अनुल्लेख।

छंदोदर्पण विद्यार्थियों के साथ-साथ विद्वजनों के लिए भी एक उपयोगी पुस्तक है। क्योंकि, इसमें लगभग वे समस्त छंद समाविष्ट हैं, जिनका प्रयोग हिंदी के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य में हुआ है। छंद-संबंधी जितने भी नवीन प्रयोग हुए, उनका समावेश छंदोदर्पण में हुआ है। सभी छंदों के नाम, लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। जिनका नाम छंद:शास्त्र में नहीं मिला, उसका नामकरण भी किया गया है। नामकरण के लिए 'द्विजेंद्र' जी ने छंदोगत भाव, परिस्थिति, विषयवर्णन, प्रधान-शब्द और भाषा-शैली को आधार बनाया है। छंद के आग्रहवश किसी-किसी पद्य में कुछ काँट-छाँट भी करनी पड़ी है तो किसी में अपनी ओर से कुछ जोड़ भी दिया है। अब तक छंद:शास्त्रों में उन्हें जितनी भी कमियाँ दिखी हैं, उनकी पूर्ति का प्रयास छंदोदर्पण में किया गया है। छंद-संबंधी जितनी भी समस्याएँ और शंकाएँ हैं, उनके निवारण का भी प्रयास किया गया है। इन सभी दृष्टियों से विचार करने पर छंदोदर्पण हिंदी साहित्य को 'द्विजेंद्र' जी की महती देन कही जा सकती है।

'हिंदी साहित्य के सूर्य' महाकवि सूरदास ने वात्सल्य और शृंगार के निरूपण में अपनी प्रतिभा-प्रगल्भता का जो रूप खड़ा किया, वह कृषकाव्यधारा में अनन्वय अलंकार ही बनकर रह गया, पुन: दिखाई न पड़ा। साहित्य-जगत् को ऐसा अमूल्य भेंट देने वाले साहित्यकार, जिसके प्रत्येक पद में संगीत की सहज-सरल धारा प्रवाहित होती हो, की छंदोयोजना पर विचार न होना क्या दु:खद और आश्चर्यजनक नहीं। वस्तुत: किसी विद्वान ने किसी महत्त्वपूर्ण कवि या काव्यधारा या युग-विशेष में प्रयुक्त छंदों की व्यापक खोजबीन नहीं की। फलस्वरूप छंद:शास्त्र में विशेष रुचि रखनेवाले 'द्विजेंद्र' जी ने यह श्रमसाध्य कार्य पूर्ण कर दिखाया।

'सूरसाहित्य का छंद:शास्त्रीय अध्ययन' उनका शोधप्रबंध है, जिसमें सूरसाहित्य में प्रयुक्त समस्त छंदों की गहन और गंभीर छानबीन की गई है। पीएच॰डी॰ के इस शोधप्रबंध को समीक्षकों ने डी॰लिट्॰ के योग्य समझा और उन्हें डी॰लिट्॰ की उपाधि से सम्मानित किया गया। अपने इस शोधप्रबंध की रचना का कारण बताते हुए 'द्विजेंद्र' जी ने कहा है-'हिंदी-साहित्य में एक तो ऐसे ग्रंथ का ही अभाव है, जिसमें किसी एक कवि के छंदों के निरूपण और सर्वांगीण विवेचन का प्रयास किया गया हो। दूसरा, पद-साहित्य तो छंदोदृष्टि से सदा उपेक्षित रहा (क्योंकि पद गाने की चीज है और उसका संबंध संगीत से है, ऐसा विचार विद्वानों के हृदय में घर कर गया था। ऐसी दशा में इस विषय को सर्वथा नूतन जानकार मैंने इसे शोध का विषय बनाया।'[2]

इस शोधप्रबंध में सूरसाहित्य में प्रयुक्त सभी प्रकार के छंदों की परिभाषा और उने स्वरूप के साथ ही पदों की छान्दस व्यवस्था के गुण-दोषों की गंभीर छानबीन बड़ी सतर्कता से हुई है। सूर-साहित्य के छंदों का अध्ययन कर 'द्विजेंद्र' जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सूरदास केवल गवैया और पदों के रचयिता ही नहीं थे (कवि तो वे निर्विवादत: थे ही) छंदों के ज्ञाता एवं सफल छंद:प्रयोक्ता के साथ ही नवीन छंदों के निर्माता भी थे। मात्रिक दंडक के रूप में तो छंद:शास्त्र को सूरदास की देन अपूर्व है। इस शोध-प्रबंध के केंद्र में सूरदास अवश्य हैं, किंतु विषय के समुचित प्रतिपादन के लिए सिद्धकाल से लेकर आधुनिकयुग तक की छंद:प्रवृत्ति तथा उस काल के प्रमुख कवियों द्वारा प्रयुक्त मुख्य-मुख्य छंदों की भी चर्चा हो गई है। यों कहा जा सकता है कि छंदोविषयक प्राय: समस्त बातें इस प्रबंध में समाविष्ट हो गई हैं।

'हिंदी-साहित्य का छंदोविवेचन' के कुल 11 अध्यायों में क्रमशः अपभ्रंश-साहित्य, पृथ्वीराज रासो, गोरखबानी, विद्यापति, कबीर-साहित्य, सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, भारतेंदु, हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त की छंदोयोजना पर विचार हुआ है। 'द्विजेंद्र' जी के शब्दों में– 'इन 13 सौ वर्षों के छंदों का अध्ययन यह बताता है कि इस अवधि के कवियों ने शास्त्र-नियमों का पालन करते हुए कुछ स्वतंत्रता भी ली है, दो-तीन छंदों का मिश्रण भी किया है, कुछ नूतन-प्रयोग भी किए हैं तथा अन्य भाषाओं के कुछ छंदों को भी ग्रहण किया है। फिर भी यही कहा जाएगा कि इनकी कविता छंद के राजमार्ग से कभी हटी नहीं है। उस पर चलती हुई इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर उसकी कुछ नई चीजें अवश्य ग्रहण कर ली हैं, पर उस पथ को छोड़ा कभी नहीं।'[3]

छायावादी काव्यधारा भी उसी मार्ग पर अग्रसर होती रही, पर उसने अपने लिए कुछ नूतन पगडंडियाँ भी ढूँढ निकालीं। इन पगडंडियों की खोज में वह कभी-कभी राजमार्ग से हट भी गई है। इसी राजमार्ग के परित्याग और पगडंडियों के ग्रहण में छायावाद की छंदःक्रांति के स्वरूप को दिग्दर्शन कराना था तथा हिंदी साहित्य के सभी छंदों की गणना के लिए छायावादी कवियों के नूतन प्रयोगों पर भी प्रकाश डालना था। अतः पुस्तक की कलेवर-वृद्धि को ध्यान में रखते हुए 'हिंदी-साहित्य का छंदोविवेचन' में समाविष्ट नहीं कर इसे एक पृथक् पुस्तक का रूप दिया गया। इस प्रकार 'छायावाद का छंदो-अनुशीलन' हिंदी साहित्य का छंदोविवेचन का द्वितीय भाग माना जा सकता है।

यहाँ छायावाद शब्द एक विशेष काव्यधारा के लिए प्रयुक्त नहीं होकर, एक युग-विशेष के निमित्त प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः वह युग आंशिक रूप से द्विवेदीकाल से प्रारंभ होकर छायावाद-प्रगतिवाद से गुजरता हुआ प्रयोगवादी कविता के पूर्व तक चला जाता है। इसमें मुख्यतः छायावाद की चतुष्टयी–प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के छंदों का विवेचन किया गया है। 'द्विजेंद्र' जी ने इनके छंदों के विवेचन को छायावादी काव्यधारा तक ही सीमित नहीं रखा है, वरन् इनके समस्त साहित्य को अपना प्रतिपाद्य बनाया। इन चारों के अतिरिक्त इस ग्रंथ में छायावादोत्तर कहे जा सकने वाले कवियों के नूतन प्रयोगों का भी विवेचन किया है, जो उक्त चार कवियों में नहीं मिलते।

जिस संस्कृत भाषा में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् के साथ-साथ रामायण, महाभारत तथा 18 पुराण जैसे विशालकाय पद्य-ग्रंथ विद्यमान हैं, उसके साहित्य की विशालता के संबंध में क्या कहा जाय! जिस साहित्य में ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, शब्दकोष, धर्मशास्त्र आदि तक के ग्रंथ पद्य-बद्ध हैं, उस अपार साहित्य की थाह लेकर उसमें अंतर्निहित समस्त छंदों को निकाल लेना कितना दुष्कर कार्य है! फिर भी 'संस्कृत साहित्य के छंदों का विहंगावलोकन' की रचना कर, इस कार्य को करने का दुस्साहस क्यों किया, इसका कारण स्वयं 'द्विजेंद्र' जी ने बताया है–'संस्कृत के कवियों का झुकाव विविध प्रकार के छंदों के प्रयोग की ओर दिखलाई नहीं पड़ता। पूर्ववर्त्ती कवि जिन छंदों का प्रयोग कर गए, परवर्ती कवि उन्हीं को दुहराते रहे। इस प्रकार, कुछ छंद पेटेंट बन गए, जिनमें संस्कृत कवि सदैव अपनी वाणी को दुहराते रहे। कभी किसी कवि ने उन छंदों के अतिरिक्त दो-एक अन्य छंदों का भी प्रयोग कर दिया। बस, उनकी इसी प्रवृत्ति से परिचालित होकर मैं छंदोरत्न की खोज में इस विशाल साहित्योदधि में कूद पड़ा।'[4] इस ग्रंथ में 'द्विजेंद्र' जी ने वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा कालिदास और गंभीर अध्ययन

 ISSN 0975-735X

करने के बाद विशाल संस्कृत-साहित्य के छंद:प्रयोग की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है। उन्होंने यह पाया कि 'संस्कृत के विद्वानों ने छंदों के विशाल-संसार में-से इने-गिने छंदों के प्रयोग से संतोष कर लिया। उन्होंने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि छूटे हुए अनेक प्रकार के छंदों में भी विविध तरंगमयी भंगिमा, नर्त्तनशील पाद-संचरण की क्षिप्रता तथा हिल्लोलाकार आवेगमय प्रसरण एवं संकुचित प्रत्यावर्त्तन निहित है।'[5] इस उपेक्षा का कारण यह बतालया जा सकता है कि महाकाव्य के सर्ग में आद्योपांत एक ही छंद रखने के नियम ने कवियों को छंदों के विविधताजन्य लाभ से वंचित रखा। ऐसा अनुमान करना बहुत दूर तक संगत है। महाकाव्यकार के विपरीत नाटककार, मुक्तककार और चंपूकार तो इस बंधन से सर्वथा मुक्त थे। वे तो उन प्रचलित प्रयुक्त छंदों के अतिरिक्त अन्य नाना प्रकार के छंदों में अपने भावों को प्रवाहित कर सकते थे। पर, उन्होंने भी ऐसा नहीं किया। हाँ, इन उपेक्षित छंदों में कुछ पर केशवदास ने अपना प्यार अवश्य उड़ेला, पर 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता'।

छंदशास्त्र में अपनी गहरी रुचि के कारण 'द्विजेंद्र' जी ने अपने छंदविषयक ग्रंथों की रचना के क्रम में छंदोविचिति का प्रणयन किया। वस्तुत:, यह भिन्न-भिन्न कालों की प्रतिनिधि रचनाओं की छंदोयोजना पर लिखित विभिन्न निबंधों का संग्रह है, जो समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। छंदोविचिति में गीत-गोविंद, तुलसी के पदेतर साहित्य, कामायनी, आँसू, उर्वशी, विक्रमोर्वशीय, यशोधरा, जानकीवल्लभ की छंद-संबंधी विशेषताओं का सम्यक् आकलन है। इस ग्रंथ से हमें इन प्रतिनिधि कवियों के छंद:निरूपण, छंद-प्रयोग, उनके द्वारा निर्मित नए छंद और प्रिय छंद की संपूर्ण जानकारी मिल जाती है।

काव्य की आत्मा छंद की उपेक्षा के इस युग में जब 'द्विजेंद्र' जी ने अपनी इन छंद-संबंधी व्यावहारिक और सैद्धांतिक रचनाओं के माध्यम से इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की और संगीत-तत्त्व की महत्ता और व्यापकता को दर्शाया है, तब क्या हमारा यह दायित्व नहीं बनता कि हम इस गंभीर और महत्त्वपूर्ण कार्य की उपादेयता को समझें। आवश्यकता इस बात की है कि छंद को पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाए। तभी काव्य की आत्मा छंद की रक्षा हो सकती है। छंद के क्षेत्र में उनका योगदान इस दृष्टि से अभूतपूर्व कहा जा सकता है कि उनसे पूर्व हिंदी के किसी विद्वान ने किसी कवि या काव्यधारा या युग-विशेष में प्रयुक्त विविध छंदों की व्यापक खोजबीन नहीं की। 'द्विजेंद्र' जी ने इस श्रमसाध्य कार्य को पूर्ण कर छंद के जिज्ञासुओं, विद्यार्थियों और विद्वजनों को अनुपम भेंट प्रदान की है।

संदर्भ

1. छंदोदर्पण, उद्‌भास, डॉ॰ गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र', प्रकाशन वर्ष-1977, पृ॰ 21
2. सूरसाहित्य का छंदशास्त्रीय अध्ययन, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969, पृ॰ 05
3. हिंदी साहित्य का छंदोविवेचन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1975, पृ॰ 517
4. संस्कृत साहित्य के छंदों का विहंगावलोकन, उपोद्‌घात, अप्रकाशित।
5. वही, उपोद्‌घात

द्वारा डॉ॰ विजयकुमार
विवेकानंद कॉलोनी, किलाघाट रोड
सराय (भागलपुर) बिहार 812002

प्रेमचंद और स्वयंप्रकाश की कहानियों का तुलनात्मक विवेचन

डॉ॰ मनोरंजन कुमार

कोई भी रचना और रचनाकार सहसा परंपरा से कट नहीं जाता। समस्त नवीन प्रयोगों के बावजूद उसमें परंपरा के बीज निश्चित रूप से वर्तमान रहते हैं। इसलिए किसी भी कहानी अथवा कहानीकार के कथासाहित्य का अध्ययन उसकी परंपरा के संदर्भ में ही किया जाना अपेक्षित है। समकालीन रचनात्मक परिदृश्य में कई कहानीकारों की उपस्थिति बनी हुई है और इसी दौर में रचनात्मक विवेक, यथार्थ की गहरी और उसे यथानुरूप अभिव्यक्त करने की हिम्मत, वैचारिक पक्षधरता और लगातार फैलती जा रही कथाभूमि में अपनी मौलिक चिंतन-दृष्टि के कारण स्वयंप्रकाश की रचनाओं में परंपरा का अनुपालन भी है और परंपरा से अलग हटकर कुछ नई चीजों का संधान भी। स्वयंप्रकाश ने हिंदी-कहानी के क्षेत्र में यद्यपि किसी नई परंपरा की शुरुआत नहीं की और न कोई आंदोलन ही चलाया, फिर भी उनका कहानी-संसार अपने वस्तु और शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण अपनी अलग पहचान बना सका है। जनपक्षधरता उनका मूल स्वभाव है और वे हमारे दौर की विडंबनाओं तथा सामाजिक विषमताओं, बहुविध समस्याओं से निरंतर जूझते हुए सही रास्ते की तलाश करने का उपक्रम करना जानते हैं। आंचलिकता अथवा ग्रामीण परिवेश से जुड़ी, जनवादी प्रवृत्तियों को विषयवस्तु के केंद्र में रखकर उन्होंने जिस कथासाहित्य का सृजन किया है, उससे उनकी महत्ता और वैशिष्ट्य का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसलिए प्रेम भारद्वाज लिखते हैं कि 'बगैर शोर-शराबे और विवादों के घोड़े की सवारी किए स्वयंप्रकाश बेहतर कहानियाँ लिख रहे हैं। उनके जीवन की तरह उनकी कहानियाँ भी बेहद सहज और सरल हैं, लेकिन इनमें हमारे समय-समाज की तमाम जटिलताएँ, विषमताएँ देखी जा सकती हैं। कई कहानी-संग्रहों और पाँच उपन्यासों के प्रकाशन के बावजूद उन्हें वह सम्मान अब तक नहीं मिल पाया, जिसके वह हकदार हैं। वह बोलते कम, कहते ज्यादा हैं। उनसे बातचीत करना मौजूदा माहौल और खुद से मिलना है।'[1]

हर रचनाकार अपने युगीन परिवेश और परिस्थितियों से प्रभावित होता है, उसके उतार-चढ़ावों को देखता-समझता तथा अनुभव करता है और कालांतर में उसी अनुभूति को कहानियों/उपन्यासों अथवा नाटक आदि विधाओं में अभिव्यक्त करता है। उसकी अभिव्यक्ति-शैली से युग और समाज भी प्रभावित होता है। प्रेमचंद यदि एक ओर आर्यसमाज के सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित हुए तो दूसरी ओर प्रगतिशील विचारधारा और कुछ अंशों में समाजवादी विचारधारा से भी आंदोलित हुए। स्वयंप्रकाश अपने समकालीन साहित्यिक आंदोलन से दूर ही रहे, पर आदर्शवाद

 ISSN 0975-735X

और यथार्थवाद का असर तो उनकी कहानियों पर साफ दिखाई देता है। उनकी कहानियों में एक सादगी भले ही हो, लेकिन निहित संवेदना काफी गहरी है और इस व्यवस्था के विरोध में विद्रोह का तेवर है। यही कारण है कि इनकी कहानियाँ भले ही ऊपर से शांत दिखाई देती हों, लेकिन तलहटी में काफी उथल-पुथल मची हुई महसूस होती है। ये कहानियाँ अनुभवों के निचोड़ से पैदा हुई हैं–कथा-रचना के प्रसंग में कहानी के पाठक उनके ध्यान में मुख्य रूप से रहते हैं। 'ट्रैफिक' कहानी में शहर की ट्रैफिक व्यवस्था पर टिप्पणी की गई है और इसे माध्यम बनाकर असंवेदनशील, निष्ठुर एवं निस्संग नगरवासियों के साथ-साथ अनेक शहरी समस्याओं पर विचार किया गया है। इसके लिए लेखक ने शहर को अमीरों और गरीबों के शहर के रूप में दो भागों में बाँट लिया है। एक में सारी सुविधाएँ हैं तो दूसरा असुविधाओं से भरा पड़ा है। सड़क के बहाने देश की दुरावस्था पर व्यंग्य है। कथ्यशैली विशिष्ट है और पूरी कहानी दो मित्रों की टेलीफोन वार्ता में ही समाप्त हो जाती है। इसी तरह बात-बात पर अपने पति और पड़ोसिनों से लड़ने वाली एक बुढ़िया की ज़िंदगी पर आधारित कहानी 'लड़ोकन' में आदर्श प्रेम की प्रस्तुति हुई है। एक दिन बुढ़िया का पति मर जाता है और वह उस दिन से लड़ाई करना छोड़ देती है। वास्तव में अपने पति से झगड़ा करना उसका प्रेम प्रदर्शित करने का एक तरीका था। पति की मृत्यु से वह अंदर से टूट गई थी। ये दोनों कहानियाँ स्वयंप्रकाश की मूल कहानी-चेतना से थोड़ी अलग अवश्य हैं, परंतु अव्यावहारिक अथवा असंयोजित नहीं।

स्वयंप्रकाश की कहानियों का उद्देश्य मध्यवर्ग, निम्नवर्ग या सर्वहारा शोषितवर्ग के चरित्रों का चित्रण है। उनकी रचनात्मक संवेदना साधारण निम्नवर्ग के प्रति है। इसलिए इन्होंने अपनी कहानियों का कथानक प्रेमचंद की तरह ग्रामीण परिवेश में बुना है। जिस तरह प्रेमचंद के 'दो बैलों की कथा' में हीरा और मोती में कृषकसमाज एवं पशु के बीच लगाव, प्रेम तथा अपनापन को दिखाया गया है, उसी प्रकार स्वयंप्रकाश ने 'नैनसी का धूड़ा' में नैनिया का लगाव धूड़ा के प्रति दिखाया है। इस प्रकार की कहानी में बैल मात्र बैल नहीं रह जाता, बल्कि वह परिवार का सदस्य बन जाता है। 'बाजार में रामधन' कहानी में कैलाश बनवासी ने यह दिखाया है कि रामधन जब अपने दोनों बैलों को बाजार बेचने ले जाता है तो उनके स्नेह-प्यार में डूबे रहने के कारण ग्राहकों के यहाँ वह बेच नहीं पाता है। उसे एक आत्म-संबंध के बिछोह की पीड़ा सताने लगती है और वह ऊपर मन से बहाना बनाकर दूसरों को बताता है कि बाजार में उचित मूल्य नहीं मिलने के कारण उन्होंने उसे ग्राहकों के हाथों नहीं बेचा। रास्ते में दोनों बैल रामधन से मानो कह रहे हैं कि 'तुम हमें कब तक बचा सकोगे?' तुम्हारा छोटा भाई मुन्ना तो हमें बेच ही डालेगा। यहाँ 'मुन्ना' आम आदमी के बाजारवाद का प्रतीक है, जिन्हें पशु-पक्षी से प्यार नहीं है बल्कि मशीनवाद (ट्रैक्टर) आदि पर ज्यादा भरोसा है। 'नैनसी का धूड़ा' में नैनिया और धूड़ा के बीच प्रेम को दिखाया गया है। नैनिया भी बैल बेचने से पहले स्नेह-आप्लावित हो जाता है। धूड़ा और उसकी माँ के बीच का प्रेम-वर्णन भी रोमांचित करने वाला है। स्वार्थी मानव ने दूध के लिए उसके वात्सल्य प्रेम को विघटित कर दिया है। स्वयंप्रकाश ने 'क्या तुमने कभी सरदार भिखारी देखा है' में दिखाया है कि दंगे के दौरान आदमी आदमी न रहकर 'समूह' बन जाता है, संप्रदाय बन जाता है। इसमें निम्न-मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले सरदार जी की जिजीविषा, साहस और सहनशक्ति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें सांप्रदायिक विद्रूपता और बर्बरता का अंकन है। सरदार

जी भीड़ से अकेले जूझते हैं, भीड़ उन्हें परेशान करती है, फिर भी वह अपनी परिस्थिति से हार नहीं मानता है।

स्वयंप्रकाश और प्रेमचंद में कहानियों के वस्तुचयन को लेकर कई समानताएँ दिखाई देती हैं। उसकी शैली और शिल्प में बेशक अंतर महसूस होता है। इन दोनों कहानीकारों की कहानियों में सदियों से पददलित, उपेक्षित, अपमानित एवं विवश जनसाधारण का दृश्य चित्र है तो दूसरी ओर पद-पद पर लांछित, निरपेक्षित एवं भोग्या बनी नारियों की सिसकती आवाज भी सुनाई देती है। प्रेमचंद की कहानियों के विषय विविधता लिए हुए हैं, जिनमें जीवन और जगत के अनेक प्रसंग व्यक्त हुए हैं। इनकी कई कहानियाँ ग्रामीण जीवन से सरोकार रखती हैं तो कुछ खेती-किसानी से जुड़ी समस्याओं पर आधारित हैं। कुछ कहानियों में शोषण-चक्र में पिसती निरीह जनता का सच्चा चित्र है। कर्त्तार सह दुग्गल लिखते हैं कि 'प्रेमचंद की कृतियों से स्पष्ट होता है कि लेखक अपने घर की चारदीवारी में सीमित होकर नहीं रह जाता। सारी दुनिया उसकी रचनाओं का विषय बन सकती है। प्रेमचंद ने लेखक और आम पाठक के बीच की दीवार को हटा दिया।...अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचंद ने मानवता, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय पर जोर दिया...नफरत, कुरूपता और शोषण का भरपूर विरोध किया।'[2] निश्चय ही यदि भारतीय लोकजीवन के आचार-विचार, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा और सुख-दुख के साथ ही सूझबूझ का अवलोकन करना हो तो इन दोनों की कहानियाँ इसका सर्वोत्तम आधार साबित होंगी। आलीशान बंगलों से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक की सच्चाई को इतनी कुशलता और सहज शब्दावली में संप्रेषित करने की पद्धति इन दोनों की विशेषता है और निस्संदेह इतने ही कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से कोई दूसरा उन महलों तथा झोपड़ियों तक हमें नहीं ले जा सकता। प्रेमचंद ने अपने युग की समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया तो अपनी कहानियों में स्वयंप्रकाश अपने युग और समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। ग्रामीण परिवेश और पात्रों को लेकर लिखी गई कहानियों में उन्होंने समाज की बहुमुखी समस्याओं को उठाया है और मानवीय संघर्षों के बहुआयामी धरातलों को स्पर्श किया है। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, राजनीति के विविध पक्ष और संदर्भ इनकी कहानियों में उठते-गिरते रहते हैं और पाठक उसमें गोता लगाते रहते हैं।

स्वयंप्रकाश की कहानियों और उनके पात्रों को देखने के बाद यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि एक सच्चे रचनाकार के लिए अनुभव का कोई भी क्षेत्र वर्जित नहीं होता, लेकिन इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि मूल्य चेतना का साथ न छोड़ना। उनकी कहानियों में जनवादी मूल्य और चेतना को प्रमुखता प्राप्त है। वह आम आदमी की आर्थिक तंगी, संघर्षशीलता, जिजीविषा और मुक्ति की छटपटाहट को स्वर देने वाले जनवादी कथाकार हैं। उनकी कथाओं में भारतीय श्रमिक तथा वंचित वर्ग के कथानायकों को मुख्य भूमिका प्राप्त है, क्योंकि स्वयंप्रकाश जन-पक्षधर कथाकार हैं। वे आम आदमी की पीड़ा, शोषण-दमन की विडंबना और दु:स्वप्नों को साकार करते हैं। उनका आत्म साक्षात्कार करते हैं और फिर उन्हें वाणी देते हैं। उनकी कहानियों में जीवन-सत्य का यथार्थ अंकन है और लोकचेतना की साक्षरता व्यक्त हुई है। समकालीन हिंदी कहानी को एक व्यापक यथार्थोन्मुख आधार देने का काम स्वयंप्रकाश ने किया है और इसमें उनका कथासाहित्य सहायक रह है।

नयी कहानी में अनुभव की प्रामाणिकता का नारा जल्दी ही अनुभववाद में बदल गया।

नयी कहानी जीवन की जिस दृष्टि और समझ पर निर्मित हो रही है, वह सामान्यत: प्रेमचंद की अपेक्षा जैनेंद्र, अज्ञेय और कुछ सीमा तक यशपाल के अधिक निकट है। कहानियों का सामाजिक संदर्भ सिकुड़ता जा रहा है और तात्कालिक वैयक्तिक भावनाओं का आग्रह बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मान्यताओं के प्रति एक संदेह का भाव व्याप्त हो गया है। अलगाव-बोध का साहित्य ही ऐसी किसी भी धारा की तार्किक परिणति है। नयी कहानी में मोहन राकेश और निर्मल वर्मा की इन पतनशील प्रवृत्तियों का अंकन करने वाली कहानियाँ पर्याप्त संख्या में हैं। घर और परिवार के प्रति निषेध और अस्वीकार का भाव लेकर केवल एक बोहेमियन जीवन ही जिया जा सकता है। आगे चलकर अनेक लेखकों ने इस पतनशील धारा से जुड़ने का उत्साह एक ऐसी अराजकता को जन्म दिया, जिसमें साहित्य के सारे नैतिक और सामाजिक मूल्यों का निषेध ही लेखकों का घोषणा-पत्र बन जाता है। स्वयंप्रकाश इन कहानीकारों के समूह से सर्वथा भिन्न दिशा में, अपनी तमाम व्यक्तिगत रचनाशीलता के साथ कहानी के संसार में खड़े दिखाई देते हैं, जिनके लिए न तो विदेशी पृष्ठभूमि की ढाल है और न जीवन के चित्रण में स्थितिगत यथार्थ के सूक्ष्मांकन की बाध्यता ही। वे भारतीय समाज की पृष्ठभूमि में लिखने वाले ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने भारतीय जीवन और भारतीय लोगों का जीवन और परिवेश को बहुत निकट से देखा तथा जाना है, उनसे वे प्रभावित हुए हैं। इसलिए उनकी कहानियों में स्वाभाविकता का अंश ज्यादा है।

स्वयंप्रकाश मुख्यत: मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक हैं। इनकी प्राय: सभी कहानियों में मार्क्सवाद की झलक दिखाई देती है। मार्क्सवाद के अनुसार–'जब किसी को अपने मेहनत के अनुरूप पारिश्रमिक न मिले तो उसका काम के प्रति जो नैसर्गिक लगाव है, वह स्वत: समाप्त हो जाता है।' इस दृष्टिकोण के साथ उन्होंने हर तरह की कहानियाँ लिखीं–छोटी और बड़ी, गंभीर और विनोदी, मजदूर या किसान से लेकर नई पीढ़ी के युवाओं तक। उन्होंने अपने तईं जीवन का कोई कोना नहीं छोड़ा। उनकी कहानियों की मार्मिकता उनकी संवेदनशीलता में है। इस दृष्टि से 'नैनसी का धूड़ा' एक बेमिसाल कहानी है, जो पशु-पक्षियों पर केंद्रित है–एक बैल की पीड़ा की मार्मिक व्यथा-कथा, जिसकी संवेदना से मन एकदम भीग जाता है। लेखक की भाषा, कथ्य और परिवेश को साकार करती है और पात्र की मनोवृत्ति का उद्‌घाटन भी। स्वयंप्रकाश की कहानियों में अगर नायकत्व की बात करें तो उनके नायक परंपरा को तोड़ने वाले हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसे पात्रों को अपना नायक बनाया है, जो पौराणिक अवधारणा से अलग हैं। इन बदले हुए नायकों के कारण ही इनकी कहानियाँ चरित्र-प्रधान नहीं, वातावरण-प्रधान हैं; वर्णनात्मक नहीं; विवरणात्मक हैं; चित्रात्मक नहीं, सूचनात्मक हैं; नाटकीय नहीं, निबंधात्मक हैं; भावोत्तेजक नहीं, विचारोत्तेजक हैं; घटना-प्रधान नहीं, विश्लेषण-प्रधान हैं; रंजक नहीं, विचलित करने वाली हैं; चुपके से प्रवेश करके मन में बैठने वाली नहीं, बहस के लिए ललकारती और मिलकर सोचने के लिए उकसाने वाली हैं; कवितात्मक या कलात्मक नहीं, उद्वेगपूर्ण और खुरदरी हैं। इसी विशेषता ने प्रेमचंद को भी अमर कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इनकी पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' का महत्त्व हृदयपरिवर्तन की वजह से नहीं है, बल्कि इसमें प्रेमचंद की पंचायतीराज व्यवस्था में आस्था की वजह से है। 'प्रेमचंद ने अपने लेखन का प्रारंभ ही सही जीवनमूल्यों की रक्षा के लिए किया। इसीलिए उन्होंने अपनी कलम से उस सीधी लड़ाई को उभार दिया, जो

शोषक और शोषित के बीच भारतीय जमीन पर फैली हुई थी। वह अपने समय के साथ बराबर चलते रहे, और वही कुछ लिखते रहे जो उनके सामने घटित हो रहा था।'[3] स्वयंप्रकाश की पहली कहानी 'सूरज कब निकलेगा' का महत्त्व भैराराम के दीन-हीन स्थिति से उतना नहीं, जितना इसमें सामंतवाद की मुक्ति से है। उनकी कहानियों में धर्मांधता, सांप्रदायिकता, जातीयता और मूल्यहीनता पर चोट है। स्वयंप्रकाश की कहानियों की भाषा, पात्र, परिवेश और घटना को साकार करने में समर्थ है। उनकी शिल्प-योजना में संवाद, नाटकीयता और दृश्यांकन का महत्त्वपूर्ण समावेश दिखाई देता है।

स्वयंप्रकाश की कहानियों का वैशिष्ट्य और इनकी रचना में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है– जीवनदृष्टि, जो विकट जीवन-संघर्षों के बीच उपलब्ध होती है। इनकी रचनाओं में यथार्थ के भयावह और अमानवीय चेहरे हैं तो उनसे मुठभेड़ करने वाले ढेर सारे पात्र भी हैं; साधारण से लोग किंतु अपने जीवट और साहस में असाधारण एवं अप्रतिम। भैराराम, अविनाश, यूसुफ मियाँ, कामरेड कमलाप्रसाद, मग्गू भाई, बन्ने भाय ताँगेवाला, सरदार जी आदि-आदि। साधारण मनुष्य की इस नैतिक शक्ति और साहसिकता पर विश्वास स्वयंप्रकाश को पुरानी और नई पीढ़ी की प्रगतिशील रचनाशीलता में अलग विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाता है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में विषय की ऐसी विधि का विकास हुआ था, जो समस्त सत्य को शुद्ध रूप से बहिर्गत संबंध के रूप में ही देखती-मानती थी। यशपाल की कहानियों में यद्यपि थोड़ा विषयांतर मिलता है, किंतु इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। प्रेमचंद ने सारे मानवीय संबंधों को आँकड़ों के स्तर पर सरल कर रखा था। परिणाम यह हो रहा था कि मानव-व्यवहार के उन रूपों को कहानियों में जगह नहीं मिल पा रही थी, जिन्हें हम सामाजिक आँकड़ों तक सरलीकृत करने में समर्थ नहीं थे। जैनेंद्र आदि की कहानियों में इसके लिए चेष्टा हुई, किंतु संकतों में। जैनेंद्र आदि कहानीकारों ने भी मानवीय व्यवहार के इस मानसिक रूप को किसी विशिष्टि जीवन-प्रक्रिया के रूप में नहीं उभारा। प्रेमचंद मार्क्सवादी विचारधारा के सच्चे संवाहक रहे और धर्मेंद्र गुप्त लिखते हैं कि 'प्रेमचंद का समस्त लेखन, समस्त चिंतन मार्क्सवाद की उस सच्चाई से जुड़ता है, जो शोषण के विरुद्ध लगातार संघर्ष में विश्वास करता है, जो सर्वहारा का पक्षधर है, जो व्यक्ति की गरिमा में विश्वास करता हुआ समता के समाज पर आधारित है।'[4]

इस परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि स्वयंप्रकाश की कहानियाँ अधिक यथार्थ-दृष्टि, प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आसपास के परिचित परिवेश में ही किसी ऐसे सत्य को पाने तथा उद्घाटित करने का प्रयत्न करती हैं, जो टूटा हुआ, कटा-छँटा या आरोपित नहीं है बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य का एक अनिवार्य अंग है। उनका स्पष्ट मानना है कि युग के सारे विराट को, गतिशील मूल्यों के संस्कारों और संक्रमण को कहानी के माध्यम से हम व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की चेतना धारा में, कभी-कभी चेतना के अनेक स्तरों पर एक साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं। काल के प्रवाह में, व्यक्ति की सामाजिकता का बोध और स्थिति ही उनकी कहानियों की विषयवस्तु है। कथाकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है; व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अंतर्द्वंद्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों तथा अन्य आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में पाना चाहता है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ, उसका प्रभाव या परिणति एक झटके के साथ देखा या पाया हुआ सत्य की तरह लगता

 ISSN 0975-735X

है। वह हथौड़े की चोट की तरह सारे अस्तित्व को झनझनाती है और चुभे तीर की तरह टीसती है। वह तो कुहासे या अगरुगंध की तरह समस्त चेतना पर छा जाती है—स्वयं उसका अंग बन जाती है।

इनकी रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है—जीवन-दृष्टि, जो विकट जीवन-संघर्षों के बीच उपलब्ध होती है। चूँकि वे मार्क्सवाद के रचनाकार हैं, इसलिए मानव और मानवता उनकी कहानियों में सहज ही उपलब्ध होती है। पर मार्क्सवाद की वास्तविक स्थिति हमें स्वयं निश्चित और निर्धारित करनी होगी, इसे भी वे अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्होंने लिखा है कि 'हकीकत यह है कि हमें अपना मार्क्सवाद भी स्वयं बनाना होगा। अपने इतिहास और समाज की रोशनी में, अपने देश और काल की जरूरतों के अनुरूप—जैसा रूस में लेनिन और स्टालिन ने बनाया था, जैसा चीन में माओत्से तुंग ने बनाया था, जैसा वियतनाम में हो ची मिन्ह ने बनाया था और यह जरूरी काम हम अब तक नहीं कर पाए हैं। उल्टे ऐसा करने की कोशिश करनेवालों को हमने तरह-तरह से दुत्कारा है और सारे असुविधाजनक मुद्दे एक के बाद एक पचास साल तक दरी के नीचे दुबकाते रहे हैं।'[5] दूसरी चीज़ जो उन्हें अन्य कथाकारों से अलग करती है, वह है—मनुष्यता में आस्था, जो किसी न किसी रूप में बची हुई है। स्वयंप्रकाश की रचना-दृष्टि इसी मनुष्यता के विकट संघर्ष पर टिकी रहती है। साधारण मनुष्य की इससे सहज नैतिक शक्ति और साहसिकता पर विश्वास, स्वयंप्रकाश को पुरानी और नई पीढ़ी की प्रगतिशील रचनाशीलता में अलग विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाता है, क्योंकि रचना-संसार के सृजन के लिए उन्होंने अनुभव का कोई क्षेत्र वर्जित नहीं माना।

समाज-व्यवस्था के अंतर्विरोधों की ओर दृष्टिपात करने के कारण ही प्रेमचंद और स्वयंप्रकाश की रचनाओं में आम आदमी की धुँधली-सी तस्वीर दिखाई नहीं देती, जो गहरी निराशा, अवसाद और पराजय की भावना ही भरने का कार्य करती है बल्कि मनुष्य के अनवरत संघर्ष और मानवीय प्रयत्नों की सार्थकता एवं सफलता के प्रति आस्थावान होना ही उनके पात्रों को सफलता की ओर ले जाता है। वे अपनी मूल्यचेतना को रचना के मूलभूत ताने-बाने के साथ बुनते हैं और अपने आंतरिक विवेक और रचना को सोद्देश्य बनाने के अपने दुर्निवार आग्रह को अनुभूति एवं संवेदना की आँच में तपाकर उसे रचना के कलात्मक सौंदर्य का अविभाज्य अंग बना देते हैं। शोषित लोगों में आत्मनिर्भरता की चेतना जगाने और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए उन्हें सन्नद्ध दिखाने, मानव-जीवन की विडंबनाओं के नाटकीय उद्‌घाटन में प्रेमचंद अद्वितीय हैं तो किसानों और मजदूरों में नई सामाजिक चेतना जगाने और पात्रों के जीवन-संघर्षों के ऐतिहासिक मूल्यों को रेखांकित करने में स्वयंप्रकाश बेजोड़ हैं।

संदर्भ

1. प्रेम भारद्वाज, पाखी, सितंबर 2014, पृ॰ 7
2. संपा॰ रामदरश मिश्र, ज्ञानचंद गुप्त, कथाकार प्रेमचंद, पृ॰ 45
3. संपा॰ रामदरश मिश्र, ज्ञानचंद गुप्त, कथाकार प्रेमचंद, पृ॰ 47
4. संपा॰ रामदरश मिश्र, ज्ञानचंद गुप्त, कथाकार प्रेमचंद, पृ॰ 52
5. कथादेश, फरवरी 2007, पृ॰ 26

ग्राम-बैरिया, पोस्ट-मेंहदी,
बाया-भवानीपुर (राजधाम), जिला-पूर्णियाँ 854204, **मो॰** 9801822204

'उर्वशी' में संस्कृति-निरूपण

सरिता

संस्कृति किसी भी समाज का सार्वभौम तत्त्व है। प्रत्येक देशवासी अपने देश की संस्कृति से प्रेम अवश्य करता है। हम भारतवासी भी अपनी संस्कृति के प्रति उतना ही प्रेम करते हैं, जितना किसी भी देशवासी को हो सकता है। भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। भारतीय संस्कृति में समय के अनुसार परिवर्तन होते रहे हैं, क्योंकि इस लंबी समयावधि में उस पर अनेक प्रभाव पड़े हैं। इस देश में नाग, हूण, शक, अँग्रेज, मुसलमान आदि कई जातियाँ आई, जिन्हें भारतीय जीवन ने उदारता से समाहित कर लिया। इसलिए भारतवर्ष को अनेक जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों का संगम-स्थल कहा जाता है। संस्कृति व्यक्ति में जन्मजात नहीं होती, बल्कि वह उसे समाज में रहकर अर्जित करनी होती है। व्यक्ति समाज में रहकर ही अपनी विकसित क्षमताओं के द्वारा संस्कृति के विकास और सातत्य में अपना योगदान देता है।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संस्कार ही मानव-प्रकृति को विकृति से हटाकर संशोधन, परिष्करण, शरीर-शुद्धि, मानसी शिक्षा आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कर्म के वे प्रभाव जो मानव के जीवन को ढालते हैं, संस्कार कहलाते हैं।[1]

आगे चलकर ये ही संस्कार और वृत्तियाँ विकसित हुई तथा मनुष्य-समाज से इतना घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ कि ये ही मनुष्य की सभ्यता का मानदंड माने जाने लगे। जिस व्यक्ति की अथवा जिस समाज की ये वृत्तियाँ जितनी अधिक व्यापक और समन्वयपूर्ण हैं, वह व्यक्ति अथवा वह समाज उतना ही समुन्नत समझा जाता है।

संस्कृति वह गुण है, जो हमारे भीतर व्याप्त है और जो व्यक्ति को समाज से, समाज को देश से तथा एक देश को दूसरे देश से जोड़ने का कार्य करती है।

प्रत्येक सुसभ्य व्यक्ति सुसंस्कृत नहीं होता, क्योंकि संस्कृति का संबंध न केवल हमारी वेशभूषा व जीवन-शैली से अपितु इसका हमारे संस्कारों तथा हमारे संवेदनात्मक जीवन से भी होता है। यह वास्तव में मनुष्य को बाहर व भीतर से परिष्कृत करती है और बहुत से ऐसे लोग भी हैं, जिनके पास मोटर और महल तो क्या, अच्छी पोशाकों का अभाव है, किंतु उनमें दया-माया, शील-सौजन्य एवं परोपकार की भावना की कमी नहीं है, अतएव ऐसे लोगों के नाम संस्कृत व्यक्तियों की सबसे ऊपर वाली सूची में लिखे जाने चाहिए।[2]

संस्कृति ज़िंदगी की एक शैली है और यह शैली सदियों से जमा होकर उस समाज में छायी रहती है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। संस्कृति प्रकृति से भी भिन्न गुण है। क्रोध करना प्रकृति है, किंतु काम को बँधे घाट में बहाना संस्कृति है। प्रतिशोध की भावना प्रकृति है, किंतु पचाकर उसे अमृत बना देना संस्कृति का काम है। प्रकृति हिंसा है जिसकी लपेट में पड़ी हुई दुनिया बेचैन

 ISSN 0975-735X

हो रही है। संस्कृति अहिंसा है जो इस जलते हुए संसार को अग्नि से बाहर लाना चाहती है। संस्कृति मनुष्य का वह गुण है, जिसके विपरीत होने पर संहारक बम गुलाब बन जाएगा।[3]

संस्कृति धन नहीं गुण है। संस्कृति ठाठ-बाट नहीं अपितु विनय एवं विनम्रता है। संस्कृति संयम नहीं त्याग है। संस्कृति विजय नहीं मैत्री है और सबसे बढ़कर संस्कृति की चरम साधना अहिंसा में प्रकट होती है।[4]

संस्कृति मानव के वैचारिक और आचारिक परिष्कार की रचनात्मक, सौंदर्यमूलक तथा मंगलविधायक प्रक्रिया है। इसका एक छोर देश-कालनिरपेक्ष, सर्वसामान्य मानव-संस्कृति है तो दूसरा देश-कालसापेक्ष है, जो विभिन्न देशों की विभिन्न प्राकृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न जीवन-पद्धतियों के रूप में व्यक्त होता है। अपने देशकालगत व्यावहारिक रूप में संस्कृत सामाजिक जीवन की सभी सारभूत पद्धतियों का निरूपण है, जिनमें जीवन को ऊर्ध्वगति प्रदान करने वाले जीवनमूल्य भी समाहित रहते हैं।[5]

डॉ॰ गुलाबराय ने बहिरंग जीवन की सूचक सभ्यता के लिए अंतरंग जीवन के उत्कर्ष की सूचक संस्कृति को आवश्यक माना है–'जिस सभ्यता का आधार संस्कृति में नहीं, वह सभ्यता नहीं। संस्कृति की आत्मा के बिना सभ्यता का शरीर शव की भाँति निष्प्राण रहता है। विनय और शील के बिना कटी-छँटी पोशाक, सुसज्जित बंगले, सैंट और पाउडर मनुष्य को सभ्य नहीं बना सकते।[6]

इस प्रकार संस्कृति ही वह तरीका है, जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। 'उर्वशी' में अधिकांशत: राजा पुरुरवा और उर्वशी के प्रेम-व्यापार का चित्रण हुआ है तथापि पात्र और घटनाओं से स्थान-स्थान पर तत्कालीन भारतीय संस्कृति के स्वरूप के दर्शन होते हैं। उर्वशी अप्सरा होते हुए भी शुद्ध मानवी है और उसमें अटूट आस्था और विश्वास है। देवसंस्कृति का परिचय हमें अप्सराओं के कथोपकथन तथा चरित्र-चित्रण के माध्यम से जबकि दानव-संस्कृति का परिचय उर्वशी का अपहरण करनेवाले दानव के कृत्य से और मानव-संस्कृति के दर्शन राजा पुरुरवा तथा औशीनरी, महर्षि च्यवन और सुकन्या आदि पात्रों के माध्यम से होता है।

अप्सराएँ संयमहीन और उच्छृंखल होती हैं। इनमें कामनाओं का अमित सागर लहराता रहता है। ये अप्सराएँ बड़े सौहार्द से परस्पर व्यवहार करती थीं, जिनमें प्रेम और सहानुभूति आदि मृदुल भावों की अधिकता होती थी। इनका मन एक सीमा में कैद नहीं होता और न ही इनमें समर्पण की भावना होती है। इन्हें धरती रोरव नरक के समान दिखाई देती है, जहाँ अनेक व्याधियों से आक्रांत प्राणी दुख पाते और बूढ़े हो जाते हैं। प्रेम के वशीभूत होकर चित्रलेखा उर्वशी के पुत्र को देखने जाती थी।

इनके अधिपति इंद्र और कुबेर आदि की सभा में राग-रंग हुआ करता था, जिसमें अप्सराएँ नृत्य-गीतादि से देवों का मनोरंजन करती थीं। जब उर्वशी पुरुरवा के प्रेम में आसक्त होकर धरती पर आ जाती है तो सहजन्या उर्वशी की विकलता का वर्णन करते हुए कहती है–

सुरपुर की कौमुदी, कलित कामना इंद्र के मन की,
सिद्ध विरागी की समाधि में राग जगानेवाली,
रति की मूर्त्ति, रमा की प्रतिमा, तृष्णा विश्वमय नर की,

विधु की प्राणेश्वरी, आरती-शिखा-काम के कर की,
x x x x
प्रस्तुत है देवता जिसे सब कुछ देकर पाने को,
स्वर्गकुसुम कह स्वयं विकल है, वसुधा पर जाने को।[7]

इसी विषय में सहजन्या का यह कथन द्रष्टव्य है–

सुनकर जिसकी झमक स्वर्ग की तंद्रा फट जाती थी,
योगी की साधना, सिद्ध की नींद उचट जाती थी,
वे नुपूर भी मौन पड़े हैं, निरानंद सुरपुर है,
देवसभा में लहर लास्य की अब वह नहीं मधुर है।[8]

उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के घर से लौट रही है, तभी एक दैत्य बाज की तरह टूट पड़ता है। राजा पुरुरवा उर्वशी के करुण-क्रंदन को सुनकर उसे बचाने के लिए पहुँच जाता है। उर्वशी दैत्य के बाहुपाश में फँस जाती है। दैत्य और देवों के बैर का यही कारण था कि दैत्यादि देवियों को बलात् अपहृत कर लेते थे। सहजन्या का रंभा से उक्त कथन द्रष्टव्य है–

नहीं जानती हो कि एक दिन हम कुबेर के घर से
लौट रही थीं जब इतने में एक दैत्य ऊपर से
टूट लुब्ध श्येन-सा हमको त्रास अपरिमित देकर
और तुरत उड़ गया उर्वशी को बाँहों में लेकर।[9]

उर्वशी पुरुरवा के पास आने के लिए उद्विग्न है और दिन-रात वह अनमनी-सी रहती हुई प्रेम में डूबकर तड़पती रहती है। उर्वशी जब राजा से मिलने के लिए आती है तो कहती है कि मैं तप्त फूलों पर कामद्रुम के नीचे तड़पती रहती थी, किंतु तुम राजमहल में निश्चित सुख भोगते रहो। मुझे सुख और संतोष तब मिलता, जब राजा स्वयं उसे लेने स्वर्ग जाते तो कदाचित कहीं अधिक गर्व का अनुभव करती एवं स्वयं को सौभाग्यवती मानती। उसके इस कथन में भारतीय संस्कृति की मर्यादा स्पष्ट रूप से झलकती है यथा–

वही धन्य जो मानमयी प्रणयी के बाहुवलय में
खिंची नहीं, विक्रम-तरंग पर चढ़ी हुई आती है।[10]

'दिनकर' ने प्रेम के उज्ज्वल पक्ष को लिया है और सांस्कृतिक प्रेम इसी कोटि का है। उनके अनुसार प्रेम आंतरिक आभा है, बाह्य विभा नहीं, वह अंतर्मन का मुक्ता है बहिर्जगत का जाज्वल्यमान हीरा नहीं। प्रेम का मुख्य द्वार अंदर की तरफ से खुलता है–

बाहर साँकल नहीं जिसे तू खोल हृदय पा जाए,
इस मंदिर का द्वार सदा अंत:पुर में खुलता है।[11]

पुरुरवा के इस कथन में भी भारतीय संस्कृति की मर्यादा स्पष्ट परिलक्षित होती है–'नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती, न नर-नारी के आलिंगन में संतोष मानता है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते-उछालते उसे मन के समुद्र में फेंक देती है। तब वह दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच जाता है और पर नहीं रहता, जिससे मिलने की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुँचना चाहती है।'[12]

अयशमूल दोनों विकर्म हैं, हरण हो कि भिक्षाटन।

और हरण करता मैं किसका? उस सौंदर्य-सुधा का
जो देवों की शांति, इंद्र के दृग की शीतलता थी?
कुलवनिता परिणीता के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता।[13]

इसलिए जब राजा पुरुरवा उर्वशी के साथ गंधमादन पर्वत पर पुत्रेच्छा के लिए गए हैं तो औशीनरी धैर्य धारण कर महाराज की आज्ञानुसार ईश्वर की आराधना करती है–

एक वर्ष पर्यंत गंधमादन पर हम विचरेंगे
प्रत्यागत हो नैमिषेय नामक शुभ यज्ञ करेंगे।
विचरें गिरि पर महाराज हो वशीभूत प्रीता के,
यज्ञ न होगा पूर्ण बिना कुलवनिता परिणीता के।[14]

भारतीय नारी प्रियतम के चरणों में अपना तन, मन और जीवन अर्पण कर देती है। उसके अंदर त्याग और समर्पण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वह अपनी सखी से अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए कहती है–

अरी, कौन है कृत्य जिसे मैं अब तक न कर सकी हूँ?
कौन पुष्प है जिसे प्रणय-वेदी पर धर न सकी हूँ?
प्रभु को दिया नहीं, ऐसा तो पास न कोई धन है।
न्योछावर आराध्य-चरण पर सखि तन, मन जीवन है।[15]

परंपरागत आदर्शों से युक्त नारी की यह विडंबना होती है कि वह अपने पति पर निःस्वार्थ अर्पित कर देने में ही जीवन की सार्थकता मानती है किंतु जब पुरुष उसकी निष्ठा, प्रेम और गांभीर्य से ऊबकर नए सौंदर्य की खोज में उसके बंधन को तोड़ देता है तो उसके पास पश्चात्ताप के अलावा कुछ नहीं बचता–

गँवा दिया सर्वस्व हाय, मैंने छिपकर छाया में,
अस्वीकृत कर खुली धूप में आँख खोल चलने से।
देवि! प्रेम के जिस तट पर अप्सरा स्नान करती है,
गई नहीं क्यों मैं तरंग-आकुल उस रसित पुलिन पर?[16]

औशीनरी की असहायावस्था का दिनकर जी ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। औशीनरी का निज कथन है–

पति के सिवा चोबिता का कोई आधार नहीं है।
जब तक है यह दशा, नारियाँ व्यथा कहाँ खोएँगी
आँसू छिपा हँसेगी, फिर हँसते-हँसते रोएँगी।[17]

दिनकर जी की उर्वशी अपनी संपूर्ण निष्ठा से प्रेमिका के महत् आदर्श का निर्माण करती है। अनादिकाल से ही भारतीय मनीषियों ने पुरुषार्थ पर अपनी अडिग आस्था व्यक्त की है। उर्वशी को जब राजा पुरुरवा दैत्य के चंगुल से मुक्त कराते हैं तो वह भी उसके पुरुषार्थ पर मुग्ध हो जाती है। उर्वशी भी इस पौरुष पर मुग्ध होकर पुरुरवा से कहती है–

जब तक यह पावक शेष, तभी तक सिंधु समादर करता है
अपना मस्तक मणि-रत्न-कोष चरणों पर लाकर धरता है।
पथ नहीं रोकते सिंह, राह देती है सघन अरण्यानी,

तब तक ही सीस झुकाते हैं, सामने प्रांशु पर्वत मानी।
सुरपति तब तक ही सावधान रहते बढ़कर अपनाने को,
अप्सरा स्वर्ग से आती है अधरों का चुंबन पाने को।[18]

पुरुरवा शीलवान पुरुष है। 'उर्वशी' के रूप-सौंदर्य पर मोहित हो जाता है, लेकिन समर्थ होते हुए भी क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए स्वर्ग नहीं जाना चाहता। उसमें शक्ति और सामर्थ्य है लेकिन फिर भी वह साम्राज्य विस्तार का विरोधी है–

नहीं बढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरने को।
तब भी प्रतिष्ठानूपुर वंदित है सहस्र मुकुटों से
और राज्य-सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है।[19]

राजा पुरुरवा पराक्रमी होने पर भी अपने को किसी कार्य का कर्त्ता नहीं मानता। अपने पराक्रम के बल उसे अनायास ही यश, सुख और जीवन की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह वास्तव में निष्काम कर्मयोगी सदृश होता है–

इसी भाँति प्रत्येक सुयश, सुख, सिद्धि जीवन की
अनायास, स्वयमेव प्राप्त मुझको होती आई है।
यह सब उनकी कृपा, सृष्टि जिनकी निगूढ़ रचना है।
झुके हुए हम धनुष-मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं।[20]

भारतीय संस्कृति में यह दुर्बलता है कि भगवान और भाग्य के नाम पर निष्क्रियता को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला। राजा पुरुरवा उर्वशी के साथ गंधमादन पर्वत पर विहार में रत रानी औशीनरी को संदेश भेजते हैं कि रानी ईश्वर आराधना में रत रहें। उस समय यह धारणा थी कि लोक और परलोक में पुत्र ही सर्वस्व है। वास्तव में यह धारणा मनुष्य की, विशेषत: राजाओं की धर्मशास्त्रों पर आधारित थी। राजा पुरुरवा के मन में भी पुत्रेच्छा की भावना प्रबल थी। राजा पुरुरवा पुत्रेच्छा को पूर्ण बनाने के लिए रानी को आराधना करने के लिए कहते हैं–

पुत्र! पुत्र! अपने गृह में क्या दीपक नहीं जलेगा?
देवी! दिव्य यह ऐल वंश क्या आगे नहीं चलेगा?
करती रहें प्रार्थना, त्रुटि हो नहीं धर्म-साधन में,
जहाँ रहूँ, मैं भी रत हूँ ईश्वर के आराधन में।[21]

रानी औशीनरी के मन में भी अपने प्रियतम के लिए प्रेम और समर्पण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। रानी औशीनरी महाराज का पुत्र-प्राप्ति के लिए ईश-आराधना का संदेश सुनकर बेबसी में मुस्कराने लगती है और कहती है कि स्वयं पुत्र-प्राप्ति के लिए कुंज में विहार करें और मैं यहाँ सूने भवन में बैठी हुई आराधना करती रहूँ। फिर भी वह अपने पति की सुख-साधना के लिए प्रार्थना करती है–

तब भी मरुत अनुकूल हों मुझको मिलें, जो शूल हों
प्रियतम जहाँ भी हों, बिछे सर्वत्र पथ में फूल हों।[22]

सुकन्या के चरित्र में भी में पातिव्रत महिमा के दर्शन होते हैं। वह अपने पति को ही

 ISSN 0975-735X

सर्वस्व समझती है और उसी की परिधि में रहकर स्वयं को धन्य समझती है। औशीनरी और सुकन्या दोनों में ही भारतीय नारी की संपूर्ण विशेषताएँ विद्यमान हैं। पातिव्रत-धर्म का पालन करते हुए ये नारियाँ प्रेम में तिल-तिल जलती हैं लेकिन अपने पातिव्रत धर्म को नहीं छोड़तीं। सुकन्या का निज कथन चित्रलेखा को आलोक प्रदान करता है–

शिखर-शिखर उड़ने में जानें, कौन अमोद लहर है,
किंतु एक तरु से लग सारी आयु बिता देने में,
जो प्रफुल्ल धन गहन शांति है वह क्या कभी मिलेगी,
नए-नए फूलों पर नित उड़ती फिरने वाली को।[23]

यद्यपि सुकन्या राजा शर्याति की पुत्री थी, लेकिन उसमें लेशमात्र भी गर्व नहीं था। वह महर्षि च्यवन की भार्या थी और अपने महर्षि भर्त्ता पर उसे निस्सीम गर्व था। वह परम साध्वी तथा पतिव्रता थी। वह स्वयं अपने पातिव्रत के बारे में चित्रलेखा को बताती है–

एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगों का?
मेरे तो आनंद-धाम केवल महर्षि भर्त्ता हैं।
योग-योग का भेद अप्सरा की अबंध क्रीड़ा है,
गृहिणी के परम देव आराध्य एक होते हैं,
जिससे मिलता भोग, योग भी हमें वही देता है।
क्या कुछ मिला नहीं, मुको दयिता महर्षि की होकर?[24]

भारतीय संस्कृति के अंदर नारियों के प्रति अपार श्रद्धा और निरीह शिशुओं के प्रति वत्सलता का भाव सहज ही है। जब गर्भवती उर्वशी आश्रम में प्रसव-हित आती है तो उसकी शारीरिक विवशता और वेदना को देखकर महर्षि च्यवन का हृदय करुणाकलित हो जाता है। वे कहते हैं कि अप्सरा होते हुए भी यह कितनी लोकोत्तर लगती है और उसके जननी रूप की प्रशंसा करते हैं–

शुभे! त्रिया का जन्म-ग्रहण करने में बड़ा सुयश है।
चंद्राहत कर विजय प्राप्त कर लेना वीर नरों पर
बड़ी शक्ति है, शुचिस्मिते! शूरता इसे कहता हूँ
और नारियों में भी श्लथ, गर्भिणी, सत्त्वशीला को
देख मुझे सम्मानपूर्ण करुणा-सी हो आती है।
कितनी विवश, किंतु, कितनी लोकोत्तर वह लगती है।[25]

मातृत्व की चाह भारतीय नारी की सबसे बलवती चाह है। 'उर्वशी' की उर्वशी, औशीनरी और सुकन्या में मातृत्व की झलक देखी जा सकती है। कवि ने इन नारियों में मातृत्व की स्थापना कर भारतीय नारी का मृदु चित्र अंकित किया है। उर्वशी जैसी स्वर्ग की अप्सरा का रूप और गौरव प्रेयसी से अधिक मातृत्व में झलकता है। सुकन्या उर्वशी की देन्य अवस्था का चित्रण उक्त कथन द्वारा करती है–

देह-कांति पीतिमायुक्त, गति नहीं पदों के वश में,
चल लेती है किसी भाँति पीवर उस मेधाली-सी
जो समुद्र का जल पीकर मंथर डगमगा रही हो।[26]

'उर्वशी' में च्यवन ऋषि और सुकन्या के माध्यम से दांपत्य जीवन का एक अत्यंत संतुलित और आदर्श रूप प्रदीप्त हुआ है। प्रेम के जिस रूप की व्याख्या हुई है, वह शरीर के सौंदर्य एवं यौवन के बसंत तक सीमित नहीं रहता, अपितु उसकी सीमाएँ तन व मन का अतिक्रमण कर आत्मा एवं अध्यात्म तक व्याप्त हो जाती है। सुकन्या अपने योग और भोग का आधार और परम आराध्य महर्षि च्यवन को ही मानती है। दांपत्य-जीवन का महान् आदर्श पति-पत्नी के परस्पर हार्दिक समर्पण, गंभीर एकोन्मुख, सहृदयता, सहानुभूति और सच्ची आत्मिक एकता पर आधारित है। इस दांपत्य युगल का उद्देश्य लौकिक जीवन के सुखों से भी अधिक उच्च एवं उदात्त आत्मिक और आध्यात्मिक आनंद बन जाता है–

सच पूछो तो प्रजा-सृष्टि में क्या है भाग पुरुष का?
वह तो नारी ही है जो सब यज्ञ पूर्ण करती है।[27]

दिनकर जी ने च्यवन ऋषि और सुकन्या के दिव्य-प्रेम के माध्यम से जो झाँकी प्रस्तुत की है, वह भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। कवि गृहस्थ-धर्म के पूर्ण समर्थक रहे हैं। महर्षि च्यवन और सुकन्या के गृहस्थ-जीवन के माध्यम से इस कथन का पूर्ण समर्थन हुआ है। महर्षि च्यवन और सुकन्या की योजना भी भारतीय मर्यादित नैतिकता, संयम और परंपरा के अनुकूल है। आदर्श पत्नीत्व की झाँकी सुकन्या के चरित्र में उपलब्ध है। प्रेमिका के विपरीत आदर्श पत्नी में त्याग और समर्पण की भावना निहित होती है। सुकन्या इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहती है–

एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगों का?
मेरे तो आनंद धाम केवल महर्षि भर्त्ता हैं।
योग-भोग का भेद अप्सरा की अबंध क्रीड़ा है,
गृहिणी के तो परम देव आराध्य एक होते हैं।[28]

कवि ने महर्षि च्यवन के प्रति नारियों की अपार श्रद्धा और गौरव आदि भावनाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन किया है। प्राचीन-काल से भारतीय संस्कृति में गुरुओं के प्रति अपार श्रद्धा और सम्मान दिया गया है। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य और सर्वोच्च मानकर पालन किया जाता रहा है। उनके मन में उच्च-निम्न और इहलोक और परलोक में किसी प्रकार का मतभेद नहीं होता। स्वयं चित्रलेखा महर्षि च्यवन पर अपार श्रद्धाभाव प्रकट करते हुए कहती है–

च्यवन पूज्य सारी वसुधा के, पर असंख्य ललनाएँ
उन्हें देखती हैं अपार श्रद्धा, असीम गौरव से।
नारी को पर्याय बताकर कर तपःसिद्धि भूमि का,
सचमुच, त्रिया-जाति को ऋषि ने उद्भूत मान दिया है।'[29]

दिनकर जी ने ऋषि आश्रमों की रमणीयता और उदात्तता का जो चित्रण किया है, वह उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम का परिचायक है। धातृ माँ सुकन्या का उर्वशी के पुत्र आयु से अत्यधिक स्नेह है और उसके ममतामयी रूप में पुत्र के भविष्य के लिए शंका उठ रही है। यह समझते हुए भी कि आयु उसका पुत्र नहीं है, वह उसके प्रति वात्सल्य-भाव ही प्रकट करती है और शिशु आयु के भावी जीवन पर प्रकाश डालती हुई आश्रम में उसकी विभिन्न क्रीड़ाओं को देखने की अभिलाषा करती है–

यह आश्रम की ज्योति, इंदु नन्हा इस पर्ण-कुटी का,

 ISSN 0975-735X

सखी! तुम्हारा लाल हमारी आँखों का तारा है।
घुटनों के बल दौड़-दौड़ मेरा मुन्ना पकड़ेगा
कभी हरिण के कान, कभी डैने कपोत-केकी के।[30]

उद्धारकामी राजा लोग संतान की भी इच्छा करते थे। इसलिए राजा पुरुरवा गंधमादन पर्वत से रानी को संदेश भेजते हुए पुत्रेच्छा की अपनी चिंता और वेदना व्यक्त करते हैं और जब उर्वशी आयु के बारे में बता देती है तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। राजा पुरुरवा को भी आयु के आगमन पर अत्यंत हर्ष होता है और एक महान् उत्सव की घोषणा करते हैं, क्योंकि उनके लिए तीर्थ, तप एवं समाधि आदि से श्रेयस्कर पुत्र-प्राप्ति को माना जाता था। आयु को पाकर उनकी प्रसन्नता इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है–

पुत्र! देवि! मैं पुत्रवान हूँ? यह अपत्य मेरा है?
जनम चुका है मेरा भी त्राता पुं नाम नरक से[31]

ऐल वंश का नया सूर्य उदित होने पर वह घोषणा करता है–

ऐल वंश के महा मंच पर नया सूर्य निकला है,
पुत्र-प्राप्ति का लगन, आज अनुपम, अबाध उत्सव है।[32]

सोलह वर्ष पूर्व जब राजा पुरुरवा ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, तभी च्यवनाश्रम में आयु का जन्म हुआ था। इस रहस्य को प्रगट करने के पश्चात् उर्वशी अदृश्य हो जाती है। राजा इस रहस्य को जानकर क्रोधाग्नि से तिलमिला उठता है। पुरुरवा ने अनेक बार इंद्र की रक्षा देव-दानव युद्ध में की थी। उर्वशी के अदृश्य हो जाने पर वे इंद्र पर किए गए उपकारों का स्मरण करते हुए हुंकारने लगते हैं और अपने वाणों से प्रलय मचा देने का संकल्प करते हैं–

भूल गए देवता, झेल शत्रुता अमित असुरों की
कितनी बार उन्हें मैंने रण में जय दिलवाई है।
पर, इस बार ध्वंस बनकर जब मैं उन पर टूटूँगा,
आशा है, आप्रलय दाह विशिखों का स्मरण रहेगा।[33]

सत्य का ज्ञान हो जाने पर राजा पुरुरवा आयु को राजमुकुट पहनाकर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार राजा ने समृद्धि और सौंदर्य-विलास में निमग्न रहते हुए भी समय आने पर राजा पुत्र को अभिसिक्त कर कुंज में चले गए। अंत में वे इतने विरक्त हो गए थे कि आयु से वार्तालाप भी नहीं किया ओर न ही रानी औशीनरी को मिलकर ही गए। संन्यास-धर्म के अनुकूल राजा का यह कार्य पूर्ण रूप से उचित था। वह ऐल वंश का मुकुट आयु के मस्तक पर रखते हैं। वह आयु का राज्य-अभिषेक कर भार-मुक्त हो जाते हैं और वन चले जाते हैं–

यह लो, अपने धूर्णिमान सिर पर से इसे हटाकर
ऐल-वंश का मुकुट आयु के मस्तक पर धरता हूँ।
लो, पूरा हो गया राज्य-अभिषेक! कृपा पूषण की।
ऐल-वंश अवतंस नए सम्राट आयु की जय हो।
महाराज! मैं भार-मुक्त अब कानन को जाता हूँ।'[34]

औशीनरी त्याग, करुणा और समर्पित परिणीता थी। राजा स्वीय परिणीता के होते हुए भी लोकातिशायी गुणों से युक्त रमणियों के साथ विचरण करते थे, लेकिन अपनी परिणीता के प्रति

सम्मान भाव भी रखते हैं। औशीनरी राजा के वन-गमन के पश्चात् उनके मृदु और उदार स्वभाव का वर्णन इस प्रकार करती है–

महाराज कितने उदार, कितने मृदु, भाव-प्रवण थे।
मुझ अभागिनी को उनने कितना सम्मान दिया था।[35]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दिनकर जी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता एवं प्रणेता रहे हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति में गहरी आस्था होने के कारण ही पौराणिक-ऐतिहासिक आख्यानों, उदात्त मूल्यों, समुन्नत धारणाओं एवं उच्च मान्यताओं का चित्रण करके उन्हें नूतन युग के अनुकूल ढालते हुए नव मानवता हेतु श्रेयस्कर बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। 'उर्वशी' काव्य में स्थान-स्थान पर भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक अपने उत्कृष्टतम रूप में देखने को मिलती है। 'उर्वशी' में सुर और असुर संस्कृतियों के अतिरिक्त मानव-संस्कृति का निरूपण अधिक है। 'उर्वशी' में लोकरीतियों, नारी के प्रति सम्मान-दृष्टि, मानवत्व को वरीयता, मातृत्व के गौरव, आदर्श दांपत्य-जीवन, पातिव्रत्य धर्म, आश्रम जीवन, पुरुषार्थ के प्रति अटल आस्था आदि में भारतीय संस्कृति की मर्यादा स्पष्ट रूप से झलकती है।

संदर्भ

1. डॉ॰ हरिश्चंद्र वर्मा, तुलसी-साहित्य के सांस्कृतिक आयाम, पृ॰ 49-50
2. दिनकर, संस्कृति और सभ्यता, पृ॰ 63-64 वट पीपल
3. वही, पृ॰ 64
4. वही, पृ॰ 67
5. डॉ॰ हरिश्चंद्र वर्मा, तुलसी-साहित्य के सांस्कृति आयाम, पृ॰ 57
6. डॉ॰ गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, पृ॰ 6
7. उर्वशी, पृ॰ 27
8. वही, पृ॰ 28
9. वही, पृ॰ 26
10. वही, पृ॰ 53
11. वही, पृ॰ 44
12. उर्वशी, भूमिका
13. वही, पृ॰ 54
14. वही, पृ॰ 42
15. वही, पृ॰ 46
16. वही, पृ॰ 148
17. वही, पृ॰ 48
18. वही, पृ॰ 63
19. वही, पृ॰ 54
20. वही, पृ॰ 54
21. वही, पृ॰ 49
22. वही, पृ॰ 49

23. वही, पृ॰ 105
24. वही, पृ॰ 105
25. वही, पृ॰ 112
26. वही, पृ॰ 112
27. उर्वशी, पृ॰ 113
28. वही, पृ॰ 5
29. वही, पृ॰ 111
30. वही, पृ॰ 123
31. वही, पृ॰ 133
32. वही, पृ॰ 133
33. वही, पृ॰ 137
34. वही, पृ॰ 142
35. वही, पृ॰ 146

पुत्री श्री लक्ष्मीनारायण
ग्राम माजरी
पो॰ गुबहाना (झज्जर) हरियाणा 124507
मो॰ 09813470027

केदारनाथ अग्रवाल की कविता : दृष्टि और सृष्टि

डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया

केदारनाथ अग्रवाल के कवि-निर्माणकाल के परिवेश में अनेक साहित्यिक धाराएँ थीं। पहली धारा थी ब्रजभाषा काव्य की समस्यापूर्ति वाली धारा थी, छायावाद की, चौथी धारा थी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; गोपालसिंह नेपाली, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की स्वच्छंदतावादी धारा, पाँचवीं धारा थी बच्चन के हालावाद की और छठी उदीयमानधारा थी प्रगतिवाद की। इन सबका कुछ-न-कुछ प्रभाव केदारनाथ अग्रवाल पर स्वभावत: अवश्य पड़ा था, लेकिन अंतत: कवि मार्क्सवाद प्रभावित प्रगतिवाद की धारा से स्थाई रूप से जुड़ गए। प्रगतिवाद से जुड़ने की प्रक्रिया 1937 ई॰ में रामविलास शर्मा से भेंट के उपरांत आरंभ हुई थी और 1945-46 ई॰ तक स्पष्ट और स्थिर हो गई थी। अपनी जीवनदृष्टि का निरूपण केदारनाथ अग्रवाल इस प्रकार करते हैं–'मैं आदमी की महत्ता, इसमें समझता हूँ कि वह अपनी चेतना को मानवबोधी बनाता चले, लोक में लीन रहे, स्वयं जग और जीव से, प्रकृति और परिवेश से, लोक-व्यवहार से द्वंद्व और संघर्ष करता रहे और सत्य से संबद्ध होते-होते भ्रम और मिथ्या का परित्याग करता रहे, जो ऐसा नहीं करता वह अविकसित बना रहता है, असंबद्ध होकर, व्यक्ति सबसे कटकर मर जाता है। इसीलिए मैं अब अपने आस-पास से, लोगों से, पेड़-पशुओं और पक्षियों से, नदी-पहाड़ और हो रहे घटनाक्रम से संबद्ध बना रहता हूँ,[1] केदारनाथ अग्रवाल की जीवनदृष्टि लोकपलायन के पूर्ण परित्याग और लोकसंपृक्ति के पूर्ण स्वीकार की दृष्टि है। अपनी कविताओं में अपने व्यक्तित्व पर प्रकाश डालनेवाली अनेक बातें केदारनाथ अग्रवाल ने लिखी हैं। यथा–(क) मैं हूँ अनास्था पर लिखा/ आस्था का शिलालेख/ नितांत मौन/ किंतु सार्थक और सजीव/ काव्य के कृतित्व की सूर्याभिमुखी अभिव्यक्ति/ मृत्यु पर जीवन के जय की घोषणा[2] (ख) मैं हूँ/ आग और बर्फ की वसीयत/ मौत जिसे पाएगी/ जीवन से लिखी[3] (ग) जागरण है प्राण मेरा, क्रांति मेरी जीवनी है/ जागरण से, क्रांति से, मैं घनघना दूँगा दिशाएँ[4] (घ) इसी जन्म में/ इस जीवन में/ हमको-तुमको मान मिलेगा/ गीतों की खेती करने को/ पूरा हिंदुस्तान मिलेगा।[5] आत्मविश्वास की छटा केदारनाथ अग्रवाल के व्यक्तित्व में स्पष्टरूपेण परिलक्षित है। कवि केदारनाथ अग्रवाल का व्यक्तित्व सहज, सरल और निश्छल था। फूल की तरह कवि गमक उठते थे, किंतु लौहशलाका की तरह कठोर भी हो जाते थे। केदारनाथ अग्रवाल का कवि-मन मनुष्य की वेदना से मोम की तरह द्रवित हो जाता था और अन्याय के विरुद्ध संघर्षों में फौलाद की भाँति कठोर बन जाता था।

केदारनाथ अग्रवाल व्यापक सरोकार के कवि थे। कवि के काव्यालोक में तेईस काव्य-रश्मियाँ हैं–1. युग की गंगा (1947 ई॰), नींद के बादल (1947 ई॰), 3. लोक और आलोक

 ISSN 0975-735X

(1957 ई॰) 4. फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965 ई॰) 5. आग का आईना (1970 ई॰), 6. गुलमेहँदी (1978 ई॰) 7. आधुनिक कवि-16 (1978 ई॰), 8. पंख और वतवार (1980 ई॰), 9. हे मेरी तुम (1981 ई॰), 10. मार प्यार के थापें (1981 ई॰) 11. जमुनजल तुम (1984 ई॰), 14. अपूर्वा (1 984 ई॰), 15. बोले बोल अबोल (1985 ई॰), 16. जो शिलाएँ तोड़ते हैं (1986 ई॰), 17. आत्मगंध (1988 ई॰), 18. अनहारी हरियाली (1990 ई॰), 19. खुली आँखें खुले डैने (1993 ई॰), 20. पुष्पदीप (1994 ई॰) 21. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी (1991 ई॰) 22. कुहकी कोयल पेड़ की देह (1997 ई॰), 23. देश-देश की कविताएँ (1970 ई॰)। 'देश-देश की कविताएँ' संग्रह में पाब्लो नेरूदा मायकोवस्की, हिटमैन, निकोलावाप्तसरोव, रवींद्रनाथ टैगोर आदि के प्रति केदारनाथ अग्रवाल ने पिचासी कविताएँ लिखी हैं। इस कृति से सिद्ध होता है कि वह सफल अनुवादक थे।

प्रत्येक युग में मानव का जीवन पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर रहा है। प्राकृतिक परिवेश को स्वच्छ और मैत्रीपूर्ण बनाए रखकर ही आज मनुष्य स्वयं जीवित रह सकता है। कई दशकों से अंधाधुंध औद्योगीकरण ने प्राकृतिक परिवेश को बेहद बिगाड़ दिया है। धरती की जीवन-रक्षक ओजोनपर्त में विशाल छेद हो गया है। मिट्टी, वायु, जल आदि प्रदूषित हैं। धरती पर जीवन संकट में पड़ गया है। केदारनाथ अग्रवाल अत्यंत जागरूक कवि है। प्रकृति-प्रेम और काव्य में उसके चित्राण की दृष्टि से वह आधुनिक हिंदी के श्रेष्ठ-निरूपमेय कवि हैं। विरोधी परिवेश में कवि की प्रकृति-संबंधी कविताएँ हमारी मानवीय संवेदनाओं की रक्षा करती हैं, उन्हें पुष्ट करती हैं, विरोधी परिवेश से लड़ने की शक्ति देती हैं।[6] लोककविता की भूमि पर उन्होंने मानव की निसर्गसिद्ध प्रेरणाएँ व्यक्त करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। केदारनाथ अग्रवाल ने 'धरती को भूलो न धरती के लाड़लो' नामक मार्मिक और कलात्मक गीत में धरती के लाड़लों से कहा है कि वे धरती को कभी न भूलें अर्थात् उससे विमुख न हों। कारण यह कि धरती में जीवन है। यथा-'धरती में जीना है, धरती में सोना है/ धरती का जीवन सलोना-सलोना है/ जीवन की खेती को मेहनत से मॉड़ लो।'[7] धरती में ही रोटी और पानी है जिससे मनुष्य के जीवन में जवानी आती है। अत: इसे कभी मत भूलो। केदारनाथ अग्रवाल न केवल वनस्पति, जगत् और मनुष्य का परस्पर संबंध स्वीकारते हुए इन दोनों का पृथ्वी से जुड़ाव देखते हैं। कवि की प्रकृतिविषयक कविताएँ यथार्थपरक और संश्लिष्ट होती हैं। केदार के प्रकृतिचित्राण पर उनकी प्रगतिशील सामाजिक विचारधारा के अभिदर्शन होते हैं। गेहूँ की लहलहाती फसल देखकर उन्हें रूस की हिम्मतवाली लाल फौज याद आती है-'आर पार चौड़े खेतों में/ चारों ओर दिशाएँ घेरे/ लाखों की अगणित संख्या में/ ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है/....ताकत से मुट्ठी बाँधे है/ नोकीले भाले ताने हैं/ हिम्मतवाली लाल फौज-सा/ मर मिटने को झूम रहा है।'[8] कवि चूँकि किसानी परिवेश के परिपक्व मार्क्सवादी काव्यकार हैं, अत: गेहूँ के पौधों का यह चित्राण अत्यंत स्वाभाविक है। केदारनाथ अग्रवाल को समुद्र की ऊर्जस्वी लहरें आत्मविभोर कर देती हैं। वह धन्य-धन्य हो जाता है। यथा-'मैंने ऊर्जा पायी/ मैं लहराया/ काव्य-चेतना प्रबल हुई/ सिद्ध-साधना सफल हुई/ रचना रचने की/ अभिलाषा पूर्ण हुई/ चित् की चिंता/ दूर हुई।'[9]

केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि में दिक् और काल का अस्तित्व सत्ता पर निर्भर है, वह स्वतंत्रा नहीं है। वे कहते हैं-'दिक् और काल। इसीलिए हैं। कि 'हैं' और नहीं दोनों वहाँ हैं।'[10]

कवि मानते हैं कि ब्रह्मांड में जो कुछ भी घटित होता है, वह सब दिक् और काल के भीतर ही घटित होता है। दिक् और काल से बाहर कुछ नहीं है। कवि कहता है–'सब-कुछ/ सब-कुछ/ दिक् और काल में हुआ/ ब्रह्मांड ही जैसे/ कहीं घास/ कहीं घोड़ा हुआ, कहीं दर्द, कहीं फोड़ा हुआ। औरत मर्द का जोड़ा हुआ।'[11] समयविषयक कवि की धारणा आइंस्टाइन के सापेक्षवाद और मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित है। समय से मनुष्य का संबंध अविच्छेद्य है। अन्य वस्तुओं से वह अलग किया जा सकता है, पर समय से नहीं। यह बात 'समय' शीर्षक से एक छोटी-सी कविता में कही गई है। यथा–'समय है/ जैसे कोई नहीं है मेरा/ मेरी कुहनी के पास।'[12] कवि कहना चाहता है कि समय संसार की समस्त वस्तुओं का विनाश कर उनका सार शराब की तरह पीता है और अचेतन पड़ा रहता है। इसके विपरीत मनुष्य अपने जीवन का जल पीता है और दु:खों से रोता है। 'आज बर्बर क्रूर कर्कश विश्वभर में/ सभ्यता के गाल बजते'[13] यह पंक्ति 'युग की गंगा' की कविता 'आज' से ली गई है। विश्वभर के मानव-समाज की दशा पर इसे एक टिप्पणी माना है। कवि का कहना है कि आज नगाढ़े, ढोल, मृदंग, सितार, बीन और सारंगी के स्वर सजते नहीं दिखते। यद्यपि आज संगीत, नृत्य एवं गीत कलाओं का जितना व्यावसायीकरण हुआ है, इनका जितना मूल्य और सम्मान बढ़ा है, वह सामंती समाज से कहीं बहुत अधिक है। फिर भी कवि की दृष्टि में संगीत कला का विकास न होकर ह्रास ही हुआ है। सामाजिक कविता 'पैतृक संपत्ति'[14] में कवि ने किसान के बेटे को बाप के मरने पर उत्तराधिकार में घर का मलबा, टूटी खटिया, थोड़ी सी बंजर जमीन, चमरौधे जूते का तल्ला, टूटी औगी, दरकी गोरसी, बहता हुक्का, लोहे की पत्ती का चिमटा, कर्ज आदि मिलते हैं। उसका पेट नहीं भरता। पेट खलाए वह घूमा करता है। उसके लिए आजादी बेमतलब है। इस कविता का सामाजिक यथार्थ आँखों-देखा यथार्थ है। अत: उसे कल्पित नहीं कहा जा सकता।

केदारनाथ अग्रवाल क्रांतिकारी सामाजिक दृष्टि के कवि हैं। कवि ने भारतीय समाज को जगाने और उसमें नए जीवन का संचार करने के उद्देश्य से पूरे समाज को ही मृत घोषित कर दिया है। यहाँ के गाँव भी मुरदे हैं और शहर भी मुर्दे हैं। शासक भी मुर्दा है और शासित भी मुर्दा है। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों मुर्दे हैं। यथा–'हर और यहाँ, सब ओर यहाँ/ शहरों में, विद्युत-भवनों में/ छप्पर के छोटे दरबों में/ मुरदे ही, मुरदे रहते हैं/ यह मुरदों की धरती है।'[15] गाँव के लोग जीविका के लिए बड़ी संख्या में शहर जाते हैं। उन पर खासतौर पर उनकी वेशभूषा पर, शहर का प्रभाव बहुत जल्द झलकने लगता है। ऐसा व्यक्ति जब गाँव लौटकर आता है तो गाँव में विदेशी-सा लगता है। ऐसा ही है 'देह में देशी' कविता का गनेशी। यथा–'देह में देशी/ वेश में विदेशी है/ शहर से आया/ गाँव में गनेशी है।'[16] केदारनाथ अग्रवाल ने आम आदमी की सामाजिक जीवन-शैली का मार्मिक चित्राण बेहद खूबसूरती के साथ किया है। कवि की दृष्टि में आम आदमी का जीवन बत्तीस दाँतों के बीच अपना जीवन जीने वाली जीभ की तरह है। आशय यह कि यहाँ आदमी का पूरा जीवन 'वैयक्तिक व्यवस्था की सुरक्षा' में बीतता है। कवि ने मर्त्यलोक[17] कविता में झोपड़ियों में नरकवास करते श्रमिकों की सर्जनात्मक महत्ता व्यंजित की है। कवि का कहना है कि ये झोपड़पट्टी के लोग मर्त्यलोक में अर्थात् धरती पर 'चंद्रलोक' की रचना करते हैं, जिसमें साधन-संपन्न महाप्रभु गुण सुखमय जीवन जीते हुए स्वर्गवास करते हैं। विडंबना यह किये स्वर्ग-निर्माता स्वयं झोपड़ियों में नरकवास करते हैं। सामाजिक जीवन में सबल

 ISSN 0975-735X

द्वारा किसी दुर्बल का सताया जाना केदारनाथ अग्रवाल को कतई पसंद नहीं था। जहाँ कहीं भी, जब कभी भी कवि ऐसा होता देखते तो सबल को मार डालने के लिए उनका खून खौल उठता था। यथा–'जब/कहीं/कोई बलीन/अबलीन को/दिन दहाड़े/पौलता है/तब बलीन को/तत्काल मार डालने को/खून खौलता है।'[18] 'कागज की नावें' कविता तत्त्वत: राजनीतिक है, पर उसमें न विस्तार है, न प्रहार है, न फूत्कार है, न चीत्कार है, न क्रोध का अंगार है। दो पंक्तियों की कविता है–'कागज की नावें हैं, तैरेंगी-तैरेंगी ही/लेकिन वह डूबेंगी-डूबेंगी ही।' जंगली जनतंत्रा का आदमी नेताजी का साँस साधकर जीने को मजबूर है। 'मरकर भी' कविता में कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं–'मरकर भी/मरा नहीं आदमी/ नेता का साँस साधे जीता है/ भाषण को खाता/ और पीता है।'[19]

आनंद और उल्लास की एक प्रेरक शक्ति कामचेतना है। यह शक्ति केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में मौलिक और सार्वकालिक भूमिका निभाती हुई दिखती है। 'नींद के बादल' संग्रह की अधिकांश कविताएँ वैयक्तिक प्रेम की ही कविताएँ हैं। इनकी प्रेरणा का स्रोत कवि की काम-चेतना ही है–यथा–'कवितयों ही बन जाती है, बिना बनाए/ क्योंकि हृदय में तड़प रही है, याद तुम्हारी।[20] केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी प्रिया को अपनी चेतना में मरने नहीं दिया–'चेतना मेरी जिलाए है तुम्हें...। मैं तुम्हारे साथ जीवन जी रहा हूँ। शक्ति से-सामर्थ्य से-आनंद से।'[21] चेतना में पत्नी को जिलाए रखना, फिर शक्ति, सामर्थ्य और आनंद से जिंदगी जीना अद्‌भुत जीवन-कला है, जिसकी नींव किसी प्रकार का अध्यात्मवाद नहीं, अपितु वैज्ञानिक भौतिकवाद है। पत्नी के दिवंगत होने पर भी केदारनाथ अग्रवाल ने चेतना और जागरण का सिद्ध जीवन जिया और काव्यार्थ की अतिमूल्यवान उपलब्धियाँ अर्जित कीं।

मानवजाति की सारी प्रगति का आधार मानव का श्रम है। श्रम के जरिए मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तरह-तरह की वस्तुएँ उत्पादित करता है। श्रम और उत्पादन-पद्धतियों का अध्ययन करना ही ऐतिहासिक भौतिकवाद कहलाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवाद का मुख्य सिद्धांत है। केदारनाथ अग्रवाल ने श्रम करते हुए मनुष्यों पर जितना लिखा है, उतना हिंदी के बहुत कम कवियों ने लिखा होगा। 'युग की गंगा' में श्रम से संबद्ध अनेक कविताएँ हैं। 'आदमी का बेटा' गरमी की धूप में फावड़े से धरती खोदता है–'काँखता है, हाँफता है, मिट्‌टी को ढोता है। गंदी आबादी के नाले को पाटता है।'[22] 'मजदूर' कविता के मजदूर अपने जीवन की कड़ी मेहनत का विवरण स्वयं देते हैं। यथा–'हम सब मजदूर बड़ी कड़ी मेहनत में पिसते हैं/ भिंसारे फाटक में घुसते हैं/...सूरज के डूबे तक/पंजों को, पावों को पीठ को, पेट को/ कुत्तो से बदतर हम, घिसते हैं रोटी के दीवने/...माँजते हैं बरतन/ नंगी ही धरती पर सोते हैं/ काँखते-हाँफते।'[23] श्रम की निरंतरता श्रमिक को लौहपुरुष बना देती है। यथा–'मैंने उसको/ जब-जब देखा/ लोहा देखा/ लोहा जैसा/ तपते देखा/ गलते देखा/ ढलते देखा/ मैंने उसको/ गोली जैसा/ चलते देखा[24] युगों-युगों से भारत की जनता को ईश्वर, भाग्य और पूर्वजन्म के मकड़जाल में बुरी तरह से फँसाया गया है। केदारनाथ अग्रवाल ने 'श्रम' शीर्षक से अपनी कविता में इस जाल को हटाते हुए श्रम को सबके ऊपर प्रतिष्ठित किया है।

केदारनाथ अग्रवाल के दु:ख की औषधि कविता है। अपनी टूटन को कवि कविता की ममता से मिटा देता है। जब कभी कवि दु:खाघात से गिरता है तो कविताएँ उसे उठाकर पुन:

खड़ा कर देती हैं–'जहाँ गिरा मैं/कविताओं ने मुझे उठाया/ हम दोनों ने/ वहाँ प्रातः का सूर्य उगाया।'[25] कवि ने स्पष्ट किया है कि वह 'स्वार्थसाधक साहित्यकार' नहीं अपितु स्वाभिमानी कवि-वकील हैं। उन्होंने किसी राजनीतिज्ञ की तरफदारी कभी नहीं की, उनका समर्पण देश के प्रति है–'हाँ, देश के दुःख से दुःखी रहता हूँ/ उसी के प्रति समर्पित रहता हूँ/ काव्य में अभिव्यक्त करता हूँ/ देश के हित में जिसे/ उपयुक्त समझता हूँ।'[26] कवि का उद्देश्य है–पाठक को मृत्यु के भय से मुक्त करना। कवि कहता है–'मरना होगा यह निश्चित है/ नहीं जानता कोई कैसे /फिर भी हम मरने से डरते/ डरते-डरते जीवन जीते।'[27] सभी मानते हैं कि मृत्यु निश्चित है और यह सच भी है लेकिन यह भी निश्चित है कि किसी को भी यह पता नहीं है कि वह कब और कैसे मरेगा। जानता है तो वह बिल्कुल झूठा दावा करता है। कवि को आश्चर्य है कि मृत्यु कब और कैसे, न जानने पर भी लोग डर-डर कर जीवन जीते है और दुःख भोगते हैं। निश्चय ही ऐसे लोग 'दुर्बल मन के दुर्बल प्राणी' हैं। इस दुर्बलता को दूर करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन से अभिसिक्त केदारनाथ अग्रवाल का परिपक्व मन जलती चिता की लपटों में कंचनवर्णी पंखुरियों वाला कमल खिला हुआ देखता है। कवि की दृष्टि में ईश्वर एक कल्पित व्यक्तित्व मात्रा है, उसका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। अधिक-से-अधिक वह परखनली में पड़ा प्रवाद मात्रा है। एक बार मार्क्सवाद अपना लेने के बाद केदारनाथ अग्रवाल ने अपने जीवन में कभी भी मार्क्सवाद से मुँह नहीं मोड़ा। जीवन के अंतिम समय तक मार्क्सवादी दर्शन के प्रति उनकी आस्था सुदृढ़ बनी रही। अतः केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि में मानव के लिए उचित यही है कि वह 'मुक्ति' और 'निर्वाण' के चक्कर में न पड़कर अपने चैतन्य के साथ जीवन जिए। इसी में उसका कल्याण है–'चेतन रहकर जीने में कल्याण है/ एक मात्रा बस/ यही सत्य संज्ञान है।'

संदर्भ

1. केदारनाथ अग्रवाल, 'वचन' पत्रिका अंक 10-11 में संकलित लेख 'आत्मकथ्य', पृ॰12
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ॰ 48
3. फूल नहीं रंग बोलते है, पृ॰ 147
4. गुलमेंहदी, पृ॰ 123
5. गुलमेंहदी, पृ॰ 139
6. डॉ॰ रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, पृ॰ 95
7. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ॰ 102
8. गुलमेंहदी, पृ॰ 21
9. पुष्पदीप, पृ॰ 25
10. कुहकी कोमल खड़े पेड़ की देह, पृ॰55
11. पंख और पतवार, पृ॰ 112
12. कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह, पृ॰ 83
13. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ॰ 74
15. जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृ॰ 99-101
16. आत्मगंध, पृ॰ 163

17. आत्मगंध, पृ॰ 167
18. आग का आईना, पृ॰ 71
19. पुष्पदीप, पृ॰ 76
20. गुलमेंहदी, पृ॰ 28
21. आत्मगंध, पृ॰ 63
22. गुलमेंहदी, पृ॰ 28
23. गुलमेंहदी, पृ॰ 44
24. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ॰ 83
25. बोले-बोल अबोल, पृ॰ 122
26. बोले बोल अबोल, पृ॰ 138
27. बोले बोल अबोल, पृ॰ 80

मंगलकलश, 394, **सर्वोदयनगर, आगरा रोड**
अलीगढ़ 202001 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ : 09897144022

अमावस की रात 'कथ्य' और 'शिल्प'

मोनिका
शोधार्थी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

समकालीन हिंदी साहित्यकारों में उषा यादव एक बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार के रूप में उभरकर सामने आती हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास व नाटक सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई हैं। उनके उपन्यासों में समाज की हर समस्या प्रत्यक्ष है। इन्होंने एक सच्ची एवं जागरूक लेखिका की भूमिका निभाई और समाज की सभी समस्याओं को अपने विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाया है। 'अमावस की रात' में वे एक सर्वथा नई जमीन पर अपने उपन्यास का स्थापत्य बनाने का दुस्साहस करती हैं। दुस्साहस, इसलिए कि तांत्रिक विद्या और इसके अवमूल्यों पर इससे पहले कोई उपन्यास नहीं लिखा गया और इसलिए भी कि ऐसे विषयों पर लिखते समय थोड़ी-सी असावधानी भी गलत संदेश देने का निमित्त बन सकती है। सबसे बड़ी बात है कि आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में तांत्रिक क्रियाओं और उसके परिणामों में रुचि और विश्वास का अर्थ प्रतिगामिता और अंधविश्वास का समर्थन भी समझा जा सकता है। उषा यादव ने इस तरह का जोखिम उठाया है, लेकिन यह उनका कौशल है कि कृति का 'विजन' सोद्देश्य, सार्थक और सकारात्मक होने से आश्वस्त करता है।'[1]

उषा यादव का उपन्यास 'अमावस की की रात' अत्यंत भयावह परिस्थितियाँ प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास की सफलता स्वयंसिद्ध है। पाठक को हर शब्द आतंकित करता चलता हैं। पठनीयता इतनी बढ़िया है कि पुस्तक को हाथ से छोड़ने का मन नहीं करता। हर क्षण उत्तेजना और उत्सुकता दोनों समान रूप से चलती रहती हैं। इस दृष्टि से यह उपन्यास बहुत श्रेष्ठ है, पर विषय इतना रहस्यात्मक है कि हर पल पाठक को आंदोलित-सा करता चलता है।

समझ में नहीं आता कि कोई मनुष्य इतना निकृष्ट हो सकता है कि तंत्र-मंत्र की साधना के बल पर निरीह पशु-पक्षियों की बलि देता फिरे और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अपने पड़ोसियों का जीवन दूभर कर दे। ऐसे तांत्रिक में अपने घर-परिवार को सुख देने की कामना होती है, पर दूसरों का सुख छीनकर।

माँ भगवती के जिन मंत्रों से मानव का कल्याण होता है, उन्हीं मंत्रों का दुरुपयोग करके तांत्रिक दूसरों का अहित करता रहता है। तंत्र-मंत्र की यह विद्या मनुष्य का पूर्ण विकास करती है, पर इसी विद्या का गलत ढंग से उपयोग करके दूसरों का विनाश किया जाता है।'[2]

 ISSN 0975-735X

'लोकजीवन में व्याप्त और जीवनशैली में पैबस्त प्राथमिकताएँ और वैचारिक दृढ़ता (चाहे सही हो या गलत) मनुष्य दर मनुष्य कितना अहम मुकाम रखती है, यह उषा यादव के समीक्ष्य उपन्यास 'अमावस की रात' से समझा जा सकता है। एक मुहल्ले के चार-पाँच परिवारों के जीवन और समय चक्र की उलझी कुछ व्यक्तिगत घटनाओं और उनके प्रति उनके विश्वास के जुड़ी महत्त्वाकांक्षाओं को जीवन जितने कथा-प्रवाह से उपन्यास की रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है।'[3]

उपन्यास के फ्लैप पर अंकित शब्दों में-समाज में जहाँ दो प्रवृत्ति के मनुष्य हैं—आस्तिक और नास्तिक, वहीं एक तीसरा ऐसा वर्ग भी है, जो तंत्र-मंत्र को ही सब-कुछ मानता है।

अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए यह तीसरा वर्ग जिस अंधी दौड़ में शामिल है, उससे सभ्य समाज के सामने एक यक्ष-प्रश्न उभरता है कि तांत्रिक विद्या को मानने और करने वालों तथा शिकार होने वालों की परिणति आखिर क्या होगी?

तांत्रिक विद्या जानने वाले अपने हित के लिए किस हद तक गर्त में चले जाते हैं, यह एक चिंतनीय विषय है। पशु-बलि एवं मानव-बलि देने तथा माता-पिता तक को काल का ग्रास बनाने वाली कलियुगी संतान के दुष्कृत्यों को जिस खूबसूरती से लेखिका ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है, पाठक में उत्सुकता और उत्तेजना हर पल बढ़ती रहती है। अमावस की अँधेरी काली रात में पूर्णिमा के चाँद के समान है, यह उपन्यास 'अमावस की रात।'

इस उपन्यास की मुख्य कथा का आंरभ और अंत अमावस की रात से होता है। कथानक में मुख्य चरित्र की भूमिका निभाने वाले छोटे पंडित श्यामसुंदर तंत्रिक विद्या का गूढ़ज्ञान रखते हैं। इस विद्या द्वारा वे दूसरों का अहित इसलिए करना चाहते हैं ताकि उससे इनका हित हो सके। अपने इन्हीं गलत इरादों के कारण मकान मालिक से इनकी नहीं पटती और दर-दर ठोकरें खाने के बाद अंतत: पंडित कॉलोनी में एक टूटियल सा मकान खरीद लेते हैं। वह अमावस की रात को बारह बजे के बाद अपने पिता, माँ व पत्नी के साथ गृहप्रवेश करते हैं और उसी समय से वो पूजा-पाठ द्वारा टोने-टोटके कर बलि देने का कार्यक्रम शुरू कर देते हैं। उनके इस टूटियल घर के आस-पास संपन्न परिवारों के आलीशान घर हैं। तंत्रविद्या के बल पर पंडित इन पर अपने पांडित्य की धाक जमा लेता है। वह लोगों के अंधविश्वास का फायदा उठाकर तंत्र-मंत्र की शक्ति द्वारा अपनी पत्नी मन्नो की घुसपैठ कराने में सफल हो जाता है। पत्नी भी इस कार्य में अपने पति का पूरा सहयोग देती है।

गृहप्रवेश के साथ शुरू हुआ उनका बलि देने का सिलसिला समय के साथ-साथ बढ़ता ही जाता है। विभिन्न तांत्रिक शक्तियों द्वारा पशु-पक्षियों के साथ-साथ वह एक निरीह बालक की बलि देने में भी कामयाब हो जाता हैं। अपनी कॉलोनी के लोगों के अंधविश्वास एवं तांत्रिक शक्ति पर विश्वास का भरपूर फायदा उठाकर उनका नुकसान करने से नहीं चूकता। इसी आस्था और विश्वास के कारण दिवाकर को तो अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है, उसे मालूम नहीं होता कि जिस पंडित के पास वह अपने गृह-कलह से निजात पाने, बेरोजगार बेटों के लिए रोजगार ढूँढ़ने और कुँआरी बेटी के लिए सुयोग्य वर की तलाश के लिए जाता है, वह उसे ही अपने तांत्रिक षड्यंत्र का शिकार बना लेगी।

आस-पास की तीन कोठियों में घुसपैठ करने के बाद उसका निशाना गरिमा की तरफ

होता है। गरिमा एक आर्यसमाजी, शिक्षित एवं कामकाजी महिला है। एक तरफ मन्नो उससे मुँहबोली बहन का रिश्ता जोड़ती है, दूसरी तरफ अपनी गलत मानसिकता के तहत उसका हर प्रकार से विनाश करना चाहती है। शिक्षित एवं आर्यसमाजी संस्कारों की वजह से गरिमा अपने घर के बाहर किए गए टोने-टोटकों को सिर्फ लोगों की गंदगी फैलाने की मानसिकता मानती है, जिसके कारण वह मन्नो व पंडित द्वारा किए गए हर तांत्रिक प्रहार से अछूती रहती है। परंतु ये दोनों दुगुने उत्साह से उसका विनाश करने का प्रण लेते हैं।

इसी दौरान मन्नो पंडित के मना करने के बावजूद मातृत्व-सुख भोगने की जिद करती है। पंडित उसे समझाने की भरसक कोशिश करता है। वह कहता है कि ग्रहदशा हमारे अनुकूल नहीं है इसलिए बेकार की जिद छोड़ दे। पर मन्नो पर उसकी बातों का कोई असर नहीं होता। पंडित को हथियार डालने पड़ते हैं। समय बीतने पर मन्नो दो बच्चों जयंत और सुगंधा को जन्म देती है। फूल से दो बच्चों को पाकर वह खुशी के पारावार में बहने लगती है। लेकिन जैसे ही उसे अपने पति के मुख से बच्चों की खराब ग्रहदशा का पता चलता है, वह अपने होश-हवाश गँवा बैठती है। वह अफीम चटाकर बच्चों को मारने जैसा घृणित कार्य करने को भी तैयार होती है, परंतु पंडित उसे यह कहकर मना कर देता है–'अब सब-कुछ तुम्हारे हाथ से निकल चुका है, मन्नो! मैंने बहुत समझाया, तुम नहीं मानीं। मुझे पूर्वाभास था कि अभी इसी किस्म की संतान होगी। वंश-नाश वाले शाप का प्रभाव कम-से-कम बीस साल रहना था। मैं पूरे विधि-विधान से पूजा कर ही रहा था, पर तुमने जल्दबाजी की। उसी का नतीजा हमारे सामने है।'[4]

तांत्रिक विद्या के सर्वज्ञाता अपने श्वसुर का शाप उस समय स्मरण हो जाता है। संतान-सुख पाने के लिए एक यजमान उनसे बार-बार अनुरोध करता है। काफी मना करने के बाद बड़े पंडित एक तांत्रिक अनुष्ठान करते हैं, जिससे उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। यजमान पंडित को अपना भगवान मानने लगता है। पत्नी की जिद के कारण बड़े पंडित उससे उनका पक्का मकान पंडित के नाम करने की एक बेतुकी फरमाइश करते हैं। यजमान दंपती उनकी इस अनुचित माँग को मानने से इंकार कर देता है। तंत्र-प्रहार से पंडित उस बच्चे की हत्या कर देता है। पति-पत्नी के लिए यह सदमा प्राणघातक होता है। सामान्य हैसियत के पिता के कंठ से निकलता है–'तुझे भी वंशनाश का शाप देकर जा रहा हूँ मैं। तेरा वंश एक दिन जरूर समूल नष्ट हो जाएगा। मेरी हाय तुझे कभी फलने-फूलने नहीं देगी। तू लँगड़ा-लूला-अपाहिज होकर मरेगा। तेरे शरीर में कीड़े पड़ेंगे। तू...'[5] पवित्र आत्मा से निकले इस शाप के घातक प्रहार से पंडित अपने बेटे को तो बचाने में कामयाब हो जाता है, लेकिन स्वयं लकवाग्रस्त होने के साथ-साथ बोलने में भी असमर्थ हो जाता है। इसी स्थिति में वह चौदह साल की लंबी अवधि से न जाने किस जिजीविषा के कारण ज़िंदा है। अपने बच्चों की खराब ग्रहदशा हटाने के लिए छोटे पंडित दंपती भी हर प्रकार के प्रयास करने शुरू कर देते हैं। अपनी संतान की मंगल-कामना के लिए उनके लोगों पर घटिया प्रहार शुरू हो जाते हैं। शुरुआत में तो वह अपनी आत्मीयता एवं इंसानियत तक गिरवी रखकर तांत्रिक विद्या द्वारा अपने पिता की हत्या करता है। फिर प्रसव के लिए आई प्रज्ञा, उसकी बेटी अक्षरा व मुँहबोली बहन गरिमा को भी निशाना बनाया जाता है।

प्राणिमात्र के लिए मन में दया और करुणा का भाव रखने वाली गरिमा हर बार उसके प्रहारों से बच जाती है। यह उसके मानवीय गुणों के कारण ही संभव है, जो हमेशा किसी अदृश्य

 ISSN 0975-735X

शक्ति की मदद पाने में कामयाब होती है। परिवार में कलह उत्पन्न करने के भी तांत्रिक पंडित के सारे प्रयास असफल हो जाते हैं। हद तो तब हो जाती है, जब प्रज्ञा की सवा महीने की बेटी अक्षरा को तंत्र-मंत्र की विद्या से कीलित फ्रॉक पहनाकर और कभी सुहागा चटाकर मारने की कोशिश की जाती है। ऐसा करने का उनका मुख्य उद्देश्य होता है अक्षरा के सुखद भविष्य, धन-धान्य, शिक्षा, अरोग्यता से अपनी दुर्भाग्यशाली बेटी के दुर्भाग्य को दूर करना। अक्षरा की जन्मपत्री बनाते हुए 'पंडित अपने सामने फैले कागज़ों को पलभर देखता रहा, होंठों को हिलाकर कुछ गणना करता रहा, फिर आँखें बंद करके बोला बिल्कुल वही राशि। बिल्कुल वही लग्न। लेकिन ग्रहों में जमीन-आसमान का अंतर। ऐसी ही किसी जन्मपत्री की तलाश में था मैं। अब ऐसा चक्कर चलाऊँगा कि इस नवजात बच्ची का सारा सुख-सौभाग्य हमारी सुंगधा की झोली में आ जाएगा।'[6]

सुगंधा के सुखद भविष्य के लिए पंडित दंपती के सारे प्रयास असफल हो जाते हैं। जैसे-जैसे उन्हें असफलता मिलती है, वे दूसरी कुचाल चलकर अक्षरा का अहित करने पर उतारू हो जाते हैं। वे किसी भी हालात में अपनी हार स्वीकार नहीं करना चाहते। पंडित वानखंडी देवी की घोर उपासना कर सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। इसके लिए वह सुदूर जंगल में स्थित मंदिर में चला जाता है। जाते समय वह अपनी पत्नी को गरिमा से मेल-मिलाप न रखने और यहाँ तक कि उस घर की तरफ झाँकने से भी मना करता है। नासमझ मन्नो रक्तरंजित लाल कपड़ा उनकी छत पर फेंककर उनके मन में परेशानी पैदा कर देती है। अपनी नातिन अक्षरा एवं परिवार पर आनेवाली इन परेशानियों का कारण जानने के लिए गरिमा आचार्य भास्कर जी से मिलती है। वे पूरी वस्तुस्थिति जानने के बाद गंभीर होकर कहते हैं कि किसी की तांत्रिक शक्तियों के कारण इस प्रकार की अनहोनी घटनाएँ घट रही हैं। वे गरिमा से इसका उपाय करने का रास्ता सुझाते हैं। इसी दौरान प्रज्ञा भी अपनी माँ से पूछे बिना पति को फोन कर देती है कि वे आकर उन्हें लिवा ले जाएँ। प्रज्ञा परिवार में घटने वाली घटनाओं का कारण खुद को समझती हैं। माँ को और अधिक परेशानी न हो, इसलिए ही वह जाने का मन बना लेती है। प्रज्ञा के पति शनिवार को आकर रविवार को जाने का प्रोग्राम बना लेते हैं।

गरिमा ये सुनकर विचलित हो जाती है। प्रज्ञा माँ को समझाती हुई कहती है–शांत मन से विचार करो, माँ! इस छुटकी की चिंता के कारण तुम हर पल तनाव में रहती हो। तुम्हें डर है कि कहीं कोई तांत्रिक शक्ति दोबारा इस पर हमला न कर दे। बोलें, मैं सही कह रही हूँ न?'[7]

ऑफिस जाते समय गरिमा मन्नो से प्रज्ञा के जाने की बात कहती है। प्रज्ञा के जाने से मन्नो का मनोरथ पूरा नहीं हो सकता है, इसलिए वह बेचैन हो जाती है। वह हरसंभव यत्न करके पंडित को बुलाना चाहती है परंतु वह ऐसा करने में असमर्थ है। इसके लिए वह अपनी सास से मदद का अनुरोध करती है। तांत्रिक शक्तियों की ज्ञाता सास ना-नुकर के बाद उसकी मदद के लिए तैयार हो जाती है। वह बड़ी तन्मयता से तांत्रिक-मंत्रोच्चारण द्वारा पंडित से संपर्क साधने की कोशिश करती है। शुरुआत की असफलता के बाद अंततः वह संपर्क बनाने में कामयाब हो जाती है। तांत्रिक बुलावे के कारण पंडित भी सिद्धि प्राप्त किए बिना ही घर वापिस आ जाता है। घर आकर बुलावे का कारण पूछता है। पूरी वस्तुस्थिति जानने के बाद वह अपना गुस्सा व सिद्धि प्राप्त न होने की बात भूल जाता है और पूजा में लग जाता है। इस समय वह अपनी बेटी के सुखद

भविष्य के लिए अपना अंतिम हथियार रक्तकमल इस्तेमाल करता है। माँ उसे इसका इस्तेमाल न करने के अनुरोध के साथ-साथ चेतावनी भी देती है, पर वह नहीं मानता और पूरे विधि-विधान से पूजा में जुट जाता है।

गरिमा अपने घर पर होने वाले अदृश्य शक्तियों के हमले व रक्तरंजित कपड़े से बहुत परेशान होती है। आचार्य जी के सुझाव को मानते हुए वह अपने घर को कीलित करने का मन बना लेती है। वह ज्योतिषाचार्य जी की मदद से घोड़े की नाल द्वारा पूरे विधि-विधान से घर कीलित कर देती है। पंडित अमावस की रात को विधिवत पूजा करके रक्तकमल को अक्षरा को मारने के लिए भेजता है, पर कोठी के कीलित होने की वजह से वह उसमें प्रवेश नहीं कर पाता। पंडित की माँ के चेहरे पर गंभीरता के साथ-साथ भय और आतंक की छाया भी घिर आई, 'रक्त-कमल लौट रहा है श्यामसुंदर! मैं उसके लौटने की पदचाप सुन रही हूँ। मैं उसकी भूख से लपलपाती जीभ देख रही हूँ। पाँच पक्षियों और मानव के रक्त से जिसे सिद्ध किया गया, उसे अब मानव-बलि हर हालत में चाहिए।'...इस साधाना को आधाा अधूरा सिद्ध करके ही क्यों तुम प्रयोग में ले आए? तुम्हें जानना चाहिए था कि यदि किसी कारणवश रक्तकमल असफल होकर लौटेगा तो भूखे बाघ की तरह खूँखार हो जाएगा। उस हालत में उसके सामने मांस के टुकड़े फेंकने का तुम्हें पहले ही इंतजाम रखना चाहिए था। मेरे कहने का मतलब है कि किसी मनुष्य को तंत्र से भेड़ या बकरा बनाकर यहाँ रखना जरूरी था।'[8] पर समय हाथ से निकल चुका था।

कोठी में प्रवेश न कर पाने के कारण रक्तकमल वापिस लौट आता है। उसे वापिस आया देखकर घबराया पंडित उसे अपनी माँ की तरफ कर देता है, लेकिन माँ पितृघाती पुत्र की इस चाल को पहले से ही जानती थी। वह मंत्रपाठ के उच्चारण में सुगंधा नाम लेकर रक्तकमल को उसकी तरफ मोड़ देती है। वह सुंगधा का खून पीकर ही शांत होता है। पंडित ने जिस सुगंधा का भविष्य सुधारने के लिए अनुष्ठान का आह्वान किया था, वह उसी की बलिवेदी पर कुर्बानी हो जाती है। ये सब देखकर पंडित आँखों में लहकती घृणा लिए बोला, 'पच्चासी साल धरती पर बोझ बनकर भी तू अघाई नहीं बुढ़िया! अपने प्राण बचाने के लोभ में एक मासूम बच्ची को खत्म कर दिया। तू दादी है इसकी? शर्म कर अपने आप पर! लानत है तुझ पर! थू...!'

और पंडित ने पच्च से बुढ़िया के मुँह पर थूक दिया। 'देखती हो भगवती?' बुढ़िया भी चीख उठी, इस पापी की हरकतों को देख रही हो? तुम्हीं इसका इंसाफ करो जगदंबा।'

'यह क्या मेरा इंसाफ करेगी।' पंडित ने नफरत भरी निगाहों से मंदिर में सजी देवी प्रतिमा की ओर देखा 'यह खुद अंधी और बहरी है। सालों-साल वनखंडी महादेव के मंदिर की साधना का इसने यह फल दिया मुझको? इस घर से आज मैं इसका विग्रह ही उठाकर फेंक दूँगा।'

पगलाए पंडित ने क्रोधावेश से काँपते हुए जैसे ही आसन पर धरी देवी-प्रतिमा को उठाकर फेंकना चाहा, आसमान में रौद्र रूप के साथ बिजली कड़की और दो कमरों के उस छोटे से मकान के पूजा वाले कमरे की छत को तोड़ती-फोड़ती वहाँ मौजूद जीवित इंसानों पर गिर पड़ी।'[9] पूरा परिवार उसमें भस्म हो गया।

इस उपन्यास में गरिमा एवं मन्नो दोनों अपने बच्चों के लिए बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। दोनों के अपने बच्चों के लिए साधन प्राप्त करने के तरीकों में अंतर है। गरिमा अपनी मेहनत से दूसरों के प्रति करुणा एवं दया का भाव रखते हुए सारी सुख-सुविधाएँ देना चाहती है,

 ISSN 0975-735X

दूसरी तरफ पंडित एवं मन्नो अपनी तांत्रिक विद्या के बल पर दूसरों से सारी खुशियाँ छीनकर अपनी संतान की झोली में डालना चाहती है। ये सब संभव नहीं। इनका अंत तो पंडित के परिवार के अंत की तरह होता है।

उषा यादव के उपन्यास 'अमावस की रात' का भावपक्ष ही प्रधान नहीं है बल्कि कलापक्ष भी सशक्त है। उन्होंने इसे सीमित पात्रों के माध्यम से बड़ी सशक्त एवं प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत किया है। संवादों में इस्तेमाल की गई भाषा से पूरी वस्तुस्थिति मस्तिष्क पर चित्रांकित हो जाती है। भाषा के सहज, सरल प्रवाह को बनाए रखने में लेखिका सिद्धहस्त है। 'घोड़ा घास से यारी करे तो खाए क्या? शिकार को फँसते, गोली खाकर छटपटाते और आँखें पलटते देख, अब उसके कलेजे को बड़ी ठंडक पहुँचती है...दूसरे की आँख का काजल चुरा लेगी'[10] जैसे अवतरणों में मुहावरेदारी लाक्षणिकता और बिंबधर्मिता देखते ही बनती है। इस उपन्यास के माध्यम से वे इस विद्या के लिए लोकजीवन के संदर्भ में नई संभावनाओं को सामने लाने में कामयाब हुई हैं।

संदर्भ

1. समीक्षा, डॉ॰ वेदप्रकाश अमिताभ, डी॰एल॰ए॰ आगरा
2. पहचान (प्रगतिशील आकल्प), नरेशकुमार शर्मा, अप्रैल, जून 2008
3. समीक्षा, प्रेम शशांक, अप्रैल-जून 2008, पृ॰ 36
4. अमावस की रात, उषा यादव, पृ॰37
5. वही, वही, पृ॰ 33
6. वही, पृ॰ 125
7. वही, पृ॰ 220
8. वही, पृ॰ 265-266
9. वह, पृ॰ 269-270
10. वही, पृ॰ 21

14/IV/II/**बी॰एच॰ई॰एल॰**
हरिद्वार, उत्तराखंड 249403
मो॰ 08791000210

वर्तमान संदर्भ में मीरा की प्रासंगिकता

डॉ॰ बाबूराम (डी॰लिट्॰)
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

भगवान की सृष्टि में स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए गृहस्थाश्रम का मूलाधार दांपत्य संबंध है। मानव-समाज में दोनों के समान अधिकार और कर्तव्य हैं। मनु महाराज ने कहा है–**यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः**। समाज में कहीं पितृसत्तात्मक और कहीं मातृसत्तात्मक व्यवस्था रही है, परंतु भारत में पितृसत्तात्मक प्रथा का बोलबाला रहा है। इसी के फलस्वरूप स्त्री-पुरुष व्यवस्था और संबंधों का संतुलन बिगड़ गया। नारी युग-युगांतर से पीड़ित और शोषित रही है।

मध्यकाल में सामंती व्यवस्था प्रबल थी और धार्मिक दृष्टि से भक्ति-आंदोलन शक्तिशाली था। इस काल में अनेक संत-भक्त और सूफी हुए, जिन्होंने भारतीय समाज और अध्यात्म को प्रभावित किया। इसी परंपरा में मीरा का आविर्भाव हुआ। मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी था। उनके व्यक्तित्व का निर्माण भक्ति-भाव के तत्त्वों से हुआ था, जिससे वह बाल्यकाल से ही **अभयं अमृतं ब्रह्म** की साकार स्वरूप थीं। मीरा को भगवद्भक्ति और संस्कारों की प्रेरणा अपने पड़दादा जोधाजी और दादा दूधाजी से विरासत में ही मिली थी। उनके दादा दूधाजी ने चतुर्भुजजी के मंदिर का निर्माण मेड़ता में कराया था, जो आज भी विद्यमान है, जिसे आजकल मीरा मंदिर भी कहा जाता है। मीरा के पूर्वजों का गुरु जाम्भोजी के साथ घनिष्ठ संबंध था। इसीलिए बालिका मीरा के शीश पर जाम्भोजी का वरदहस्त था। उन्होंने मीरा को कृष्णभक्ति का वरदान दिया था। वह एक प्रकार से शक्तिस्वरूपा थीं। केवल हिंदी साहित्य में ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य में मीरा के समान कोई भक्तिभावापन्न कवयित्री दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो कृष्णभक्ति की देदीप्यमान तारिका थीं।

वर्तमान संदर्भ में साहित्य में विविध विमर्शों के अंतर्गत स्त्री-विमर्श की चर्चा बड़े जोरों पर है। नारी सशक्तिकरण एवं नारीमुक्ति के आंदोलन का शंखनाद तो मीरा ने भक्तिकाल में ही कर दिया था। उन्होंने मर्यादा में रहते हुए नारी-विरोधी प्रतिबंधित वर्जना की परंपरा को चुनौती दी थी। वह राजन्यवर्ग की होने पर भी घर से निकलकर मंदिरों में साधु-संतों के सत्संग और भजन-कीर्तन संयम और सदाचार से करती थीं। इसीलिए मीरा नारीमुक्ति का एक आदर्श हैं। विद्रोहिणी होने के बावजूद मीरा ने समाज में आस्था और विश्वास को बनाए रखा और तत्कालीन अनुचित सामाजिक बंधनों का खुलकर बहिष्कार किया।

 ISSN 0975-735X

वर्तमान संदर्भ में महिला अधिकारों के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कानून बन गए हैं। मीरा के समय में ऐसे कोई कायदे-कानून नहीं थे। मीरा की तरह महिलाएँ स्वतंत्र रूप से समाज में सब स्थानों पर विचरण नहीं कर सकती थीं। पर्दा-प्रथा बहुप्रचलित थी। मीरा ने उस युग में नारी-स्वतंत्रता के ध्वज को फहराकर नारीमुक्ति के द्वार खोल दिए। मीरा ने नारी-स्वतंत्रता के साथ नैतिक आदर्शों को भी मान्यता प्रदान की थी। आधुनिक नारी की स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता और स्वेच्छाचारिता उनकी मर्यादा और आदर्शों के अनुकूल नहीं है। मीरा का कृष्णप्रेम भगवान की भक्ति का एक उदात्त स्वरूप था–**मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोय**। उसमें आजकल के भौतिकवाद की गंध नहीं थी। उनका विरह भी बड़ा मार्मिक है–**हे री मैं तो दर्द दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय। घायल की गति घायल जाने, जो कोई घायल होय।**

मीरा की माधुर्य भक्ति आज भी भारत की जनता की जुबान पर विद्यमान है और उनका भक्तिभाव लोगों के हृदय को उसी तरह से प्रभावित और स्पर्श करता है जैसा मध्ययुग में करता था–**बसो रे मोरे नैनन में नंदलाल**। साहित्य, संगीत और भक्ति साधना की दृष्टि से मीरा की पदावली केवल वर्तमान संदर्भ में ही प्रासंगिक नहीं है, भविष्य में भी जनता और कलाकारों की कंठहार बनी रहेगी।

वर्तमान संदर्भ में मीरा बड़ी लोकप्रिय हैं। नारी होते हुए भी उन्होंने अनेक विपरीत परिस्थितियों और कठिनाइयों में अपना उज्ज्वल चरित, नैतिक आदर्श, धैर्य और शांति को बनाए रखा। इसीलिए मीरा का चरित्र आधुनिक नारी की आत्मसुरक्षा और सम्मान के लिए प्रेरणास्रोत और अनुकरणीय है। हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात में विशेषकर मीरा की लोकमानस पर अमिट छाप है। हरियाणा के लोकनाट्यकारों (सांगियों) ने मीरा के जीवनचरित को लेकर अनेक लोकनाट्यों (सांगों) की रचना की, जिसके कारण समाज भी प्रभावित हुआ। यह भी वर्तमान संदर्भ में मीरा की प्रासंगिकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान संदर्भ में मीरा की प्रासंगिकता निर्विवाद है। कृष्णप्रेम की दीवानी के रूप में मीरा अद्वितीय हैं। मीरा के समस्त पद अनुभूतिजन्य हैं। मीरा का युगबोध बड़ा प्रबल है। साहित्य, संगीत, भक्ति-साधना और ललित कलाओं की दृष्टि से मीरा भारतीय इतिहास की एक महती विभूति हैं और नारी-जागरण तथा सशक्तिकरण के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं। लोक में यह भी मान्यता है कि मीरा राधा का अवतार थीं। वर्तमान संदर्भ में मीरा की लोकप्रियता और प्रासंगिकता के विषय में कहाँ तक वर्णन करें विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी–'गिरधरलाल म्हाने चाकर राखो जी। चाकर रहस्यूँ बाग लगास्यूँ नित उठ दर्शन पास्यूँ जी।' पद का भाव ग्रहण करके अँग्रेज़ी में गार्डनर कविता लिखी थी। इस भूमंडल पर मीरा की इससे बड़ी प्रासंगिकता क्या हो सकती है?

संदर्भ

1. उपनिषद्
2. मनुस्मृति
3. सं॰, परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 1966
4. सं॰, हरिनारायणजी पुरोहित, मीरा वृहत् पदावली, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, संस्करण, 1968

5. सं॰, स्वामी (डॉ॰) ओम आनंद सरस्वती, मीरा पदमाला, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान), संस्करण 2004
6. प्रधान सं॰, डॉ॰ रणजीतसिंह गठाला, मीरा का सौंदर्यबोध, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान), संस्करण 2004
7. मुख्य सं॰, मोहनराम बंगा, पंजाब सौरभ (मीरा विशेषांक), भाषा-विभाग, पटियाला (पंजाब), सितंबर-दिसंबर, 2006
8. सं॰, स्वामी (डॉ॰) ओम आनंद सरस्वती, मीरायन, मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)
9. प्रधान सं॰, विनयकुमार शर्मा, शोध संचार बुलेटिन, लखनऊ, 2013
10. डॉ॰ हुकमसिंह भाटी, मीरा इतिहास, साहित्य और गीता के आलोक में, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, संस्करण, 2014

प्राफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र,
मो॰ 09315844906
Email:drbabuji1958@gmail.com

 ISSN 0975-735X

समकालीन हिंदी कहानी : पारिवारिक मान्यताएँ और नारी-शोषण

डॉ॰ ऋषिपाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी-विभाग
बाबू अनंतराम जनता कॉलेज
कौल, कैथल (हरियाणा)

समकालीन कहानी जीवन और जगत से जुड़ी कहानी है। इसमें परिवेश की वास्तविकता, चिंता, तनाव, दबाव और नारी से जुड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभिव्यक्त हुए हैं। नारी ईश्वर की अनुपम कृति है। वह सृष्टि की तरह अनादि, अनंत और सनातन है। वह सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और विकास की त्रिवेणी है। नारी माँ, बहन, बेटी, पत्नी, सास, बहू आदि अनेक रूपों में समाज में कार्यरत है। ननद, भाभी, देवरानी, जेठानी, बहन, साली आदि नारी के अनेक रूप हैं। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज-प्रथा, विधवा-समस्या, परित्यक्ता, सौतेली माँ, वेश्या आदि अनेक नारी की समस्याएँ हैं। नारी अपने हर रूप, संबंध और रिश्ते में, जीवन के हर क्षेत्र और स्थान पर पुरुष के शोषण का शिकार होती है।

भारतीय नारी का प्रमुख कार्यक्षेत्र पारिवारिक परिधि है। परिवार नारी का पालन-पोषण, संरक्षण, शिक्षा-दीक्षा, सुरक्षा आदि का मुख्य आधार होता है। परिवार में रहकर ही नारी संस्कार-ग्रहण करती है तथा विवाहित होकर ससुराल के प्रति अपने दायित्व को निभाती है। परिवार के सदस्य परस्पर एक दूसरे के सुख-दु:ख में सहायक होते हैं। परिवार के बिना समाज की निरंतरता संभव नहीं, क्योंकि परिवार ही नए बच्चों को उत्पन्न करता है और वे परिजन जो मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं, उनको भरता है। परिवार में हर सदस्य का एक विशेष पद होता है और उससे पद के अनुरूप कुछ विशेष दायित्व वहन करने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार परिवार के सभी सदस्यों में उनके पदों और कार्यों का एक संतुलित ढंग से विभाजन रहता है। इसके बाद परिवार के लिए त्याग की भावना, विचार-विनिमय, आय का आवश्यकता के अनुसार वितरण, नैतिक मान्यताओं में विश्वास, गृहपति के आदेशों का पालन, अन्य विशेष महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जो एक परिवार के संगठन में सहायक होते हैं।'[1]

परिवार स्त्री और पुरुष के लैंगिक संबंध का एक सुनिश्चित रूप है। यह संबंध इतना स्थाई होता है कि पति-पत्नी के संयोग से उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण उनकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा दायित्व उस स्त्री-पुरुष पर ही होता है, जो उस परिवार का निर्माण करते हैं। परिवार के बारे में समाजशास्त्र की मान्यताएँ हैं कि-1. स्त्री और पुरुष में लैंगिक संबंध, 2. विवाह का कोई ऐसा

प्रकार जिसके द्वारा लैंगिक संबंध सुव्यवस्थित रूप से स्थापित हो जाए और वह इतना स्थाई भी रहे ताकि उसे एक सुव्यवस्थित संस्था का रूप प्राप्त हो जाए, 3. स्त्री-पुरुष का यह संबंध अपनी छाप भविष्य पर भी छोड़ जाए। ऐसी व्यवस्था हो, जिसके द्वारा उनकी संतान उनके नाम से जानी जाए या संतान का माता-पिता के साथ संबंध स्पष्ट रूप से माना जाए, 4. अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के सदस्य मिलकर करें, 5. ऐसा साँझा निवास स्थान, जहाँ परिवार के सदस्य साथ मिलकर निवास करते हों, इसी को घर कहते हैं।[2]

वैज्ञानिक उन्नति के परिणामस्वरूप जो भौतिकता छाई है और व्यक्ति में प्रत्येक दिन नई सुविधाओं को एकत्रित करने की जो तृष्णा पैदा हुई है, उसके कारण हमारा पारिवारिक ढाँचा चरमरा गया है। पश्चमी सभ्यता के अंधानुकरण ने पारिवारिक सद्भाव को लगभग समाप्त कर दिया है। दीप्ति खंडेलवाल की कहानी 'ये दूरियाँ' पारिवारिक सद्भाव में आ गई दरार को व्यंजित करती हैं। डॉ॰ विजयावारद के शब्दों में–'यह कहानी एक ऐसे अत्याधुनिक परिवार से जुड़ी हुई है जिनको किसी भी बात की कमी नहीं है। बाहर की दुनिया में 'मेड फार इच अदर' की दृष्टि से जीने वाले छत के नीचे भयावह दूरियाँ रखकर जीते हैं। इन दूरियों के कारणों की जानकारी दोनों को भी नहीं है। ऐसा क्या कुछ है कि जिससे ये दूरियाँ पैदा हुई हैं। अपनी लड़की के बर्थ-डे पर ठारी प्रेजेंट करने वाला पिता और 'मेड फार इच अदर' स्पर्धा में प्रथम क्रमांक हासिल करने वाले पति-पत्नी घर में एक-दूसरे की अलग-अलग ज़िंदगी जी रहे हैं। वास्तव में पाश्चात्य जीवन-दर्शन के अंधानुकरण का यह परिणाम है। एक-दूसरे के प्रति जहाँ समर्पण की भावना नहीं, त्याग नहीं, समझौता नहीं, वहाँ दूरियाँ बनी रहेंगी ही और पारस्परिक अपनत्व खंडित होता रहेगा है।'[3]

भारतीय समाज की पारिवारिक मान्यताओं में नारी का शोषण सामान्य-सी बात है। समकालीन हिंदी कहानियों में अनेक बार इसका चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है। मालती जोशी की 'अक्षम्य' कहानी का नायक श्याम अपनी पत्नी बिंदु से वितृष्णा करता है, क्योंकि वह सुंदर नहीं है। श्याम की माँ दहेज कम लाने के कारण बहू से अप्रसन्न है। इसलिए वह बहू के विरुद्ध बेटे के कान भरती रहती है और बेटा भी माँ की बात का विश्वास करके पत्नी को पीटता रहता है। इतना ही नहीं, उसकी सास बहू के चरित्र पर आरोप लगाती हुई उसके संबंध रज्जू हलवाई के साथ अवैध रूप से बताती है। श्याम की पत्नी अपने सास-ससुर व पति के अत्याचारों को सहन करती है, लेकिन जब उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाया जाता है तो वह पति से कहती है– 'जानती हूँ तुम्हारी माँ ने अपना अनाचार ढकने के लिए मुझे पर यह तोहमत लगाई है। मेरे यहाँ रहने से उनकी आजादी में खलल पड़ा है न।'[4]

पारिवारिक वातावरण में जब से भौतिकवाद का दखल हुआ है, माँ-बाप की दशा बिगड़ी है। बूढ़ी माँ अपने ही बेटों द्वारा शोषित होती है। बेटे ही नहीं, बहू भी उसका जमकर शोषण करती है। मालती जोशी की 'चाहत' कहानी की सुषमा अपनी माँ के शोषण पर प्रकाश डालती हुई कहती है–'वाह! तुम कितनी ठसक से रहती थीं, मैं क्या जानती नहीं। दिनभर अपने कमरे में बंद रहना पड़ता था। सिर्फ खाने के वक्त बाहर आने की इजाजत थी। बाहर वालों से बात करने की सख्त मनाही थी। फोन तुम छू नहीं सकती थीं। तुम्हारी चिट्ठियाँ सैंसर होती थीं। बच्चों को तुम्हारी छाया तक से दूर रखा जाता था। अपनी मर्जी का खाना बनवाना तो बहुत दूर की बात है, तुम्हारा रसोई में झाँकना तक गुनाह था। इसे तुम ठसक के साथ रहना कहती हो?'[5]

 ISSN 0975-735X

ममता कालिया की 'तासीर' कहानी में पारिवारिक संबंधों में एक माँ के शोषण का यथार्थ चित्र खींचा गया है। माँ बीमार है। अस्पताल में दाखिल है। बेटा बहुत बड़ा अधिकारी है। वह केवल आधे घंटे के लिए अपनी माँ को देखने के लिए आता है। इस कहानी में बहू अपनी सास के पास नहीं रहना चाहती और पेरेंट टीचर मीटिंग का बहाना बनाकर अस्पताल से जल्दी ही चली जाती है। इस परिवार का पोता दादी को केवल 'गैट वैल' का कार्ड भेजकर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। इस कहानी के पिता नरोत्तम जी बेटे-बहू के चले जाने के बाद अर्धचेतन अवस्था में लेटी हुई अपनी पत्नी से कहते हैं–'चला गया तुम्हारा बेटा! बिस्सू, इसे तुमने पैदा किया, पाला-पोसा। याद है कैसे इसकी जरा नाक बहते ही तुम मेरी नाक में दम कर देती थीं, डॉक्टर को बुलाओ, खिड़की बंद करो, नया कंबल लाओ। यह लाट साब सो जाता था, तुम इसका होमवर्क करती थीं, आधी-आधी रात तक। आज तुम बेहोश पड़ी हो और बेटे को फुर्सत नहीं, तुम्हारे पास बैठने की। मुझसे कहता है, नटशैल में बताइए, मम्मी को क्या हुआ है। बदतमीज, गधा कहीं का। दफ्तर की भाषा अपने बाप को बोलता है। क्या तुम्हारी हालत और अपनी परेशानी मैं नटशैल में बता सकता हूँ। क्या यह हाउ आर यू, फाइन, थैंक्यू जैसी सिचुएशन है? मैंने भी बहुत अफसरी की, पर कभी भी अपने बाप को अपना क्लर्क नहीं समझा। ये तुम्हें देखने नहीं, विजिट पे करने आए थे। जब ये पोते पैदा हुए, तुम अपना नहाना, खाना भूल, रात-दिन लगी रही इनमें। आज बहू को तुम्हारे लिए वक्त नहीं है। सुना तुमने, किसी को फुर्सत नहीं है तुम्हारे लिए।'[6] प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक संदर्भों में नारी के माँ रूप का शोषण बड़ी सजीवता से व्यक्त हुआ है।

भारतीय समाज में नारी का माँ बनना आवश्यक माना गया है। पति को नारी का माँ बनना खुशी प्रदान करता है। लेकिन मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरा' में पत्नी मीता शिशु को जन्म देना चाहती है, लेकिन पति महेंद्र उसे गिरा देना चाहता है। वह मीता से कहता है–'अगर यही बच्चा अब न होकर पाँच साल बाद हुआ तो सब-कुछ होगा हमारे पास, बड़ा घर, गाड़ी, फ्रिज सब। मीता, मैं नहीं चाहता मेरा बेटा हमारी तरह गरीबी और अभाव में पले।[7] महेंद्र मीता का अबोर्शन करवाना चाहता है, लेकिन अंततः मीता ऐसा नहीं करती। इससे इस कहानी के दांपत्य-जीवन की एक नई मान्यता का उद्घाटन होता है। बहू के रूप में नारी का शोषण सामान्य सी बात है। तेजेंद्र शर्मा की मलबे की 'मालकिन' कहानी में, 'अमिता अभी 17 वर्ष की थी कि रामखिलावन यादव से उसकी शादी हो जाती है। पहली ही रात पति के वहशियाना बर्ताव ने सब-कुछ समझा दिया था, कि अमिता अमिता यादव बने रहने के लिए, जीवन-भर क्या-क्या सहना पड़ेगा।...जैसे एक भेड़िया टूट पड़ा था अपने शिकार पर। निरीह मेमने की तरह बेबस-सी पड़ी थी मैं। पीड़ा की एक तेज लहर टाँगों को चीरती हुई निकल गई थी।...शराब और तंबाकू की महक, उबकाई को दावत दे रही थी।...दर्द ने चीख को बाहर निकालने को मजबूर कर ही दिया। चादर लहू से लथपथ हो रही थी। ...चेहरे पर विजयी मुस्कान लिए वोह। ...जो मेरा रखवाला था, स्वयं ही मुझे जख्मी और आहत छोड़कर आराम की नींद सो रहा था।'[8]

सुधा गोयल की कहानी 'मन की अदालत' दहेज के कारण बहू को बुरी तरह से पीटने और फिर आग के हवाले कर देने की मार्मिक कहानी है। इस कहानी में बहू अपने मायके से जो कुछ भी लाती है, सास उसे उठाकर अपनी बेटियों को दे देती है। बहू बहुत ही सहनशील

और सुशील है। सास हमेशा बहू की बुराई करती है। वह स्वयं जवानी में विधवा हो गई थी। पति को माँ का स्वभाव बुरा लगता है लेकिन सोमा (बहू) पति से कहती है–'माँ मन की बुरी नहीं, उनकी नाराजगी का एक मुख्य कारण है, उन्हें लगता है कि मैंने उनका बेटा ही नहीं, एकाधिकार भी छीन लिया है, क्योंकि अब तुम हर छोटी-छोटी जरूरत के लिए अम्मा-अम्मा कहकर उनसे नहीं लिपटते। तुम्हारी जरूरतें मैं ही पूरी कर देती हूँ।'[9] अखिलेश की कहानी 'बायोडाटा' में एक पति-पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके मायके जबरदस्ती भेजकर उसे गालियाँ देकर पत्नी का मानसिक शोषण करता है–'वह भड़क गया, 'ठीक है, देखता हूँ, कैसे नहीं जाती हो। मैं बहुत ही खतरनाक इंसान हूँ। तुमने मुझे समझा नहीं है। मेरी कमीनगी अभी देखी कहाँ है। मैं किसी बात पर अड़ जाता हूँ तो फिर अड़ ही जाता हूँ। मैं कहता हूँ तुम्हें जाना ही पड़ेगा, जाना पड़ेगा एक नहीं हजार बार जाना पड़ेगा...।' उसे खाँसी आ गई, खों...खों...खों करने के बाद वह पुनः भड़का, 'मैं किसी को आसमान में चढ़ा सकता हूँ तो उसे धरती पर पटक भी सकता हूँ..कुतिया कहीं की...।'[10]

नारी परिवार और समाज दोनों को आगे ले जाने वाला मुख्य आधार है, लेकिन विडंबना है कि परिवार की परिधि में ही नारी का निरंतर शोषण होता है। भारतीय परिवार पुरुष-प्रधान परिवार है और पुरुष अपनी शक्ति के दंभ में नारी के स्वाभिमान को कुचलने में अपनी आत्म-तुष्टि मानता है। समाज में दोहरे मानदंड हैं। भारतीय नारी परिवार के जिन लोगों के सुख, शांति और सद्भाव के लिए अपना जीवन खपा देती है। वही लोग नारी के शोषण का कोई भी अवसर नहीं जाने देते। भारतीय समाज में हर रूप, हर क्षेत्र, हर स्थान पर नारी का शोषण होता है। कहीं भी वह सुरक्षित अनुभव नहीं करती। लगता है, शोषण भारतीय नारी की नियति बन गया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ धर्मेंद्र श्री वास्तव, हिंदी उपन्यासों में सामाजिक विघटन, उमेश प्रकाशन, 100 लूकरगंज, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1995, पृ॰ 11-12
2. डॉ॰ सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, सरस्वती सदन, मंसूरी, प्रथम संस्करण, 1980, पृ॰ 379
3. डॉ॰ विजयावारद साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएँ, विकास प्रकाशन, साकेत नगर, कानपुर, पृ॰ 99
4. मालती जोशी 'अक्षम्य' (बोल री कठपुतली), किताब घर, नई दिल्ली, संस्करण, पृ॰ 25
5. मालती जोशी, चाहत, बुलबुल का घर, विकास पेपर बैक्स, दिल्ली, संस्करण, पृ॰ 86
6. ममता कालिया, तासीर, बोलने वाली औरत, राजभवन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1981, पृ॰ 61
7. मृदुला गर्ग, मेरा (डेफिडोल जल रहे हैं), अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1986, पृ॰ 57
8. डॉ॰ तेजिन्द्र शर्मा, मलबे की मालकिन (देह की कीमत), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण, 1982, पृ. 22
9. सुधा गोयल, मन की अदालत (वनवासिनी), किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1987, पृ॰ 106
10. अखिलेश, बायोडाटा, 'शापग्रस्त', राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण, 1997, पृ॰ 70

मो॰ 9812121009

अभिमन्यु अनत के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक जनजीवन

प्रो॰ शर्मिला सक्सेना
अध्यक्ष हिंदी विभाग
डी॰ई॰आई॰ दयालबाग़, आगरा (उ॰प्र॰)

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है। वह अपने आस-पास के वातावरण को सामान्य व्यक्ति से ऊपर उठकर देखता है एवं इसका निरूपण अपने साहित्य में करता है। साहित्यकार समाज की समस्याओं पर सामान्य सामाजिकों से गहन दृष्टिकोण रखता है। अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण वह समाज और व्यक्ति की भावनाओं को समझता है और अपने साहित्य के माध्यम से प्रकट कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अभिमन्यु अनत एक महान साहित्यकार हैं, जो मॉरीशस में रहने वाले गिरमिटिए मजदूरों की समस्याओं से हमें परिचित कराते हैं।

'अनत' एक उपन्यासकार के रूप में सदैव आम आदमी की अस्मिता, प्रतिष्ठा एवं उसके हक की रक्षा के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। अभिमन्यु अनत ने जीवन की कटुताओं, विसंगतियों को कुछ ऐसा देखा, सुना, अनुभव किया और भोगा कि उसकी अमिट छाप उनके मन पर पड़ी और उसी को उन्होंने अपने उपन्यासों में बड़ी सच्चाई एवं ईमानदारी के साथ रूपायित किया। आपके उपन्यासों में यथार्थ-मिश्रित कटु सत्य बड़ी तल्खी के साथ अभिव्यक्त हुआ है, जिसके कारण विद्रोही-भाव एवं विचार, विद्रोही स्वर में मुखरित हुए हैं।

मॉरीशस के भारतीय समाज में जातिगत भेद ठीक उसी तरह विद्यमान है, जैसे भारत में मॉरीशस में पहुँचे भारत के सभी गिरमिटिया श्रमिक प्रायः एक ही स्तर पर थे। वे वहाँ मजदूरी करके जीवकोपार्जन करने गए थे। उनके साथ एक-सा दुर्व्यवहार होता था और शोषण किया जाता था। उन्हें समान परिस्थितियों में ही रहना पड़ता था। वे सात समुंद्र पार भी अपने जातिगत भेदों को नहीं भुला पाए। भारतीय और हिंदू के रूप में संगठित होकर भी वे तमिल, तेलुगू, मराठी, तथा हिंदी भाषी और ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया, दुसाध आदि जातियों में विभक्त रहे। सभी जातियाँ एक साथ खाना नहीं खा सकती थीं। उन्हें अपनी जाति की बारी आने की प्रतीक्षा करने पड़ती थी। वस्तुतः 'मुड़िया पहाड़ बोल पड़ा' उपन्यास में नेहा की माँ महादेव से कहती है–'देखो यह जो थोड़ा सा जात-पाँत का अंतर जरूर है, पर लड़का बहुत अच्छा है, इसलिए तुम नाक मत सिकोड़ो।'[1]

'अनत' के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत अनेक समस्याएँ रखी जा

सकती हैं। यथा समाज में मजदूरों की स्थिति, जाति-पाँति, सामाजिक वर्ग-वैषम्य, नई एवं पुरानी पीढ़ी में संघर्ष आदि। इन समस्याओं के कारण नारी-वर्ग ही नहीं अपितु पुरुष-वर्ग भी सामाजिक दंश, कटुता, तनाव, अपमान, तिरस्कार एवं लांछन आदि के शिकार हो रहे हैं। इन सामाजिक समस्याओं को निम्नलिखित रूप से विवेचित किया जा सकता है।

समाज में मजदूरों की स्थिति

भारत से मॉरीशस, मजदूरों को धनवान होने का लालच देकर ले जाया जाता था। उन्हें बताया जाता था कि वहाँ मिट्टी में से सोना निकलता है, जिसे प्राप्त करके वह जल्द धनवान बन जाएँगे। लेकिन वहाँ जाने पर उन्हें जिस काम में लगाया जाता था केवल मजदूरी होती थी। उस मजदूरी का भुगतान उन्हें पैसों के साथ-साथ कोड़ों की मार से भी किया जाता था। वहाँ पहुँचकर भारतीय मजदूरों के स्वप्न धूल-धूसरित हो जाते थे। वहाँ पहुँचने वाले कुली, मजदूरों की गाथा दर्द की महागाथा बन जाती थी। 'जम गया सूरज' उपन्यास में इसका उदाहरण द्रष्टव्य है–'बड़ी उम्मीद के संग हम सब हियाँ पहुँच लो जाकर उम्मीद पर पानी फिर गया जब सवन को मालूम चला कि पत्थर के नीचे सोना नहीं, बिच्छू ही बिच्छू होवे। हो दु:ख बर्बन केरने होई। कुत्ता से भी गईल गुजरल जीवन बितावे परल। एक दाना चावल के खातिर सौ बूँद पसीना और दस बूँद खून।'[2]

इसी प्रकार मजदूरों की प्रताड़ना की कहानी 'लाल पसीना' उपन्यास में भी बताई गई है। इस उपन्यास में भी यही वर्णित किया गया है कि भारतीय मजदूर सोना पाने की चाह में मॉरिशस पहुँच गए, किंतु वहाँ उन्हें सोने के बदले बाँसों की मार मिल रही है, जिसमें सभी मजदूरों की पीठ छिल रही है। उनकी गति कोल्हू के बैल जैसी हो गई है। उन्होंने तो धनवान बनने के लिए अपना देश छोड़ा था, किंतु वे तो यहाँ कुली बनकर ही रह गए हैं–'सुनी के नाम हम मारीच के दीपवा हो...पहुँचे अरी हम पाने को सोनवा पाने को बदले में मिलेगा भारे बाँसों की मार हो छिलछिले जयली सब मजदेर की पीढ़वा मजदूरन कोल्हू के बैल बने इखवन पीसन को छोड़ा था देस अपना कुली बनन को कुली।'[3]

मॉरीशस के समाज में कुली मजदूर पीढ़ी दर पीढ़ी इसी पीड़ा का अभिशाप भोग रहे हैं। धीरे-धीरे यह स्थिति बगावत तक पहुँच जाती है। कभी संतू ने बगावत की तो कभी किसन, कुंदन और मदन ने। कुछ लोग समझौतावादी दृष्टि अपनाकर जैसे-तैसे जीवन निर्वाह करने में विश्वास करते थे। वे कभी-भी पानी में रहकर मगर से बैर नहीं करना चाहते थे, किंतु कुछ लोग ऐसे थे कि लड़-भिड़कर भावी पीढ़ी को इस नारकीय जीवन से छुटकारा दिलाना चाहते थे।

कुली मजदूर जिस जमीन पर रहते थे, अथवा जो उन्होंने खरीदी थी, वह उनसे छीन ली गई थी। वे अपनी उस जमीन के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस पर और किसी का अधिकार नहीं चाहते थे। उनके लिए अहम सवाल यही था–'हमारी जमीन बंधन में पड़ी नहीं रह सकती। हमें उसे स्वतंत्र करके ही रहना है। उसकी स्वतंत्रता में ही हमारी अस्मिता है। हमारा भविष्य है, हमारी प्रतिष्ठा है।'[4] इसके लिए मजदूर अनवरत संघर्ष करते रहे। सामाजिक दृष्टि से उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। उनको पीटा जाता था, प्रताड़ित किया जाता था और जेल में भी बंद कर दिया जाता था। भारतीय नारी को उन्होंने उपभोग की वस्तु बना दिया था–'नंदू को दो दिन कटघरे में

 ISSN 0975-735X

बंद रखने के बाद छोड़ा गया था। पीठ पर कमीज न होने के कारण वह कोड़े के निशानों के साथ वहाँ से लौटा था। अपने साथ नीले रंग का लहँगा और सफेद चोली ले गया था। किसी ने उससे नहीं पूछा कि इन कपड़ों का क्या होगा। बस्ती वालों को उस तरह के कपड़े देखने के अवसर पहले भी कई बार मिल चुके थे। जुवेदा, भगवतीयाँ, तौगेवी–ये लड़कियाँ उन कीमती कपड़ों को पहनकर साहब की कोठी पर जा चुकी थीं। लछमन सिंह चाहकर भी उन लड़कियों को नहीं रोक सका था।...आज रात नंदू की लड़की के जाने की बारी थी।'[5]

भारतीय मजदूर भी अब अपना काम निकालने के लिए अपनी पत्नी को मालिकों के समक्ष प्रस्तुत करने में नहीं हिचकिचाते थे। उनके मूल्य व मान्यताएँ बदल गई थीं। वे मानते थे कि शारीरिक पवित्रता कुछ नहीं होती। वह तो मूल्यहीन है। यदि शरीर की कीमत पर कार्य पूर्ण हो रहा हो तो उसे करा लेना चाहिए। मालिक मजदूरों की औरतों का उपभोग करना चाहते थे। वे स्पष्ट रूप से उन्हें अपनी स्त्रियों को भेजने की बात कहते थे। मजदूर दाऊद बड़ी असहाय अवस्था में अपनी पत्नी से कहता है–'मौके की बात कर रहा हूँ, मौका अच्छा है। एक बहुत बड़े उद्देश्य के लिए थोड़ी देर आँखें मूँद लेने से क्या अनर्थ हो जाएगा? तुम औरत हो जीनत, औरत की देह रोटी का कोई टुकड़ा नहीं होता, जो किसी के मुँह लगने से झूठी हो जाए। तुम झूठी नहीं होओगी, पर याद रहे अपने को उसके हवाले करने से पहले सौदा हो जाना चाहिए। तुम पहले उसे राजी कर लेना, फिर अपने को समर्पित करना।'[6]

इतनी शारीरिक व मानसिक प्रताड़नाओं को सहन करने के बाद दाऊद और जीनत किसन के कहने से मालिकों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए तैयार हो जाते हैं। धीरे-धीरे सारी बस्ती के मजदूर संगठित होते हैं और एक साथ एक ही दिन हड़ताल करते हैं। मालिक उनकी बातों को सुनते हैं। मजदूरे सात माँगें प्रस्तुत करते हैं, जिनमें उन्होंने आने-जाने की स्वतंत्रता, बैठक लगाने की स्वतंत्रता, पूजा करने की स्वतंत्रता तथा बहू-बेटियों के साथ अत्याचार न करने की माँग की। इसी के परिणामस्वरूप मजदूरों के जीवन की डगर कुछ आसान होने लगी।

जातिगत संघर्ष

सामाजिक दृष्टि से जाति के आधार पर ऊँच-नीच का भेदभाव वहाँ भी उपस्थित है। खान-पान में उच्च जाति का व्यक्ति निम्न जाति के यहाँ भोजन करने में हीनता का अनुभव करता था। अनत जी के 'कुहासे का दायरा' नामक उपन्यास में रूपलाल' भगत के यहाँ से धनेश चाय पीकर अपने घर पर अपने बाप से जब इस बात को बताता है, तो उसका बापू उस पर बरस पड़ता है–'जिसके यहाँ गाँव का चमार पानी नहीं पीता, उसके यहाँ बाबूजी होकर तूने चाय पी ली। कल आकर कहना कि सूअर का गोश्त चखकर आ रहे हो।'[7]

जो भी हो किंतु मॉरीशस में जाति का बखेड़ा समाज में तीव्रता से फैल रहा था–'गाँव भर में कई चमारों की अपनी अलग बैठक थी, तो वहीं दुसादों की अलग। वैश्य लोग वैश्य के साथ उठते-बैठते थे। तो अपने को बाबाजी बताने वाले भी वही करते थे।'[8]

इसी प्रकार अन्य जातियाँ भी भेदभाव करती थीं। सांप्रदायिकता की भावना तो गोरे मालिकों की देन है, जिसके बल पर वे अपना उल्लू सीधा किया करते थे। यही भावना आज की मॉरीशस समाज में फैल रही थी। जाति-पाँति में ऊँच-नीच की भावना विवाह के क्षेत्र में अधिक देखी जाती है। बहुत से विवाह तो इसीलिए नहीं हो पाते, क्योंकि उनके परिवार को वह

शादी मंजूर नहीं हो पाती। अनत के साहित्य में इस जातीय कट्टरता के शिकार अनेक पात्र हुए हैं, जिनका लेखक ने यथार्थ चित्रण किया है। 'और नदी बहती रही' उपन्यास में एक बाप अपने बेटे विसुन से कहता है–'क्या मेरी जाति की सभी लड़कियाँ मर गयी हैं, जो तुम्हें गनेशी की बेटी के सिवाय कुछ नहीं सूझता है।'[9]

स्पष्ट है किसी गैरहिंदू या गैरजाति से शादी करना संभव नहीं, तो कठिन अवश्य था। 'आंदोलन' उपन्यास में एक उदाहरण द्रष्टव्य है–'मगर इसका यह मतलब नहीं कि मैं अपनी जाति की लड़कियों की शादियाँ दूसरी जाति वालों के बीच करता फिरूँ।'[10] वस्तुत: एक पिता अपने पुत्र का विवाह भिन्न जाति में नहीं करना चाहता, क्योंकि जातिगत रूढ़ियाँ उसे इस कृत्य से रोक रही हैं।

'तीसरे किनारे' उपन्यास को राकेश भी मौसी की शादी गैरजाति के कारण उस लड़के से नहीं करता, जिससे वह प्रेम करती थी। इसी प्रकार 'तपती दोपहरी' उपन्यास में उच्च जाति की कन्या रजनी की शादी दयानंद (निम्न वर्ग) से वर्गवैषम्य के कारण नहीं हो पाती। इस संदर्भ में दयानंद ने रजनी के पिता को पत्र में लिखा–'अपने घर पर तुमने मेरा अपमान सिर्फ इसलिए किया, क्योंकि मैं छोटी जाति का लड़का हूँ और तुम्हारी बेटी बड़ी जाति की है।'[11]

इस प्रकार आक्रोश भी समाज को रूढ़ियों के जलाल से मुक्त नहीं करा पाता। इसी प्रकार 'चौथा प्राणी' उपन्यास में भी गोरे की लड़की जानीन और मजदूरों का पक्षधर अमित काले-गोरे रंगभेद के कारण प्रणय-सूत्र में नहीं बँध सके। एक साक्षात्कार में 'अनत' कहते हैं, 'जानीन और अमित इस देश में कल भी थे, आज भी हैं और कल भी रहेंगे। उन्हीं के साथ वह समाज भी है, जो अपने को विशेष बताता चला आ रहा है। जब तक यह विशेष शब्द बना रहता है, तब तक यह विवाह उतना आसान नहीं है। इस विशेष शब्द की वजह से ही आज आदमी और आदमी के बीच मात्र रंग का भेद नहीं बल्कि और भी कई भेद आदमी-को-आदमी से अलगाए चले जा रहे हैं।'[12]

अनत के उपन्यासों के कुछ उपन्यासों में जातिगत भेदभाव के बावजूद कतिपय प्रेमी-प्रेमिकाओं का विवाह हो गया। 'और नदी बहती रही' में धनेश्वरी-राजेश 'तीसरे किनारे पर' में राकेश-अरुणा 'एक बीघा प्यार' में सुरेन-विमला आदि का विवाह जातीय भेदभाव के होते हुए भी संबल हुआ। समग्रत: अनत के साहित्य में जातिगत एवं नस्लीय भेदभाव सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से देखने को मिलता है, जिससे पाठकों को सहज ही मॉरीशस में बसे भारतीय समाज का परिज्ञान हो जाता है।

शोषक एवं शोषित

मार्क्सवाद के अनुसार–जिस वर्ग का शोषण किया जाता है उसे शोषित व जो वर्ग शोषण करता है उसे शोषक कहते हैं। मॉरीशस के समाज में शोषकवर्ग के अंतर्गत उच्चवर्ग (मालिक) व शोषितवर्ग वे अंतर्गत (मजदूरों) का चित्रण किया गया है।

मॉरीशस समाज में ज्यादातर शोषक मालिकों का दबदबा रहता है। ये लोग किसान-मजदूरों (शोषितों) के साथ मानवीय व्यवहार नहीं करते। ये लोग स्वेच्छाचारी और विलासी हैं एवं गरीबों का शोषण करके अपना घर भरते हैं। मालिक लोग मजदूरों से काम अधिक चाहते हैं, किंतु दाम

कम देना चाहते हैं। काम कराते समय अभद्र भाषा का प्रयोग करते हैं। 'लालपसीना' उपन्यास में काम करते हुए एक मजदूर को जमींदार गाली दे रहा है–'अरे सात छोटे सूअरों के बाप औरत से मजा लूट-लाटकर बच्चे पैदा कराना तो तुम्हें खूब आता है, पर खेत में जाँगर के चोर निकले।'[13]

इस प्रकार यहाँ जमींदार द्वारा मजदूरों के साथ बदसलूकी का चित्रण प्रस्तुत है। जमींदार मजदूरों को अपनी जागीर समझते हैं और मनमाने ढंग से दुर्व्यवहार करते हैं। मजदूरों को पकड़कर बाँसों से पीटना और उनके ऊपर कोड़ों की बौछार करना मालिकों के लिए सामान्य सी बात थी। भूखे पेट मजदूरों को काम के लिए बाध्य करना नृशंस्ता है। मजदूर यह सब बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हुए वे कहते हैं–'सरदार मुँह सँभालकर बात करो। इस समय हम ईश्वर के खेत में नहीं हैं।'[14]

अभिमन्यु अनत के इसी उपन्यास में मालिक और मजदूरों के बीच अमीरी और गरीबी का अंतर किसन को सोचने पर मजबूर कर देता है–'कि शायद कभी हारती और तारों के बीच के फासले को कम कर दिया जाए, परंतु मजदूर और मालिक के बीच का अंतर भी कम हो जाएगा, ऐसी संभावना बहुत कम है।'[15] 'एक बीघा प्यार' उपन्यास का पात्र कृषक सोभ सामाजिक वैषम्य को मिटाने के लिए कटिबद्ध है। वह समाज में सरदार जोगिया जैसे तथाकथित अत्याचारी जमींदारों के विरुद्ध आवाज उठाता रहता है।

वस्तुत: सामाजिक वर्ग-वैषम्य को मिटाने के लिए अनत का साहित्य सतत प्रयत्नशील एवं संघर्षरत है। उनकी प्रत्येक कृति में लगभग इस भावना को उभारा गया है। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में मॉरीशस के मछुआरों का पेशा मोटे व्यापारियों द्वारा उनका शोषण तथा उससे जनित आर्थिक विपन्नता से मुक्ति पाने का सक्रिय उद्योग दर्शाया है। जहाँ मजदूर लोग मछलियों का व्यापार करते हैं यदि उसमें किसी दिन मछलियाँ नहीं पकड़ पाते हैं तो दूसरे दिन उन्हें दुगनी मेहनत करनी पड़ जाती है। स्वयं अभिमन्यु अनत लिखते हैं कि, 'उन दिनों गाँवों में कोई बीस नावें थीं, जिनमें पंद्रह नावें धनदेव साब की थीं। वह उनको मछुओं को इस शर्त पर दिए हुए था कि वे अपने जाव, झाबे या काँटे में फँसी मछलियों का आधा भाग रोज उसको दिया करेंगे। जिस दिन मछुआ नाव के साथ समंदर में नहीं जाता था, जिस दिन उसे कम मछलियाँ मिलती थीं, उस दिन का हिस्सा दूसरे दिन दो गुना हो जाता था। जिन दिनों लखन सप्ताह भर के लिए बीमार रहा, उसके बाद के पूरे सप्ताह की सारी मछलियाँ उसे धनदेव साव द्वारा तैनात आदमी की टोकरी में डालनी पड़ी थीं।'[16]

मालिकों से मजदूरों के दबने का मुख्य कारण उनकी आर्थिक दुरावस्था रही है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे मालिकों से कर्ज लेते हैं। इस कर्ज को या तो वे स्वतंत्र रूप से खेती करके चुकाते हैं या जीवन-भर उनके यहाँ बंधुआ मजदूर बने रहते हैं।

इसी प्रकार इसी उपन्यास में पुरुष पात्र लखन पर भी लाखों का कर्जा है, जो उनके पिता ने अपने समय में लिया था। उस कर्ज को पिता अपने जीवन में नहीं चुका पाता है। इसलिए अब उस कर्जे को चुकाने की जिम्मेदारी पुत्र पर आ जाती है जिसके लिए वह रात-दिन प्रयासरत रहता है–'पाँच बीघा जमीन खरीदकर मेरे बाप ने सिर पर चौदह सौ रुपए के कर्ज का बोझ रख लिया था। उन दिनों आस-पास के कई गन्ने के कारखानों और कोठियों में मजदूरों के साथ जुल्म बढ़ चले थे। मजदूरों को हड़ताल करनी पड़ी थी, जिसके कारण कई कोठियों के मजदूरों को

चुन- चुनकर हटाया जाने लगा था। मेरे बाप ने हड़ताल में अगवानी की थी, इसलिए उसे तो सबसे पहले हटाया गया।'[17]

अपना रोष प्रदर्षित करने के लिए जमींदार बार-बार कर्जदारों को परेशान भी करते रहते हैं, जिसके कारण किसान मजदूरों का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है और वे निरंतर चिंतित रहते हैं।

इस प्रकार समाज के लोगों को वर्ग-भिन्नता के कारण आर्थिक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप समाज को दो भिन्न वर्गों में बाँटा। कई बार देखा गया है, इसी भिन्नता के कारण एक वर्ग तो अपना भरण-पोषण आसानी से कर लेता है। वहीं दूसरा वर्ग इससे वंचित रह जाता है। यही स्थिति निम्न और उच्चवर्ग को जन्म देती है।

नई-पुरानी पीढ़ी में संघर्ष

समाज में नई-पीढ़ी एवं पुरानी-पीढ़ी के विचारों में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग रूढ़िवादिता का परित्याग कर नवीनता के प्रति उन्मुख होना चाहते हैं, तो कुछ लोग लकीर के फकीर ही बने रहने में संतुष्ट रहते हैं। अनत जी की कृतियों में बड़ी गंभीरता से दोनों के पक्ष पर विचार किया गया है। 'एक बीघा प्यार' का नायक सोभ नई-पीढ़ी का है। उसके विचार क्रांतिकारी हैं। वह पुरानी पीढ़ी की, 'सड़ी कड़ियों को तोड़-फोड़कर हटा देता है और नई कड़ियों से जीवन की श्रृंखला को शक्तिशाली बनाता है।'[18] नई-पीढ़ी एवं पुरानी-पीढ़ी के बीच अब धीरे-धीरे इकाई बढ़ती जा रही है। शायद युवा आंदोलनकर्ता नई पीढ़ी के समर्थक हैं। हालाँकि वह पुरानी पीढ़ी की अच्छाइयों को नकारना नहीं चाहते, अच्छी परंपराओं को तोड़ना नहीं चाहते तथापि वे समता, न्याय एवं स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं-'हर पीढ़ी समय के साथ पुरानी होती जाती है। पुरानी होने से पहले वह अगर उस गहन अँधेरे के बीच अपना रास्ता ढूँढ निकाले तब तो उस आनेवाली दूसरी पीढ़ी की मंजिल भी साफ दिखाई पड़ने लगेगी अन्यथा उसकी दशा हमारी जैसी हो जाती है। हम न देख पाते हैं, न बता पाते हैं।'[19]

'अपनी-अपनी सीमा' उपन्यास में पुरानी पीढ़ी की प्रतिनिधि माँ अति भौतिकता के मोह से ग्रस्त नहीं है। उसे पति के द्वारा बनाए सिद्धांत ही प्रिय हैं, रुपए पैसे का लालच नहीं है। वह चाहती है कि उसका पुत्र आलोक भी पति के द्वारा बनाई गई परंपराओं और सिद्धांतों को अपनाए, पर आलोक ऐसा नहीं करना चाहता। माँ का मानना है कि हिंदू विवाह के उपरांत लड़की की भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसके ससुराल वालों की होती है। किसी भी कार्य के लिए लड़की के मायके से पैसा मँगवाना अनैतिक व मूल्यविरुद्ध है। विवाह के उपरांत लड़की वालों पर किसी भी प्रकार पैसे की देनदारी नहीं बनती। पर उसका पुत्र आलोक लालची किस्म का व्यक्ति है। वह अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए पत्नी सीमा से मायके से दो हजार रुपए लाने के लिए कहता है। यहीं पर पुरानी-पीढ़ी व नई-पीढ़ी का वैचारिक संघर्ष दिखाई देता है। सिद्धांतवादी पुरानी पीढ़ी की प्रतिनिधि माँ उसके इस कार्य का विरोध करती है-'मैं आज भी इस घर में जीवित हूँ, मेरी कोई राय चाहिए या इसके लिए तुम बड़े हो चुके हो। खुद तय कर लेना लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनके लिए मुझे तुम्हारे पिता के उसूलों का ख्याल रखना पड़ता है। मेरे जीते जी, कम-से-कम, तुम उन सिद्धांतों को नहीं तोड़ सकते।'[20]

नई पीढ़ी को पैसे के मोह में पड़कर पारंपरिक मूल्यों को तोड़ते हुए विवाहित पत्नी के

 ISSN 0975-735X

मायके से पैसे की आकांक्षा रखना या उससे मँगवाना शोभा नहीं देता। उसका पति धन-लोभ के वशीभूत होकर नया कार्य आरंभ करने के लिए स्वयं पैसे एकत्रित नहीं करता बल्कि पत्नी के घर से मँगवाने की आकांक्षा रखता है। यह बात उसकी माँ को ठीक नहीं लगती। वह चाहती है कि बेटे को अपने बलबूते पर ही कार्य करना चाहिए। पिता के तय किए हुए मूल्यों और नैतिकता की दुहाई देकर वह अपने पुत्र को इस कार्य को करने से रोकती है और स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। इसी प्रकार का नई-पुरानी पीढ़ी का संघर्ष हमें 'तीसरे किनारे', 'मेरा निर्णय', 'पर पगडंडी नहीं मरती' आदि उपन्यासों में देखने को मिलता है।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि नई और पुरानी-पीढ़ी की सोच में बदलाव आ रहा है। पुरानी पीढ़ी मूल्यों और नैतिकता पर विशेष ध्यान देती थी, वहीं नयी पीढ़ी भौतिकता के सामने नैतिक मूल्यों की बलि चढ़ा रही है।

नशे से युक्त जन जीवन

मॉरीशस समाज नशे को भी अपने जीवन का एक अहम हिस्सा मानते हैं। हर खुशी के मौके पर नशे के माध्यम से ही अपनी खुशी व्यक्त करते हैं। कुछ लोग दैनिक कार्यों को करते हुए अपनी थकान को मिटाने के लिए नशे का सेवन करते हैं। 'चौथा प्राणी' उपन्यास में 'विनय के सभी दोस्त स्वामी जी के साथ समुद्र-तट पर हँसी-मजाक के साथ बीयर की बोतलें खाली कर रहे थे।'[21] जब माधव वीणा को अपने बाहुपाश में लेने लगता है, तब वीणा कहती है–'मुझे डर लगता है। पर माधव बोला, मुझे नहीं। जानती हो कल यंग फार्मेज् क्लब की मीटिंग के सभी सदस्यों के सामने ह्विस्की के गिलास रखे गए थे।'[22]

'घुड़दौड़ में हारने के बाद विनय, सीमा आदि दोस्तों ने पहले बीयर, फिर बीयर और शराब मिलाकर पी।'[23] 'महावीर महतो अब भी गाँजे की खुमारी में आम के पेड़ के नीचे बैठा चौपाई गुनगुना रहा था।'[24]

समाज के उच्चवर्ग की महिलाएँ भी नशे के सेवन को शान समझती हैं और रात-रात तक क्लबों में पार्टियाँ करती हैं। 'अपनी ही तलाश' उपन्यास में बाना उच्चवर्ग की महिला है, जो रात की पार्टी के दौरान शराब का सेवन करती है। 'बाना बीयर से दौर चलाया था। फिर बीयर से रम. ..रम से ह्वाइट डायमंड और आखिरी दो गिलास जिन के थे। इसके बाद भी अगर कुछ हो तो पता नहीं।'[25] 'अपनी अपनी सीमा' उपन्यास में भी ग्रामीण लोग हर अवसर पर जश्न मनाने के लिए शराबखाने तक पहुँच जाते हैं। 'रविवार को तो समंदर से भी अंगूरी शराब की गंध आने लगती है।'[26] पुरुष पात्र आलोक नशे का आदी है जो प्रतिदिन काम से लौटते वक्त नशे में बेसुध होकर आता है, जिसे अपने कपड़े समान तक का होश नहीं रहता है। नशे में बेसुध आलोक जब गिरते-गिरते घर लौटा था, उस समय वह एक ही रट लिए हुआ–'कोई नहीं रोक सका मुझे पीने से।'[27]

वस्तुतः यह सत्य प्रतीत होता है कि आज वर्तमान समाज पूरी तरह से नशे का सेवन करना शान समझता है, और हर मौके को जश्न मनाकर, पर शराब का सेवन कर अपनी खुशी व गम को व्यक्त करता है। वहीं दूसरी ओर रंगभेद से होने वाले दुष्परिणामों को अभिमन्यु अनत ने अपने विविध उपन्यासों में रूपायित किया है। रंगभेद से उत्पन्न यह दुष्परिणाम कहीं पिता-पुत्री के संबंध को भी झुठला देता है तो कहीं काले रंग की स्त्रियों को गोरे पुरुष वासना की पूर्ति का साधन बनाकर छोड़ देते हैं। वासना की पूर्ति के समय गोरा पुरुष स्त्री-रंग को नहीं देखता

बल्कि उसके शरीर को देखता है। वहीं समाज में दूसरी ओर काले रंग वालों के द्वारा वे सभी कार्य नहीं किए जा सकते जो गोरे रंग वाले करते हैं। परिणामत: गोरा रंग और काला रंग समाज में एक बहुत बड़ा भेद खड़ा कर देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनत के उपन्यासों में तद्युगीन समाज, नानाविध रूपों में अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। जीवन के सभी रंग, आपके उपन्यासों में अपनी सुगंध बिखेरते हैं। आपके उपन्यासों के द्वारा मॉरीशस में निवास करनेवाले गिरमिटिए मजदूरों के जनजीवन और संस्कृति को हम नजदीक से जान पाते हैं।

संदर्भ

1. अभिमन्यु अनत मुड़िया पहाड़ बोल उठा, पृ॰ 6
2. अभिमन्यु अनत, जम गया सूरज, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, 1973, पृ॰ 26
3. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ॰ 226
4. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 243
5. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 121-122
6. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 117
7. अभिमन्यु अनत, कुहासे का दायरा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1978, पृ॰ 39
8. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 82।
9. अभिमन्यु अनत, और नदी बहती रही, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1970, पृ॰ 36
10. अभिमन्यु अनत, आंदोलन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1971, पृ॰ 36
11. अभिमन्यु अनत, तपती दोपहरी, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1977, पृ॰ 136।
12. अभिमन्यु अनत : एक बातचीत, डॉ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 93
13. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 59
14. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 61
15. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 126-127।
16. अभिमन्यु अनत, लहरों की बेटी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 1995, पृ॰ 8
17. अभिमन्यु अनत, लहरों की बेटी, पृ॰ 25
18. अभिमन्यु अनत, एक बीघा प्यार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972, पृ॰ 38
19. अभिमन्यु अनत, लाल पसीना, पृ॰ 106
20. अभिमन्यु अनत, अपनी-अपनी सीमा, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली 1983, पृ॰ 103
21. अभिमन्यु अनत, चौथा प्राणी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ॰ 120
22. अभिमन्यु अनत, चौथा प्राणी, पृ॰ 77
23. अभिमन्यु अनत, चौथा प्राणी, पृ॰ 111
24. अभिमन्यु अनत, चौथा प्राणी, पृ॰ 30
25. अभिमन्यु अनत, अपनी ही तलाश, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली 1981, पृ॰ 77
26. अभिमन्यु अनत, अपनी-अपनी सीमा, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ॰ 77
27. अभिमन्यु अनत, अपनी-अपनी सीमा, पृ॰ 100

ए-14, **स्वास्तिक विला, इंद्रपुरी**
न्यू आगरा, आगरा (उ॰प्र॰)
मो॰ 9410005843

ISSN 0975-735X

सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी

डॉ॰ रणधीर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग,
दयालसिंह पी॰जी॰ कॉलेज, करनाल।

आज सारा विश्व एक मौलिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है और सूचना प्रौद्योगिकी की गूँज हर तरफ सुनाई पड़ रही है। खनिज रसायनों औद्योगिक क्रांति की आधारशिला वाली अर्थव्यवस्था से आज पूरी दुनिया एक ऐसी अभिनव अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ रही है, जिसकी बुनियाद दूरसंचार-व्यवस्था और जनसंचार-माध्यमों पर टिकी हुई है।[1] विद्वान इसे ही सूचना प्रौद्योगिकी के नाम से अभिहित करते हैं। इस प्रौद्योगिकी की आधारशिला मुख्यत: कंप्यूटर पर रखी गई है। कंप्यूटर के माध्यम से सूचनाओं का विश्वसनीय आदान-प्रदान अपनी चरम सीमा पर है।

मानव-जीवन का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिस पर सूचना-प्रौद्योगिकी का प्रभाव न पड़ा हो। 20वीं सदी के उत्तरार्ध भाग में मानव-समाज में प्रौद्योगिकी ने प्रवेश किया, जिसने रातों-रात आँधी की तरह मानव-समाज के निजी, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन पर अपना प्रभाव जमा लिया। औद्योगिक क्रांति को जनमानस तक पहुँचने में लंबा समय लगा था, पर कंप्यूटर और सूचना-प्रौद्योगिकी को आम जनमानस तक पहुँचने में केवल आधा दशक लगा।[2] कल तक जो समाज औद्योगिक समाज था, वही आज सूचना समाज बन चुका है। यह कहा भी जाता है कि सूचना एक शक्ति है और जिसके पास नई और अधिक सूचनाएँ हैं, वही शक्तिशाली भी है। कंप्यूटर-सूचना प्रौद्योगिकी अपने आपमें उल्लेखनीय उपलब्धि है, जिसमें अब तक के उपलब्ध सभी प्रकार के प्रौद्योगिकीय ज्ञान का वैश्विक स्तर पर विविध माध्यमों से तीव्र गति से पारस्परिक आदान-प्रदान संभव हुआ है। इससे ज्ञान का प्रसार अत्यंत व्यापक हो गया है। उल्लेखनीय है कि अभियांत्रिकी की वह प्रक्रिया, जिसके माध्यम से सूचना-प्रणाली की अभिकल्पना, विकास, जाँच-परख और रख-रखाव किया जाता है तथा जिसके माध्यम से वैश्विक आदान-प्रदान तीव्रगति से संभव हो सका है, उसे ही सूचना-प्रौद्योगिकी कहते हैं।[3] सूचना-प्रौद्योगिकी कंप्यूटर, संचार, इलैक्ट्रोनिक तथा कथ्य प्रौद्योगिकी का मिला-जुला रूप है, जिसमें सूचना का संचार तथा सूचना का आदान-प्रदान तेज गति से किसी भी स्थान पर किसी भी समय में विभिन्न तरह के साधनों तथा संसाधनों के माध्यमों से सफलतापूर्वक किया जाता है। सूचना के विविध रूप, अक्षर, ध्वनि चित्र, मल्टीमीडिया के माध्यम से इकट्ठे किए जाते हैं। उन्हें प्रदर्शित तथा संचारित अपनी सुविधा

के अनुसार किया जाता है। सूचना के सही संचार से किसी भी देश के व्यापार, उद्योग तथा अनुसंधान की नई दिशाओं का विकास होता है और इसी पर ही उस देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रगति निर्भर करती है। इस प्रौद्योगिकी से पूँजी बाजार, संचार व्यवस्था, व्यापार, उत्पादन सेवाएँ, शिक्षा, संस्कृति, मनोरंजन, अनुसंधान, चिकित्सा, खेती-बाड़ी, बैंकिंग व्यवस्था, राष्ट्रीय रक्षा और भूमंडलीय सुरक्षा मानव से जुड़े सभी क्षेत्रों में आमूलचूल परिवर्तन आ रहा है। आज सूचना प्रौद्योगिकी अपने आपमें एक बहुत ही विशाल उद्योग का रूप धारण कर चुकी है, जिसमें करोड़ों लोगों को व्यावसाय और रोजगार भी प्राप्त हुआ है।[4]

सूचना प्रौद्योगिकी का सबसे बड़ा बाजार अमेरिका है, उसके बाद यूरोप और जापान, कोरिया, हाँगकाँग, सिंगापुर, चीन और अब भारत भी तेज रफ्तार के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आरंभ में विविधताओं और बहुभाषाओं के कारण भारत के नागरिकों ने यह धारणा बना ली थी कि कंप्यूटर आदि सूचना-प्रौद्योगिकी की भाषा केवल और केवल अँग्रेज़ी है, परंतु हमारे देश के बुद्धिजीवियों ने इसे चुनौती स्वीकार करते हुए यह सिद्ध कर दिखाया कि कंप्यूटर की भाषा केवल अँग्रेज़ी भाषा नहीं हो सकती। क्योंकि कंप्यूटर एक ऐसा यंत्र है, जो एक कृत्रिम मस्तिष्क की तरह काम करता है और उचित 'कमांड' देने पर आप किसी भी भाषा में काम कर सकते हैं। अनेक भाषाओं, बोलियों और उपबोलियों वाले इस भारतवर्ष ने अपनी हिम्मत से भारतीय भाषा परिवार की मुखिया हिंदी ही नहीं बल्कि भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं को भी कंप्यूटर पर सफलतापूर्वक प्रतिष्ठित कर दिखाया है।

विविधताओं में एकता वाले भारत देश की राष्ट्रभाषा हिंदी है, जिसने पूरे देश को एक सूत्र में पिरो रखा है। यह देश में सर्वाधिक बोली जाती है।[5] इसके बोलने वालों की संख्या 70-75 प्रतिशत है और इसे समझने वालों की संख्या 80-85 प्रतिशत है।[6] हिंदी सशक्त, दक्ष, समर्थ और वैज्ञानिक भाषा है, जो देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि पर आधारित है। भारतीय जनगणना रिपोर्ट में कहा गया है कि हिंदी के पास ऐसा शब्दकोश और अभिव्यक्ति की ऐसी सामर्थ्य है, जो अँग्रेज़ी से किसी-भी प्रकार कम नहीं है। हिंदी की शब्द-संपदा लगभग सात लाख शब्दों की है और अँग्रेजी की तीन लाख।[7] भाषाई दृष्टि से विश्व में चीनी और अँग्रेज़ी के मुकाबले हिंदी बोलने-समझने वालों की संख्या ज्यादा है। अपनी जीवनी शक्ति और उदारता के कारण आज हिंदी अपनी भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर 'वसुधैव कुटुंबकम्' का संदेश दे रही है।

गूगल ने इंटरनेट पर अधिक-से-अधिक सामग्री उपलब्ध कराने के लिए हिंदी में भी वॉइस सर्च की सुविधा उपलब्ध कराने की पहल करके हिंदी के विस्तार को एक नया आयाम दे दिया है। इस पहल से इंटरनेट का दायरा तो बढ़ेगा ही, हिंदी का आकाश और अधिक विस्तृत होगा। आज सूचना प्रौद्योगिकी की इस विश्वक्रांति में हिंदी पूरी शक्ति और वैज्ञानिकता के साथ विश्वमंच पर प्रतिष्ठित हो रही है। पहले हिंदी फिल्में/धारावाहिक इस दिशा में कार्य करते थे- आज रेडियो, दूरदर्शन, कंप्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, फेसबुक, वाट्सअप आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत एक बड़े बाजार के रूप में उभर रहा है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी ही भारत की प्रतिनिधि भाषा है। कंप्यूटर सूचना-प्रौद्योगिकी का महत्त्वपूर्ण उपकरण है। अत: हिंदीभाषा का कंप्यूटर में अनुप्रयोग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए व्यावसायिक

 ISSN 0975-735X

रूप से आवश्यक हो गया है। जिस्ट कार्ड, सुलिपि, आकृति, शब्दरत्न, लीप ऑफिस, अक्षर फार विंडोज, सुविंडोज आदि अनेक प्रकार के हिंदी सॉफ्टवेयर बाजार में आ गए हैं। माइक्रोसॉफ्ट जैसी विश्वविख्यात बहुराष्ट्रीय कंपनी कंप्यूटर में हिंदी के उपयोग के लिए विंडोज का हिंदी सॉफटवेयर बाजार में लाई है। वर्तमान समय सूचना प्रौद्योगिकी और भाषा प्रौद्योगिकी का है, जिसके परिदृश्य में मोबाइल भी एक अपरिहार्य उपकरण हो गया है। इसमें भी हिंदी का अनुप्रयोग मैसेजिंग एवं मोबाइल शब्दकोश के रूप में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को व्यावसायिक दृष्टि से तो आकर्षित कर ही रहा है, साथ-ही-साथ हिंदीभाषी आम जनता भी इसके लाभों से अछूती नहीं है। मोबाइल संबंधित हिंदी के भाषिक अनुप्रयोग में मोटोरोला कंपनी ने हिंदी का 'पाठ से वाक्' (Text to speech) संबंधित सॉफटवेयर के विकास का कार्य भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर की देखरेख में कराया था। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषा संस्थान (CIIL Mysore), सी-डैक (नोएडा, पुणे) आई॰आई॰टी॰ कानपुर, आई॰आई॰टी॰ मुंबई, आई॰आई॰आई॰टी॰ हैदराबाद, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, जे॰एन॰यू॰ दिल्ली और महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा आदि संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अपनी भाषा होने के कारण हिंदी में काम करना सहज है, सरल है। इससे साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सकता है, शिकायत दर्ज करा सकता है, सुझाव भेज सकता है। सिर्फ हिंदी ही नहीं, बल्कि अनेक भारतीय भाषाओं के साथ अब अनुवाद-कार्य भी कंप्यूटर पर होने लगा है–हिंदीभाषा सदर्भित कंप्यूटर अनुप्रयोग के क्षेत्र में यंत्रानुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भारत में हिंदी को ध्यान में रखकर न सिर्फ सरकारी क्षेत्र बल्कि निजी संस्थाएँ भी इस हेतु तेजी से कार्यशील हैं और इसमें सफलता मिलनी भी शुरू हो गई है। अपनी संकल्पना के अनुरूप यंत्रानुवाद हिंदी में निहित ज्ञान को परस्पर बड़ी सहजता से सभी भाषाओं में उपलब्ध कराएगा तथा वैश्विक स्तर पर प्राप्य भाषा के ज्ञान को हिंदी में उपलब्ध कराएगा। इसका सीधा लाभ यह होगा कि ज्ञान के वैश्विक प्रसार में भाषा कोई समस्या नहीं रहेगी। भारत ने अपनी बहुभाषिक सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इस दिशा में कार्य शुरू कर दिया है। इस दिशा में आंग्ला/अनुभारती (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर) शक्ति (अंतर्राष्ट्रीय सूचना, प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद), मात्र (उच्च प्रगतिशील संगणन केंद्र, मुंबई), मंत्रराज भाषा ('सी-डैक' पुणे), अनुवादक (साफ्टेक नई दिल्ली), मैट (जाधवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता), सार्वभाषिक संपर्क भाषा (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई), अनुसारक (अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद) आदि मशीन अनुवाद यंत्र उपलब्ध हैं।[8]

हिंदीभाषा के लिपि-शिक्षण, वाक्य-विन्यास, उच्चारण-शिक्षण आदि में कंप्यूटर का अनुप्रयोग भाषा-प्रयोगशालाओं में देखा जा सकता है। भाषा-शिक्षण आधारित कई सॉफ्टवेयर आनलाइन उपलब्ध हैं। सी-डैक द्वारा विकसित लीला प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ का पैकेज हिंदी शिक्षण के लिए सराहनीय प्रयास है। माइक्रोसाफ्ट के माध्यम से कंप्यूटर पर काबिज अँग्रेज़ी के वर्चस्व को कम करने के लिए 'शब्दिका', 'आई॰एस॰एम॰', 'बाराह', 'इंडिका', 'ऐस्ट्रिवास', 'सुवर्ण' तथा 'सुलेटर' आदि नामक पैकेज हिंदी सहित द्विभाषी या बहुभाषी होने के बावजूद हिंदी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से अधिकांश 'पेजमेकर', 'एम॰एस॰ ऑफिस', 'कोरल ड्रा' जैसे पैकेजों पर सहज स्वीकार्य हैं। इनके अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले फॉण्ट विकसित किए गए

हैं–इनमें माइक्रोसाफ्ट का 'मंगल' तथा अन्य यूनिकोड फॉण्ट हैं। साथ ही हिंदी के लिए ट्रू-टोइप (True Type) फॉण्ट भी व्यापक पैमाने पर विकसित किए गए हैं–जिनमें शुषा, श्रीलिपि, अजय, कृतीदेव, वंदना, एम॰जी॰एच॰वी॰ आदि हैं, लेकिन आज यूनिकोड यूनिवर्सल फॉण्ट हो गया है, जो हर सॉफ्टवेयर को सपोर्ट कर रहा है।[9]

आज कंप्यूटर और मोबाइल फोन आम आदमी से जुड़कर उनकी जरूरत बन गया है। जो पहले ज्ञान-विज्ञान से जुड़ा फिर मनोरंजन से और अब प्रतिदिन के प्रत्येक कार्य से जुड़कर लोगों की जीवन-शैली में परिवर्तन ला रहा है। ई-कामर्स, ई-मेल, ई-मेडिसन, ऑन लाइन शिक्षा यानि ई-एजुकेशन, ई-बैंकिंग, ई-केश, ई-शॉपिंग आदि का प्रयोग लोग करने लगे हैं।

हिंदी का प्रयोग आज इंटरनेट और ई-मेल में संभव हो गया है। अनेक पोर्टल हिंदीभाषा में शुरू हो गए हैं। पोर्टल के माध्यम से देश-विदेश की खबरें, विज्ञापन, शिक्षा, बाजार की स्थिति, खेल-कूद, पर्यटन, उद्योग धंधों की सूचनाएँ, धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति-संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। प्रिंट मीडिया तथा इलैक्ट्रोनिक मीडिया के अंतर्गत समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, बैनर, पोस्टर, विजिटिंग-कार्ड, पुस्तक-लेखन, विवाह-निमंत्रण, बधाई-कार्ड, वस्तुओं की पैकिंग पर मुद्रण, स्टीकर, लेखन, विभागों, अनुभागों और संस्थानों के नामों के बोर्ड, शोध-प्रबंध, टंकण-मुद्रण आदि माध्यमों में हिंदी अपना सम्मानजनक स्थान बना चुकी है। सूचना प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते विज्ञापनों में भी हिंदी मूलभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।

सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़ी हिंदी कामकाज, खेल-जगत, शेयर मार्किट तथा कार्टून से जुड़ गई है। टेलीविजन पर अनेक चैनलों जैसे सोनी, डिस्कवरी, एनिमल वर्ल्ड आदि अँग्रेज़ी कार्यक्रम भारत में आरंभ किए थे, परंतु बाद में दर्शकों की संख्या बढ़ाने और व्यापार में ज्यादा मुनाफा पाने के लिए इन्हें हिंदीभाषा की तरफ मुड़ना पड़ा। इस तरह हिंदी साहित्य की भाषा से मुनाफे की भाषा भी बन गई। आज हिंदीप्रेमियों की माँग पर अनेक कार्यक्रम हिंदी में डब होकर प्रस्तुत होने लगे हैं। हिंदी दिन-प्रतिदिन विस्तार पा रही है। विश्व के अनेक देशों में लगभग दो करोड़ भारतीय हिंदीभाषा का प्रयोग करते हैं। विदेशों में लगभग 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है[10] वहीं इन देशों में हिंदी फिल्मी गाने और संगीत का जादू सिर चढ़कर बोलता है। दुनिया के अनेक देशों में हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी जोर पकड़ रहा है। जैसे जापान से 'सर्वोदय', चीन से 'सचित्र चीन', नार्वे से 'शांतिदूत', 'स्पाइल-दर्पण' तथा 'अप्रवासी टाइम्स', इंग्लैंड से 'पुरवाई', अमेरिका से सौरभ, विश्वा आदि उल्लेखनीय हैं, जो विदेशों में रह रहे हिंदी-प्रेमियों द्वारा संपादित होती हैं। इसी तरह हिंदी के हजारों चिट्ठे (ब्लाग) इंटरनेट पर पढ़े जा सकते हैं। संक्षिप्त संदेश सेवा (एस॰एम॰एस॰) और सचित्र बहुमाध्यम संदेश (एम॰एम॰एस॰), चटपट बातचीत या गपशप (चैटिंग) आदि में हिंदी का बढ़ता प्रयोग अब सामान्य बात है। फेस बुक, ट्विटर, लिंक्डिन जैसे सोशल मीडिया पर भी हिंदी छाई हुई है।

वैश्वीकरण के दौर में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी से हिंदी विश्वपटल पर अपनी पहचान बना चुकी है। 'डिजीटल इंडिया', 'मेक इन इंडिया' के साथ ही अब 'स्किल इंडिया' का उद्घोष भारत को संपूर्ण जगत में स्थापित करने का प्रभावी तरीका है। हमें तकनीकी शिक्षा और तकनीक के प्रति जागरूक रहते हुए ई-मेल, ई-कामर्स, ई-एजूकेशन, साइबर कैफे, ई-विजीलैंस, ई-गवर्नेंस तथा ई-कंटेंट के युग में अनेक संभावनाओं के साथ आगे बढ़ना है।

 ISSN 0975-735X

संदर्भ

1. डॉ॰ विनोदकुमार प्रसाद, भाषा और प्रौद्योगिकी, पृ॰ 113
2. डॉ॰ सुखदेवसिंह मिन्हास, वैश्वीकरण के दौर में हिंदी, पृ॰ 175
3. MacGraw Hill, Encyclopedia of Science and Technology, पृ॰ 151 खंड 9
4. डॉ. विनोदकुमार प्रसाद, भाषा और प्रौद्योगिकी, पृ॰ 115
5. भोलानाथ तिवारी/कमल सिंह, संपर्क भाषा हिंदी, पृ॰ 50
6. वही, पृ॰ 40
7. डॉ॰ सुखदेवसिंह मिन्हास, वैश्वीकरण के दौर में हिंदी, पृ॰ 177
8. (प्रधान संपादक) मनोहर पुरी, स्मारिका 10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, पृ॰ 165
9. वही, पृ॰ 167
10. (संपादक) हितेश शंकर, पांचजन्य, अंक 16, 13 सितंबर, 2015, पृ॰ 13

'बच्चों के मंचीय नाटक' में चित्रित समसामयिक समस्याएँ : एक अध्ययन

प्रो॰ गणेश दयाराम शेकोकार
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एच॰पी॰ टी॰ आर्टस् एंड आर॰ वाय॰ के॰ सायंस कॉलेज,
नासिक 422005

प्रस्तावना

प्रकृति में जन्मे विविध प्राणियों की तरह मानव के विकास के सोपान भी निश्चित हैं। मानव, शिशु अवस्था, बाल अवस्था, किशोरावस्था और युवावस्था से होते हुए बुढ़ापे की दहलीज तक अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करता है। इन विविध अवस्थाओं में बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था वह सोपान है, जिसे भावी जीवन की नींव कहा जा सकता है। इन अवस्थाओं में मानव-संतान अनुकरण द्वारा अन्यान्य बातों को सीखती है; आगे चलकर किशोरावस्था में उस पर पड़े हुए संस्कार उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। अस्तु, यह आवश्यक हो जाता है कि उसके मन-मस्तिष्क के परिष्कार के लिए इन अवस्थाओं से गुजरते हुए उस पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए।

मानव-जीवन को संस्कार संपन्न करने के लिए विविध-विधाओं तथा कलाओं की तरह साहित्य का भी योगदान होता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि साहित्य मानव-मन के संस्कार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दृश्य एवं श्रव्य कलाओं की अपेक्षा साहित्य-पठन का संबंध सीधे मानव के मस्तिष्क से होता है। विविध विषयों पर हुए अनुसंधान इस बात की पूर्ति करते हैं कि बच्चों के कोमल मन को संस्कारित करने के लिए उनके अनुकूल साहित्य का सृजन होना अत्यधिक आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति बालसाहित्य के द्वारा हो सकती है। आरंभ में बालसाहित्य की कमी तो थी ही, साथ ही उसमें स्तरीयता का भी अभाव था। प्रौढ़-साहित्य की तरह बालसाहित्य का विविध विधाओं में लेखन नहीं होता था; किंतु आज साहित्यकार इस विषय को लेकर बहुत सजग हैं। इसीलिए बालसाहित्य का सृजन विपुल मात्रा में और विविध विधाओं में हो रहा है। 'कहा जाता है कि बच्चों के लिए लिखना बड़ों के लिए लिखने की अपेक्षा अधिक कठिन है। जब तक लेखक स्वयं बच्चा बनकर उसकी अनुभूतियों से नहीं जुड़ता है, तब तक वह सार्थक और स्वस्थ बालसाहित्य नहीं लिख सकता। वस्तुतः बाल साहित्य देखने में जितना सरल और आसान लगता है, सर्जना के स्तर पर वह उतना ही कठिन है।'[1]

 ISSN 0975-735X

बालसाहित्य क्या है?

अपनी आयु के चौदह वर्ष पूर्ण होने तक हम मनुष्य की संतान को 'बच्चा' कहते हैं; और बालसाहित्य का लेखन इन्हीं बच्चों के लिए किया जाता है। 'जो साहित्य बच्चों के मन और मनोभावों को परखकर उन्हीं की भाषा में, उन्हीं के स्तर पर लिखा जाता है, वही सही अर्थों में सार्थक बालसाहित्य होता है।'[2]

बालसाहित्य का मुख्य उद्देश्य है–'बच्चों को आधुनिक जीवन और समाज से जोड़कर उन्हें एक सुयोग्य नागरिक बनाना। उन्हें यथार्थ से जोड़कर समसामयिक परिस्थितियों से अवगत कराना।'[3]

पुस्तकों के अतिरिक्त विविध माध्यमों में बच्चों का मन बहलाने और उन्हें शिक्षित करने के लिए बहुत-सी सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। स्कूल में जाने वाले बच्चे पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त ज्ञानार्जन के लिए भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़ते हैं। इन पुस्तकों से उनके सामान्य ज्ञान में वृद्धि तो होती है, किंतु उन्हें नैतिक और मूल्याधिकृत शिक्षा बालसाहित्य के द्वारा दी जा सकती है। आयु की विभिन्न अवस्थाओं में उनके शारीरिक विकास के साथ-साथ उनके मानसिक विकास पर भी ध्यान देना होता है। 'बच्चों के लिए लेखन की सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी यह है कि रचनाकार जिस विषय का चयन करे उसका सबंध सीधा बच्चों से हो।'[4]

बालसाहित्य की विविध विधाओं में बाल-नाटक एवं बाल-रंगमंच पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। 'बाल-नाटक बच्चों को एक नए ज्ञानात्मक संसार से परिचित कराते हैं। एक नया द्वार खोलकर अनुभव का नया क्षेत्र प्रदान करते हैं। रंगमंच उनकी क्रियात्मकता को मुखरता प्रदान करता है।'[5] इसीलिए इस शोध आलेख में उपजीव्य ग्रंथ के रूप में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा संपादित पुस्तक 'बच्चों के मंचीय नाटक' को लिया गया है; क्योंकि नाटक का प्रभाव दर्शक के मन पर तुरंत पड़ता है, और उसे एक ऐसी मनोदशा में ले जाता है, जिससे वह अत्यधिक भावांदोलित हो उठते।

'बच्चों के मंचीय नाटक' ग्रंथ मनोज पब्लिकेशंस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने इस संपादित ग्रंथ में सोलह बाल-नाटकों को संकलित किया है। इनकी सूची निम्नानुसार है–

1.	चुनाव का टट्टू	काका हाथरसी
2.	लाला डकारचंद	काका हाथरसी
3.	चंदन विष व्यापत नहीं	राधेश्याम 'प्रगल्भ'
4.	राह अनेक : मंजिल एक	राधेश्याम 'प्रगल्भ'
5.	शरारत का फल	भगवतीलाल व्यास
6.	आया का मुकदमा	गंगाप्रसाद माथुर
7.	घर के मालिक	शांति भटनागर
8.	सच्चा मित्र	रामनिरंजन वर्मा 'ठिमाऊ'
9.	हास्य कवि-सम्मेलन	डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
10.	भक्त प्रह्लाद	अजय प्रसून
11.	जिसका काम उसी को साजे	डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

12.	खिलाड़ीराम का मुकदमा	राजेंद्रकुमार शर्मा
13.	सेर को सवा सेर	विश्वदेव शर्मा
14.	हम एक हैं	कमलेश्वर
15.	चोंचू नवाब	के॰पी॰ सक्सेना
16.	लालटेन की वापसी	के॰पी॰ सक्सेना

उक्त सूची में दिए गए नाटक के शीर्षकों से ही ज्ञात होता है कि उनमें से अधिकतर नाटक दैनिक जीवन की घटनाओं पर तथा हमारे आस-पास के परिवेश पर आधारित हैं। 'अनुकरण बालक का स्वभाव है और नाटक भी अवस्था या स्थिति का अनुकरण है। बालकों की विविध चेष्टाओं और क्रियाओं में बस अनुकरण को सरलता से देखा जा सकता है।'[6] बच्चे इन नाटकों का मंचन देखकर शिक्षा प्राप्त करेंगे और नाटकों को पढ़कर उनके व्यवहार में परिवर्तन होगा। इतना ही नहीं, बच्चे नाटकों में चित्रित समस्याओं के प्रति भी सजग होंगे। भविष्य में इन समस्याओं की ओर देखने का वे अपना एक दृष्टिकोण निर्धारित कर सकेंगे।

बच्चों में जीवन में आनेवाली समस्याओं से लड़ने तथा उन्हें सुलझाने की क्षमता का विकास होना चाहिए। इसीलिए इस शोध आलेख में समसामयिक समस्याओं को केंद्र में रखकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

'बच्चों के मंचीय नाटक' में चित्रित समसामयिक समस्याएँ : एक अध्ययन

साहित्य में मानव-जीवन का चित्रण होता है। जीवन में सुख-दु:ख, अच्छाई-बुराई, आशा-एषणाओं का अनुभव सदैव से मनुष्य लेता रहा है। सुख की स्थिति में मनुष्य आनंद की अनुभूति करता है, वहीं दु:ख में उसका हृदय नकरात्मक विचारों से भर जाता है। इस नकारात्मकता का ही दूसरा नाम समस्या है। जो प्राप्त नहीं है, उसे कैसे प्राप्त किया जाय अथवा जीवन के अभावों की पूर्ति कैसे की जाय? इन प्रश्नों को हल करने में मानव, जीवन के अंत तक प्रयासरत रहता है। साहित्य में यह प्रश्न समृद्धि रूप में चित्रित होते हैं। मनुष्य का जीवन समाज, राजनीति, अर्थ, संस्कृति, वातावरण इत्यादि पक्षों से जुड़ा होता है। वास्तव में ये सभी बाह्य-पक्ष हैं, किंतु मानवी जीवन किसी-न-किसी रूप में इनसे प्रभावित अवश्य होता है।

'बच्चों के मंचीय नाटक' नाटक संकलन में नाटक के माध्यम से विविध समस्याओं का चित्रण हुआ है, जिन्हें निम्नानुसार रेखांकित किया जा सकता है।

भ्रष्टाचार

मानवी स्वार्थवृत्ति भ्रष्टाचार की समस्या के मूल में है। मनुष्य अपनी आवश्यकता से अधिक धन-संचय के लोभ में भ्रष्टाचार करता है। इस भ्रष्टाचार के माध्यम से सामान्यजन का शोषण होता है। संसद में प्रजातांत्रिक चुनाव-पद्धति से जिन प्रतिनिधियों को हम वोट देकर भेजते हैं, वे सत्ता प्राप्त करने के बाद मनमानी करने लगते हैं। चुनाव जीतने के लिए जनता से किए गए वादों को भूलकर वे अपनी श्रीवृद्धि में लग जाते हैं। आरंभ में चुनाव-प्रचार के दौरान ही पैसे देकर वोट खरीद लिए जाते हैं। चुनाव-प्रचार का कार्य कर रहे एम॰एल॰ए॰ सीट के उम्मीदवार बाबू करमचंद के मित्र और समर्थक गुप्ताजी कहते हैं–'कम-से-कम दो हजार वोट तो आपके पक्ष में औरतों के ही मैंने डलवाए हैं। चंपो की चाची, मुल्लो की मौसी, बिल्लो की बुआ, सुरों

 ISSN 0975-735X

की साली, मेरी घरवाली सबने घर-घर घूमकर महिला मतदाताओं को पोलिंग पर पहुँचाया था। जमीन-आसमान एक कर दिए हैं बाबू जी!'[7]

कुछ लोग चुनाव-प्रत्याशियों द्वारा वोट खरीदने के लिए बाँटे जाने वले धन के लालच में यह सोचते हैं कि काश चुनाव पाँच साल के मध्यांतर से न होकर बार-बार हों तो उन्हें धन कमाने के लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। चुनावी खबरों की गहमागहमी से मीडिया-प्रेस-समाचार-पत्र भरे पड़े होते हैं। रास्ते पर अखबार बेचने वाले लड़कों के अखबारों की खूब बिक्री होती है। 'चुनाव का टट्टू' नाटक का अखबार बेचने वाला पात्र 'मुल्लो' कहता है–'अगर इसी तरह हर महीने चुनाव का चक्कर चलता रहे तो ईमान से लखपती हो जाऊँ, लखपती!'[8]

एम॰एल॰ए॰ सीट के उम्मीदवार बाबू करमचंद चुनाव प्रचार में दोनों हाथों से धन लुटाते हैं–'गुरु, मैंने भी खर्च करने में कमी नहीं रखी है, 15 हजार कैश तो अपने पास से ही लगा चुके हैं और अभी हजारों के पेमैंट बाकी हैं।'[9]

बड़े-बड़े व्यापारी, सेठ-साहूकार लोगों का शोषण करते हैं। व्यापारी अपने गोदाम में जीवनावश्यक चीजों का भंडार करते हैं। बाज़ार में इन चीजों की कमी होने से उनके दाम बढ़ जाते हैं; बाद में ये व्यापारी महँगे दामों पर अपनी जमा की हुई वस्तुओं को बेचकर और अधिक मुनाफा कमाते हैं। 'लाला डकारचंद' नाटक में लालाजी भारतीय सेना चौकियों पर चीनीयों के आक्रमण करने से पैदा हुई युद्ध की संभावना के कारण अतिरिक्त सोने का भंडार करते हैं–'हाँ तौ मुनीमजी, ऐसौ करौ, सवेरे की गाड़ी से दिल्ली चले जाओ। 500 तोले तो तैयार माल संग लै आऔ और 500 तोले कौ मार्जन दै आऔ!'[10]

इस प्रकार लोभी व्यापारी अधिक धन कमाने के लिए जनता का शोषण करते हैं।

भ्रष्टाचार का दूसरा रूप रिश्वत है। रिश्वत लेना और देना दोनों ही अपराध है। फिर भी अपना काम सरलता से हो जाए, इसलिए लोग रिश्वत देते हैं। 'खिलाड़ीराम का मुकदमा' नाटक में खिलाड़ीराम परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है, क्योंकि परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के बेतुके उत्तर उसने लिखे हैं। कोर्ट में जज को रिश्वत देने का प्रयास करते हुए वह कहता है–'अगर आप प्रसन्न हो जाएँ तो मैं दसवीं में हो सकता हूँ। सच कहता हूँ, अगर आप मुझे पास कर दें तो मैं आपको चमचम और रसगुल्ले खिलाऊँगा।'[11]

यहाँ स्पष्ट होता है कि, जनमानस का शोषण विविध हथकंडे अपनाकर किया जाता है। भ्रष्टाचार की दीमक ने समाज को खोखला कर दिया है। इस समस्या की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षिक करने का कार्य इन नाटकों ने किया है।

शिक्षा-व्यवस्था में व्याप्त समस्याएँ

व्यक्तित्व के विकास में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान होता है। देश में प्रत्येक युवक को उच्च शिक्षा का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद युवावर्ग अधिक वेतन तथा उच्चतर रहन-सहन के लोभ में भारत से विदेश जाकर अपनी सेवा देते हैं। भारत में शिक्षा प्राप्त करने के बाद विदेश जाकर वहाँ अपने कौशल का उपयोग करने का चलन आज-कल बहुत बढ़ गया है। 'राह अनेक : मंजिल एक' नाटक के पात्र भारत में शिक्षा ग्रहण करके भारतीय जनता की सेवा एवं उनकी सुरक्षा करने का प्रण करते हैं। क्योंकि अच्छे डॉक्टर, कुशल

अभियंता तथा देश की सुरक्षा-व्यवस्था को जागरूक एवं कर्तव्यनिष्ठ लोगों की आवश्यकता है। इसी नाटक का पात्र 'गोपाल' कहता है–'हमारे देश में कुशल इंजीनियरों की बड़ी आवश्यकता है। प्रत्येक दिन निर्माण के नए-नए कार्य होते हैं। बस, मैंने तभी से मन में इंजीनियर बनकर अपने देश की सेवा का संकल्प लिया।'[12]

नाटक का दूसरा पात्र 'कैलाश' भी डॉक्टर बनकर देश की गरीब जनता की सेवा करना चाहता है–'हाँ! एक बार गोपाल बहुत बीमार हुआ था। मुझे उसकी सेवा करने का अवसर मिला। इसकी तीमारदारी और सेवा में मुझे बड़ा सुख मिला था। बस, तभी से मैंने निश्चय कर लिया कि डॉक्टर बनूँगा और अपने देश के रोगी भाइयों का इलाज कर देश की सच्ची सेवा करूँगा।'[13]

युवकों का अपने देश की सेवा करने का स्वप्न पूर्ण हो सके, इसके लिए उन्हें जो आरंभिक शिक्षा दी जाती है, उसका स्तरीय होना नितांत आवश्यक है। तभी भविष्य में बच्चे अच्छी शिक्षा ग्रहण कर देश की सेवा में अपना योग दे सकेंगे। पाठशाला में पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ खेल-कूद के क्षेत्र में भी बच्चों का रुझान बढ़ सके, इसके लिए भी प्रयत्न किए जाने चाहिए। नाटक का पात्र मोहन पढ़ने-लिखने में कमजोर था, किंतु खेलकूद में सबसे आगे था। इसीलिए उसका सपना सेना में भरती होने का है–'मैंने निश्चय किया कि मैं सेना में भरती होऊँगा और अपनी जन्मभूमि की रक्षा में मिट जाने में ही कल्याण मानूँगा।'[14]

इस नाटक के पात्रों की विशेषता यह है कि वे अपनी स्कूल की शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। उनका उद्देश्य भविष्य में अपने देश की सेवा करना है। ऐसे युवकों के प्रति देश की सरकार का दायित्व बनता है कि वे उनके लिए शिक्षा का अनुकूल वातावरण निर्मित करें और उनके सपनों को साकार करने में योग दे।

शिक्षा-व्यवस्था में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की होती है। एक अच्छा शिक्षक अपने छात्रों को उत्कृष्ट शिक्षा देकर एक अच्छा नागरिक बनाता है। परंतु आजकल शिक्षक केवल वेतनभोगी बनकर रह गए हैं। वे अपने कर्तव्य को पूर्ण सजगता के साथ नहीं निभाते। 'भक्तराज प्रह्लाद' नाटक में छात्र को किस प्रकार शिक्षा दी जाए, यह गुरु निश्चित नहीं करता, बल्कि दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु, दैत्यों के गुरु षंड और मर्क को आदेश देता है कि–'हमारे प्रिय पुत्र प्रह्लाद की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व स्वीकार करो। उसे अपने ढंग से हमारे विचारों के अनुसार शिक्षित करो। साथ ही यह भी देखते रहो कि जैसा मैं चाहता हूँ, उस तरह का आचरण वह कर रहा है अथवा नहीं। इसके साथ ही समय-समय पर हमें यह भी सूचित करो कि वह हमारे अनुकूल व्यवहार करता है अथवा नहीं।'[15]

प्रह्लाद को किस प्रकार शिक्षा दी जाए यह गुरु स्वयं निश्चित नहीं करते, क्योंकि वह राजा के आश्रय में रहते हैं। उन्हें अपने स्थान और पद की अधिक चिंता है। दैत्यगुरु षंड, हिरण्यकशिपु से पूछते हैं–'सम्राट्! कृपा कर यह भी बता दें कि हम दोनों को प्रह्लाद को किस प्रकार की शिक्षा देनी है और उसे किस प्रकार का आचरण भविष्य में करना है; ताकि हम उसी प्रकार आपके अनुसार प्रह्लाद को दीक्षित कर सकें?'[16]

गुरु यदि राजा के कहे अनुसार छात्रों को शिक्षा दे तो वह गुरु महत्त्वहीन है। गुरु को चाहिए कि पूर्णत: निष्पक्षता के साथ लोककल्याण की शिक्षा अपने छात्रों को दे और अपना दायित्व पूरी ईमानदारी से निभाए।

 ISSN 0975-735X

पाठशालाओं में जो पाठयक्रम होता है, वह भी छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त नहीं होता। पाठयक्रम की सामग्री छात्रों को रोजगारपरक ज्ञान देने में असमर्थ है। 'खिलाड़ीराम' की ओर से पैरवी करने वाला वकील 'इतिहासराम' के गवाही देने पर कहता है–'इतिहासराम ने बालक से वे बातें पूछी हैं, जो उसके पैदा होने से पहले हुई थीं। आप स्वयं ही न्याय कीजिए, वह इतनी बातों का ठीक-ठीक उत्तर कैसे दे सकता है?'[17]

पाठशालाओं में इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों का अध्यापन भी पुरानी पद्धतियों के आधार पर ही किया जाता है। वर्षों तक पाठयक्रम का पुनर्लेखन नहीं होता। नयेपन और युगीन आवश्यकताओं के अभाव के कारण पाठयक्रम बोझिल और नीरस प्रतीत होने लगता है।

धार्मिक आडंबर और शोषण

धर्म के नाम पर लोगों को लूटने, उनका शोषण करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। धार्मिक विधियों में बहुत-साधन लूटा जाता है। 'सेर को सवा सेर' नाटक में मुफ्तखोर 'पंडित' की पत्नी उससे कहती है–'आजकल श्राद्धों में भी तुम घर ही खाओगे क्या? आज का न्यौता माना है कहीं का?'[18]

पंडित यजमान के घर से भरपेट न्यौता खाता है, और ऊपर से दक्षिणा की भी माँग करता है। यजमान से झूठ बोलकर अपने खाने के लिए हलवाई से मिठाइयाँ मँगवाई जाती हैं–'वेदों में लिखा है कि हलवाइयों के माल खाने को देवता भी तरसते हैं, फिर पितरों का तो कहना ही क्या?'[19]

पंडित ईश्वर की पूजा से अधिक महत्त्व अपनी पेट-पूजा को देता है–'...तुम जानती ही हो पूजा की सामग्री की फेहरिस्त में से हम भले ही कुछ भूल जाएँ, खाने की फेहरिस्त पूरी याद रहती है–मलाई, रबड़ी, गुलाब-जामुन, इमरती, पूरी, कचौरी, सोहन हलुआ... '[20]

यह सब करने के बाद भी मृतक ने स्वर्ग में संतान को जन्म दिया है, कहकर उसकी धार्मिक विधि करने के लिए भी पंडित धन की माँग करता है–'हाँ-हाँ स्वर्ग में मुनिया के लड़का हुआ है। कल का दष्ठौन है.. '[21]

इस प्रकार पंडित ललाइन से साड़ी, जेवर और पैसे लूटता है। धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले ऐसे पंडितों से सावधान रहना चाहिए।

इसी नाटक का अन्य पात्र 'लाला' जालसाजी करके लोगों का शोषण करता है। नाटक का पात्र 'दूसरा' पंडित और लाला दोनों को कहता है–'जालसाजी तो आप भी करते हैं। मैंने जो आपसे कर्जा लिया था, सौ के पाँच सो तो दे चुका, अब भी दो सौ बाकी बने हुए हैं।'[22]

जातिगत भेद-भाव

आजादी के इतने वर्षों बाद भी रूढ़ि और परंपराओं ने समाज को जकड़ रखा है। लोगों में जात-पाँत को लेकर भेद-भाव है। निचली जाति के लोगों को हीन भावना से देखा जाता है, समाज में उनके प्रति तिरस्कार है। 'हम सब एक हैं' नाटक का पात्र 'कल्लू' अछूत है, इसीलिए उसके साथ अन्य लड़के गोलियाँ नहीं खेलते। उसे अछूत कहकर अपमानित करते हैं। सूदन कहता है–'बड़ा आया है रंगीन गोलियाँ वाला! अछूत कहीं का!'[23] लड़के कल्लू पर स्कूल का बस्ता चोरी करने का आरोप लगाते हैं। उसे पीटने के लिए हाथ का नहीं, लकड़ी का इस्तेमाल

करते हैं। सूदन कहता है–'उसे मारते तो हम छू न जाते। फिर हम भी अछूत हो जाते।'[24]

कल्लू ईमानदार है। वह बच्चू से झगड़कर स्कूल का बस्ता लेकर आता है। अपनी आपबीती और पीड़ा मास्टरजी को बताते हुए कल्लू कहता है–'ये हमें चोरी लगाते हैं, मास्टर जी। हमसे कहते हैं, तू अछूत है। हमें छूते नहीं, हमें अपने साथ खेलने भी नहीं देते।'[25]

जब तक समाज में इस प्रकार की कुप्रथाओं का प्रचलन होगा, तब तक हम अपने आप को प्रगत कैसे कह सकते हैं? सच्ची प्रगति की नींव यदि रखनी है, तो वह हमारे विचारों में रखनी चाहिए। समाज में प्रत्येक व्यक्ति का समान महत्त्व है। ऊँच-नीच, जात-पाँत आदि पर आधारित समाज-रचना में कुत्सित विचारों का पोषण होता है। इसी तथ्य को इस नाटक के माध्यम से प्रकट किया गया है।

लड़का-लड़की में भेदभाव

माता-पिता यदि अपनी संतान में भेद-भाव करते हैं, तो इसका प्रभाव संतान पर भी पड़ता है। परिवार में माँ का स्थान पिताजी के बाद का है, क्योंकि माँ घर के सभी काम करती है, अंत में खाना-खाती है, इत्यादि तर्क 'घर के मालिक' नाटक के बाल-पात्र देते हैं। 'प्रभात' माता- पिता की अनुपस्थिति में स्वयं को घर का मालिक समझता है। वह दीपा से कहता है–'तू लड़की है। तू मलिक कैसे बन सकती है?'[26] वह दीपा को बार-बार जताता है कि वह लड़की है। इसीलिए वह प्रभात की तरह सब-कुछ नहीं कर सकती। वह पिताजी का अनुकरण कर दीपा को तर्क देता है कि–'मैं मर्द हूँ। मर्द घर में नहीं बैठा करते। देखती नहीं, पिता जी जहाँ जी में आता है, जाते हैं। माँ घर की रखवाली करती हैं सारे दिन।'[27] वह स्वयं बाहर दोस्तों में खेलने जाना चाहता है और दीपा को बाहर जाने से रोकता है, उसे घर की मालकिन कहते हुए ढेर सारे काम करने को कहता है–'घर ठीक कर, चौके में जाकर खाना बनवा, कपड़े सी, घर की मालकिन को तो ढेरों काम होते हैं।'[28]

इतना ही नहीं, प्रभात स्वयं दो लड्डू खाता है और दीपा को एक ही खाने देता है। दीपा जब अपना हिस्सा देने से इंकार करती है, तब प्रभात उसे माँ का उदाहरण देते हुए कहता है–'जब कोई चीज कम होती है तो माँ नहीं खातीं। अपना हिस्सा औरों को दे देती हैं।'[29]

इस नाटक में प्रभात एवं दीपा के संवादों से ज्ञात होता है कि वे अपने माता-पिता का अनुकरण करते हैं और उसी के आधार पर परिवार में अपना स्थान स्वयं निर्धारित करते हैं। घर के बड़ों को इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि उनके प्रत्येक कार्य का किसी-न-किसी रूप में बच्चों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। पति-पत्नी यदि एक-दूसरे को लेकर भेद-भाव करते हैं तो संतान उन्हीं विचारों को ग्रहण करती है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों में भेद-भाव करने की वृत्ति बढ़ने लगती है।

कामचोर प्रशासन और व्यवस्था

प्रशासन और व्यवस्था भ्रष्ट तो है ही, कामचोर भी है। प्रशासक और उनके मातहत काम करने वाले लोग अपना काम ईमानदारी से नहीं करते। वे जनता की सेवा के लिए होते हैं, किंतु अपनी सेवा जनता से करवाते हैं। 'जिसका काम उसी को साजे' नाटक में राजा ऐसे लोगों को नौकरी पर रखता है, जो न तो पढ़े-लिखे हैं और न ही किसी प्रकार की कला में निष्णात हैं।

 ISSN 0975-735X

उन्हें कुछ भी नहीं आता। राजा उन्हें चौकीदार बना देता है। नाटक का पात्र 'मोनू' अपनी ड्यूटी छोड़कर अपने मित्र 'सोनू' से मिलने चला जाता है। सोनू के यह कहने पर कि तुम्हें तो अपनी ड्यूटी पर होना चाहिए था, मोनू जवाब देता है–'किसी को कोई पता नहीं चलेगा, राजा बेखबर सोया हुआ है और सारे दरबारी भी।'[30]

स्कूलों में अध्यापक भी अपने काम को लेकर जागरूक नहीं हैं। 'खिलाड़ीराम का मुकदमा' नाटक में जज प्रमाणस्वरूप जब खिलाड़ीराम की इम्तहान की कापियाँ माँगते हैं, तो मास्टर चंद उन्हें दिखाने में आनाकानी करता है। वकील चंचलकुमार सत्य बताते हुए कहता है– 'बात असल में यह है कि मास्टर चंद की पत्नी ने कापियाँ रद्दी में बेच दी हैं।'[31]

स्पष्ट है कि जब प्रशासक ही बेखबर होकर सोया हो, लापरवाह हो तो, उनके मातहत कर्मचारी अपनी मनमानी करेंगे ही।

बच्चों में बढ़ती शरारत की समस्या

शहर में रहने वाले ऐसे परिवार, जिनमें माता-पिता दोनों नौकरी करते हैं, उन परिवारों में बच्चे अधिक समय अकेले घर में ही बिताते हैं। उनके पास मनोरंजन के भौतिक साधन तो बहुत-से होते हैं, किंतु माता-पिता का प्रेम उन्हें पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। ऐसे बच्चे अधिक आत्मकेंद्री एवं अंतर्मुखी होते हैं। उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन, शरारत अधिक देखने को मिलता है। दूसरी तरफ गाँव में माता-पिता खेतों में मजदूरी कर अपनी गुजर-बसर करते हैं। वे अपने बच्चों के भविष्य के प्रति बहुत आशावादी होते हैं। 'शरारत का फल' नाटक में 'लक्ष्मण' की शरारतों के कारण मास्टर जी उसके पिता से कहते हैं कि इसे स्कूल से हटाकर काम-धंधे पे लगाओ। इसपर पिताजी मास्टर से कहते हैं–'मास्टर साहब, मैं दिन-भर शहर जाकर मजदूरी करता हूँ। उसकी माँ खेत में काम करती है। स्कूल में खाने को मिलता है, मुफ्त की किताबें, कापियाँ मिलती हैं। पढ़-लिख जाता तो तुम्हारे जैसा मास्टर बन जाता, ज़िंदगी सुधर जाती।'[32]

एक तरफ पिताजी हैं जो, अपने बेटे के भविष्य के प्रति चिंतित हैं और दूसरी तरफ वही बेटा शरारतों से बाज नहीं आता और अनजाने में उसकी शरारत के कारण एक दिन पिताजी की ही टाँग टूट जाती है।

'आया का मुकदमा' नाटक में भी शरारती बच्चे झूठे आरोप लगाकर आया को कटघरे में खड़ा कर देते हैं। आया बच्चों को डाँट-डपट करती है, क्योंकि वह चाहती है कि बच्चों का व्यवहार अच्छा हो। किंतु बच्चे आया की हरकतों को शक की नजर से देखते हैं, उसे सबक सिखाने के लिए कोर्ट तक ले जाते हैं। कोर्ट में बच्चे एक से एक तर्क देते हैं कि आया झूठ बोलती है, हमारी जान लेना चाहती है, आया के इरादे खतरनाक हैं आदि।

ध्यातव्य है कि बच्चों की शरारतें यदि हद से अधिक बढ़ जाती हैं तो संभव है, भारी नुकसान उठाना पड़े। इसीलिए उनकी शरारतों पर अंकुश लगाने के लिए उनमें अच्छे संस्कार डालना आवश्यक हो जाता है।

पर्यावरण की समस्या

तेजी से बढ़ रहे शहरीकरण, औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण के रक्षण का संकट सारी

दुनिया पर मँडरा रहा है। यदि हम प्रकृति का रक्षण नहीं कर पाए तो प्रकृति की विनाशलीला मानव-जाति को नष्ट कर देगी। इसीलिए स्कूलों में बच्चों को पर्यावरण के रक्षण करने की जानकारी दी जाती है। 'सच्चा मित्र' नाटक में बच्चे आम के पौधे को समय-समय पर पानी देते हैं, उसकी देखभाल करते हैं। आम का पौधा 'राघव' और 'परंपत' इन दोनों भाइयों को आश्वासन देता है–'बड़ा होने पर मैं भी तुम्हारी सेवा करूँगा। पर्यावरण को शुद्ध करने का काम तो मैंने अभी से शुरू कर दिया है।'[33]

स्पष्ट है कि सिर्फ ऊँचे दरख्त ही नहीं, छोटे-छोटे पौधे, घास-पात भी पर्यावरण को शुद्ध करने का कार्य करते हैं। इतना ही नहीं तो उनपर खिलने वाले रंग-बिरंगे फूलों को देखकर हमारे हृदय में सुखात्मक अनुभूति होती है। तीन वर्ष बाद आम का पौधा पेड़ बन जाता है। और तेजी से काटे जा रहे जंगलों को लेकर अपनी चिंता व्यक्त करता है–'भैया, आज की दुनिया बड़ी मतलबी है। हमें धड़ाधड़ काटा जा रहा है। जंगल के जंगल साफ हो गए हैं।'[34]

मानव यदि इसी प्रकार बिना किसी रोक-टोक के वृक्ष-संपदा का विनाश करता रहा, तो इस पृथ्वी पर कुछ भी नहीं बचेगा। परिणामस्वरूप मानव-जीवन अत्यधिक दुष्कर बन जाएगा, इसमें संदेह नहीं।

निष्कर्ष

निष्कर्षत:, यह कहा जा सकता है कि 'बच्चों के मंचीय नाटक' संकलन में संकलित नाटक बालमनोविज्ञान के अनुकूल हैं। बच्चों की स्वभाव-विशेषताओं को ध्यान में रखकर नाटक लिखे गए हैं। नाटकों में मात्र मनोरंजन ही नहीं, अपितु समसामयिक समस्याओं के प्रति बच्चों को सजग करने का प्रयास भी हुआ है। कुछेक नाटक जैसे–'हास्य कविसम्मेलन', 'लालटेन की वापसी', 'चोंचू नवाब' मात्र मनोरंजन के लिए लिखे गए हैं। बच्चों को यदि मनोरंजन के साथ भ्रष्टाचार, शिक्षा-व्यवस्था, भेद-भाव, धर्मिक आडंबर, शोषण, छुआछूत, पर्यावरण आदि विषयों पर समय रहते ही ज्ञान दिया जाए; तो संभव है कि भविष्य में वे इन समस्याओं को देखने का अपना एक स्वस्थ दृष्टिकोण निर्धारित कर सकेंगे। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनके मानस का परिष्कार होगा और वे देश के अच्छे नागरिक बनकर देश की उन्नति में अपना अमूल्य योगदान दे सकेंगे।

संदर्भ

1. इलैक्ट्रानिक मीडिया लेखन, रमेश जैन, मंगलदीप पब्लिकेशंस, दुग्गड़ बिल्डिंग, एम॰आई॰ रोड, जयपुर प्रथम संस्करण, 2004 पृ॰ 145
2. वही, पृ॰ 146
3. वही, पृ॰ 146
4. वही, पृ॰ 147
5. बच्चों के मंचीय नाटक, सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मनोज पब्लिकेशंस, 761, मेन रोड, बुराडी, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2015. पृ॰ 5
6. वही, पृ॰ 5
7. वही, पृ॰ 12
8. वही, पृ॰ 10

9. वही, पृ॰ 12
10. वही, पृ॰ 23
11. वही, पृ॰ 113
12. वही, पृ॰ 43
13. वही, पृ॰ 44
14. वही, पृ॰ 44
15. वही, पृ॰ 92-93
16. वही, पृ॰ 93
17. वही, पृ॰ 119
18. वही, पृ॰ 126
19. वही, पृ॰ 131
20. वही, पृ॰ 132
21. वही, पृ॰ 137
22. वही, पृ॰ 139
23. वही, पृ॰ 143
24. वही, पृ॰ 146
25. वही, पृ॰ 147
26. वही, पृ॰ 65
27. वही, पृ॰ 70
28. वही, पृ॰ 70
29. वही, पृ॰ 75
30. वही, पृ॰ 107
31. वही, पृ॰ 122
32. वही, पृ॰ 49
33. वही, पृ॰ 82
34. वही, पृ॰ 84

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एच॰पी॰टी॰ आर्ट्स एंड आर॰वाय॰के॰ सायंस कॉलेज, नासिक 422005
ई-मेल : gshekokar@yahoo-in
मो॰ 094227 66505

शोध के क्षेत्र में असाधारण संदर्भ-ग्रंथ

डॉ॰ महेश दिवाकर, डी॰लिट्॰

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल साहित्य के क्षेत्र में उन दो असाधारण व्यक्तित्व के नाम हैं, जिन्होंने अपने मौलिक चिंतन, सृजन, संपादन एवं प्रकाशन के द्वारा हिंदी साहित्य को नित्य नए आयाम दिए हैं। उन्होंने हिंदी पद्य और गद्य की विविध विधाओं में बहुआयामी सृजन किया है। साथ ही अनेकानेक महत्त्वपूर्ण कृतियों का संपादन एवं प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में हिंदीभाषा और साहित्य के विविध आयामों को लेकर शोधकार्य हो रहे हैं। हजारों शोध-छात्रों को उनके शोध-कार्यों के लिए पीएच॰डी॰ (हिंदी) की उपाधियाँ प्रतिवर्ष प्रदान की जाती हैं। परस्पर सूचना के अभाव में कभी-कभी एक ही विषय और शीर्षक पर पृथक्-पृथक् विश्वविद्यालयों में शोधकार्य संपन्न हो जाते हैं। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल स्वयं हिंदी के आचार्य रहे हैं, अत: उन्होंने इस अभाव एवं विसंगति को समझा और शोध के क्षेत्र में चुनौतिपूर्ण कार्य को अपने हाथों में ले लिया। वस्तुत: यह अत्यंत कठिन कार्य था, जिसे डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल और डॉ॰ मीना अग्रवाल ने पूर्ण किया।

'शोध संदर्भ भाग 1, 2, 3, 4, 5 और 6 इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण शोध संदर्भ ग्रंथ हैं, जिनका सफलतापूर्वक संपादन संपादकद्वय ने किया है।

शोध संदर्भ 1 का संपादन एवं प्रकाशन डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल और डॉ॰ मीना अग्रवाल ने सर्वप्रथम सन् 1980 में किया, जिसे 'हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) ने प्रकाशित किया। इस ग्रंथ का कलेवर लगभग 620 पृष्ठों में है, जिसका पक्की जिल्द में तत्कालीन मूल्य एक सौ बीस रुपए मात्र था, जो अब 500 रुपए है।

आलोच्य शोध संदर्भ-1 में शोधकार्य के आरंभ से लेकर सन् 1979 तक स्वीकृत हिंदी शोध-उपाधियों का विवरण सँजोया गया है। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त हिंदी शोध विषय, विश्वविद्यालय का नाम व उपाधिप्राप्त वर्ष, शोधनिदेशक का नाम और उसका पता भी दिया गया है। यही नहीं जो शोधकार्य उस अवधि में प्रकाशित हो गए, उनका प्रकाशन-संस्थान का पता, वर्ष, पृ॰सं॰ और मूल्य भी दिया गया है। इस प्रकार भाग 1 में कुल 4501 शोधार्थियों का विषयगत पूर्ण विवरण उपलब्ध कराया गया है। संपादकद्वय ने अत्यंत व्यवस्थित कार्य किया है। यथा अनुक्रम के आधार पर हिंदी साहित्य के काल-विभाजन के अनुरूप शोधार्थियों के शोध-विषयों को श्रेणीबद्ध किया है। आधुनिककाल अत्यंत विस्तृत है। इसमें उपन्यास, कथासाहित्य, कहानी, काव्य, काव्यशास्त्र, गद्यविधाएँ, गद्यसाहित्य, नाटक, पत्रकारिता, बालसाहित्य

 ISSN 0975-735X

भाषा, मुहावरे और लोकोक्तियाँ, लोकसाहित्य, समीक्षा और आलोचना, हिंदीकाव्य, हिंदी साहित्य, हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्यकार व्यक्ति-विशेष, साहित्यकार विविध, साहित्यकार समुदाय-विशेष, विभिन्न अध्ययन संबंधी शोध-शीर्षकों के अंतर्गत शोधार्थियों के शोध-विषयों को श्रेणीबद्ध करते हुए विवरण अंकित किया है। नि:संदेह यह अत्यंत दुरूह कार्य है। अंत में शोधकार्य करानेवाले विश्वविद्यालयों के नाम और पते प्रकाशकों के संस्थानों के पते नामानुक्रमणिका भी में उपलब्ध कराई गई है। मात्र रु॰ 120/- में यह विशाल संपादित ग्रंथ उपलब्ध कराना लोहे के चने चबाने जैसा कार्य करना था। लेकिन यह कार्य डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल ने सन् 1980 में करके समग्र हिंदी जगत को चकित कर दिया।

'शोध संदर्भ-2 का प्रकाशन और संपादन भी डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल ने संयुक्त रूप से किया। इस ग्रंथ का प्रकाशन सन् 1987 में हिंदी साहित्य निकेतन बिजनौर (उ॰प्र॰) में किया। इसका कलेवर 416 पृष्ठों में है। पक्की जिल्द में इसका मूल्य एक सौ पचास रुपए मात्र था, (अब मूल्य 500 रुपए है) इस ग्रंथ में हिंदी में पीएच॰डी॰ प्राप्त सन् 1980 से सन् 1986 तक के शोधार्थियों का विवरण उपलब्ध है। इनकी कुल संख्या 3261 है। विषय-विभाजन, शोध-संबंधी सूचनाएँ और अन्य सभी विवरण 'शोध संदर्भ-1' की भाँति ही है।

'शोध संदर्भ -3' का प्रकाशन एवं संपादन संपादक द्वय ने सन् 1992 में 'हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) के द्वारा ही किया है। इस ग्रंथ में सन् 1986 से सन् 1992 तक स्वीकृत शोध-प्रबंधों का विवरण उपलब्ध कराया गया है। इस ग्रंथ का कलेवर 400 पृष्ठों में है। और दो सौ पच्चीस रुपए मात्र इसका मूल्य था। (अब मूल्य 525 रुपए है) इसके अंतर्गत कुल 2853 शोधार्थियों का विवरण उपलब्ध कराया गया है। बाकी सभी सूचनाएँ बिंदु शोध संदर्भ-1 के समान ही प्रस्तुत की गई हैं।

'शोध संदर्भ-4' का प्रकाशन एवं संपादन संपादक ने सन् 2004 में किया है, जिसे 'हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) ने प्रकाशित किया है। इस ग्रंथ में कुल 590 पृष्ठों की सामग्री है। हिंदी में सन् 1992 से सन् 2003 तक स्वीकृत शोध-प्रबंधों के विवरण को इसमें प्रस्तुत किया गया है। जिनकी कुल संख्या 4703 है। इस ग्रंथ का मूल्य रु॰ 595/- है। ग्रंथ में पूर्ववत् अन्य सभी सूचनाएँ प्रकाशित की गई हैं।

'शोध-संदर्भ-5' का प्रकाशन 'हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) ने सन् 2010 में किया है, जिसमें हिंदी में सन् 2004 से सन् 2009 तक स्वीकृत 4638 हिंदी शोध-प्रबंधों की संदर्भिका पूर्ववत् समग्र विवरण के साथ संपादकद्वय डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल ने उपलब्ध कराई है। इस ग्रंथ का कलेवर 640 पृष्ठों में है और आठ सौ पिचानवे रुपए इसका पक्की जिल्द सहित मूल्य रखा गया है।

'शोध संदर्भ-6' का संपादन एवं प्रकाशन का कार्य भी संपादकद्वय डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल ने किया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन 'हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰) ने सन् 2015 में किया है। इस ग्रंथ में कुल 731 पृ॰ हैं और पक्की जिल्द में इसका मूल्य 1500/- मात्र है। इसके अंतर्गत सन् 2010 से सन् 2014 तक स्वीकृत हिंदी शोध-प्रबंधों का संदर्भ उपलब्ध कराया गया है। यही नहीं सन् 2009 से पूर्व छूट गए पीएच॰डी॰

पूर्व संदर्भों को भी इस ग्रंथ में समाहित किया गया है। फलतः इस ग्रंथ का कलेवर बढ़ गया है और इसके अंतर्गत कुल 5353 शोधार्थियों के शोध-संदर्भों को समाहित किया गया है।

सारतः डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल ने संयुक्त रूप से हिंदी-शोध के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस कार्य को प्रारंभ कर निरंतर कार्य-संपादन करना व प्रकाशित करना कोई सरल कार्य नहीं है। ऐसे जटिल, दुरूह एवं चुनौतीपूर्ण कार्य को उन्होंने संपन्न किया, निश्चित रूप से संपादकद्वय बधाई के पात्र हैं भारत-भर के विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों से सूचनाओं को एकत्र करना और उन्हें बिंदुशः विषयबद्ध करके संपादित प्रकाशित करना लोहे के चने चबाना जैसा ही है। निस्संदेह, संपादकद्वय की हिंदी को समर्पित भावना ही दृष्टिगोचर होती है।

निस्संदेह 'शोध संदर्भ 1, 2, 3, 4, 5 और 6, हिंदी शोध-साहित्य के क्षेत्र में असाधारण उपलब्धियाँ हैं। हिंदी की महान धरोहर हैं। यह संग्रहणीय ग्रंथ हैं सराहनीय कार्य है, जिसका हिंदी जगत को स्वागत करना चाहिए।

सरस्वती
मिलन कॉलोनी
दिल्ली रोड, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

 ISSN 0975-735X

पुष्टिमार्गीय सेवापद्धति एवं वल्लभ संप्रदाय

डॉ॰ रश्मि जोशी
प्रवक्ता हिंदी विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय
सेक्टर-14, गुड़गाँव

16वीं शताब्दी विक्रमी के मध्य वल्लभाचार्य ने उत्तरी भारत, विशेषत: ब्रजमंडल में कृष्णभक्ति का प्रचार और विशिष्ट प्रवर्तन किया।[1] यह शुद्धाद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादक संप्रदाय है। वस्तुत: शुद्धाद्वैत सिद्धांत के मुख्य प्रवर्तक विष्णुस्वामी कहे जाते हैं।[2] विष्णुस्वामी के भक्ति-सिद्धांतों से ही प्रेरणा लेकर वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत दर्शन तथा प्रेमलक्षणा भक्ति के मार्ग 'पुष्टिमार्ग' की व्यवस्थित रूप में स्थापना की ।

वल्लभ संप्रदाय में शंकर के मायावाद का खंडन किया है, शंकर के अनुसार अद्वैत मत में माया-शबलित ब्रह्म ही जगत् का कारण माना है। इसीलिए शंकराद्वैत मत से पार्थक्य प्रदर्शन हेतु उन्होंने 'शुद्ध' विशेषण लगाकर शुद्धाद्वैत नाम दिया।[3]

शंकराचार्य ने निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार की थी, किंतु वल्लभाचार्य ने ब्रह्म को सर्वधर्म (गुण) समन्वित माना। उनके विचार से ब्रह्म सर्वव्यापक एवं सोपाधिक अर्थात् सगुण है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो सर्वगुण संपन्न होकर 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। 'ये सगुण-निर्गुण' उभय रूप हैं।[4] गीता के आधार पर वल्लभ ने ब्रह्म को सर्वोच्च सत्ता के रूप में ग्रहण किया है।[5]

'अविकृत परिणामवाद' के सिद्धांत के आधार पर वल्लभाचार्य ने सुवर्ण-कुंडल न्याय को स्वीकार किया है, जिसके अनुसार सच्चिदानंद ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत् में परिणत हो जाता है।

जीव के संबंध में वल्लभाचार्य मानते हैं कि जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं।[6] उसी प्रकार ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति हुई है, जबकि शंकराचार्य की दृष्टि से अंशांशीभाव वास्तविक नहीं है।

पुष्टिमार्ग

वल्लभाचार्य का दार्शनिक मत 'शुद्धाद्वैत' तथा भक्तिपक्ष 'पुष्टिमार्ग' के नाम से अभिहित किया गया है। वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर 'अणुभाष्य' तो लिखा ही, किंतु श्रीमद्भागवत को भी उपादेय मानकर उसके महत्त्व की प्रतिष्ठा की।[7] वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग 'पोषण तदनभहम्' वाले भागवततत्त्व पर आधारित था। वेदविहित कर्म के अनुसरण तथा ज्ञान-प्राप्ति पर ही नहीं, उन्होंने

भक्ति पर भी विशेष बल दिया।[8]

दार्शनिक विचारों के लिए भले ही वल्लभ विष्णुस्वामी के ऋणी रहे हों, किंतु पुष्टिमार्गीय भक्ति का निरूपण उन्होंने भक्ति ग्रंथों से संकेत ग्रहण करके भी अपनी मौलिक प्रतिभा के बल से किया हैं।

वल्लभ संप्रदाय में यह बात प्रसिद्ध है कि आचार्य वल्लभ को इस पुष्टिमार्ग के निरूपण की आंतरिक प्रेरणा हुई थी। 'संप्रदाय-प्रदीप' नामक ग्रंथ में लिखा है–'अन्य संप्रदायों (रामानुज आदि) में पांचरात्र, नारद आदि शास्त्रप्रतिपादित उपासना की पद्धतियों का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी संप्रदाय में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, तथापि वह भी मर्यादा मार्गीय है। अब वल्लभाचार्य को पुष्टि (अनुग्रह) मार्गीय आत्मनिवेदन द्वारा प्रेमस्वरूपा सगुण भक्ति पर प्रकाश डालना है। संप्रति भक्ति संप्रदाय शंकर सिद्धांत के प्रचार से पथभ्रष्ट हो रहे हैं। अत: इसके लिए वल्लभाचार्य ही उद्धार का कार्य संपर्क कर सकते हैं।' इससे यही सिद्ध होता है कि वल्लभ आचार्य ने पूर्व आचार्यों के मर्यादा मार्गों से भिन्न रूप में अपने पुष्टि संप्रदाय की स्थापना की। मर्यादा भक्ति का लक्ष्य, जीव की प्रकृति से स्वतंत्रता है। मर्यादा भक्ति मनुष्य के प्रयासों पर निर्भर है, जबकि पुष्टिमार्ग स्वयं ईश्वर पर निर्भर है।

भक्ति की दो शाखाएँ है–साधन रूप अथवा मर्यादा भक्ति, इसके 9 स्वरूप हैं।

1. कृष्ण के कार्यों का अध्ययन तथा श्रवण।
2. ईश्वर के नाम का भजन अथवा कीर्तन।
3. कृष्णलीला का स्मरण।
4. कृष्ण की वंदना।
5. अर्चना
6. पाद-सेवन
7. दास्य
8. साख्य
9. आत्म-निवेदन।'[9]

भक्ति का उद्देश्य के रूप में दूसरा स्वरूप प्रेम-लक्षणा भक्ति है। इस अवस्था में भक्त कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित करता है। इसी को पुष्टिमार्ग कहते हैं।[10]

पुष्टिमार्ग के नामकरण की प्रेरणा वल्लभाचार्य को संभवत: भागवत से मिली होगी। वैसे कठोपनिषद् में भी स्पष्ट कहा है कि ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर के अनुग्रह पर ही निर्भर है। भगवदनुगह या भगवत्कृपा की महिमा तो वेदों में भी प्रकट हुई है। पर भागवत के द्वितीय स्कंध, दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में पुष्टि अथवा पोषण का विशेष उल्लेख हुआ है।[11] 'अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टि में भक्तों पर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है पोषण।' यहाँ पोषण तद्नुग्रह-भगवान के अनुग्रह को जो जीव का वास्तविक पोषण माना गया है। श्री वल्लभाचार्य ने जगत् के त्रिविध दुखों से पीड़ित प्राणी की निवृत्ति के लिए आचार्यों ने ज्ञान, कर्म और भक्तिमार्ग निर्दिष्ट किया है, जो लोग भगवान् के आगे सर्वात्म समर्पण कर देते हैं और उनके अनुग्रह पर पूरा भरोसा करते हैं, ऐसे भक्तिमार्गीय उपासक ही पुरुषोतम को प्राप्त करने के अधिकारी हैं।[12] इस प्रकार उन्होंने भक्ति (पुष्टि) को विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार कर्मकांडीय केवल स्वर्ग प्राप्त

 ISSN 0975-735X

करता है। ज्ञानी अक्षर ब्रह्म को ही प्राप्त करता है, किंतु भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम में लीन होकर उनकी नित्य लीलाओं का आनंदानुभव करता हैं। कर्ममार्गी स्वर्गादि लोकों को पाकर फिर मृत्युलोक में आता-जाता है, किंतु पुष्टिमार्गीय भक्त इस संसार के प्रपंच में फिर नहीं आता। 'अक्षर ब्रह्म, पूर्ण तथा अंतर्यामी रूपों में से साधकों को विशेष सुविधा प्रधान करने वाला रूप पूर्ण पुरुषोत्तम का है। साधन मार्ग से साधारण भक्त भगवान का अनुग्रह प्राप्त कर सकता है। अत: उन्होंने साधना प्रधान पुष्टिमार्ग का अविष्कार किया।[13]

अपने दार्शनिक मतवाद की प्रतिष्ठा के साथ ही वल्लभाचार्य ने सोचा कि मस्तिष्क-प्रधान मनुष्य ब्रह्म के विशुद्ध रूप को प्राप्त करके संसार से मुक्त हो जाएगा, परंतु हृदय-प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार संसार से मुक्त होंगे? ज्ञान और योग के साधन कलि से प्रताड़ित जीवों के लिए कष्टसाध्य हैं, यह विचार कर वल्लभाचार्य ने प्रेममार्ग के सरल उपाय को अपनाया, क्योंकि प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जिससे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी तक प्रभावित होते हैं। अत: इस प्रेमतत्त्व के द्वारा जीव सरलता से कृष्णासक्त होकर मुक्त हो सकता है। 'अणुभाष्य' में उन्होंने कहा है–

कृति साध्यं ज्ञानमुक्तिरूपं शास्त्रेण बोध्यते।

ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिमर्यादा।

तद्विहितानाभापि स्व-स्वरूपवलेन स्वप्रापणं पुष्टि रित्युच्यते।

अर्थात् शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है और भक्ति भी ज्ञान के साधन से ही प्राप्त होती है, इन साधनों से प्राप्त हुई मुक्ति का नाम मर्यादा है। ये साधन सर्वसाध्य नहीं हैं। अत: अपनी ही शक्ति से ब्रह्म, जो मुक्ति भक्तों को देता है, वह 'पुष्टि' कहलाती है।

वल्लभाचार्य के अनुसार जीव जब पूर्णतया भगवान पर आश्रित हो जाता है, अपनी समस्त भावनाएँ और इच्छाएँ तथा सर्वस्य भगवदर्पण कर देता है, तब भगवान उस पर परमानुग्रह करते हैं। यह नित्य-लीलास्वरूप-प्राप्ति पुष्टिमार्ग का सबसे बड़ा लक्ष्य है। पुष्टिमार्ग में आने के लिए आवश्यकता है कि जीव लोक और वेद के प्रलोभनों से दूर हो जाए। यह तभी हो सकता है, जब वह कृष्ण के प्रति सर्वभावेन समर्पण कर दे। यह सर्वभावेन समर्पण ही 'पुष्टिमार्ग' भक्ति की चरमावस्था है। इसी समर्पण से इस मार्ग का आरंभ और भगवान के स्वरूप का अनुभव होता है, तथा लीला सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर अंत। बीच का मार्ग सेवा द्वारा प्राप्त होता है, जिससे जीव की रही-सही ममता, अहमन्यता आदि का नाश ही अभिप्रेत है। श्रीकृष्ण ही परम इष्ट हैं। उनकी प्राप्ति के लिए इस समर्पण और सेवाभाव के आदर्श-रूप में गोपीजन की प्रेमभावना की मान्यता है।

वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में भगवान की सेवा-व्यवस्था राजसी ठाठबाट से करने का विधान है, जहाँ राधा-कृष्ण उपास्यदेव हैं। वल्लभ संप्रदाय में बालकृष्ण की उपासना प्रतिष्ठित की गई थी, किंतु बाद में (गो॰ विट्ठलनाथ के समय में) इस संप्रदाय में भी 'भागवत' के आधार पर माधुर्यभाव की भक्ति का विकास किया गया। वल्लभ संप्रदाय में राधा को मुख्यत: स्वकीया माना गया, किंतु गौड़ीय संप्रदाय की भाँति परकीया प्रेम में माधुर्यभाव के 'उज्ज्वल-रस' की चरम परिणति मानने के उद्देश्य से इस संप्रदाय ने भी राधा और गोपियों के प्रेम में परकीया का आदर्श सम्मिलित किया। इस प्रकार स्वकीया राधा और में भी परकीया भाव की स्थिति स्वीकार की गई हैं।

वल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण के रस-रूप को सिद्ध करने वाली गोपियाँ ही मानी गई हैं।[14] जिनका नित्य-निवास गोलोक में माना गया है। वल्लभाचार्य जी ने श्रीकृष्ण के बालस्वरूप की उपासना कर विशेष जोर दिया। विद्वानों ने इस वात्सल्यभाव को भी गोपीभाव का ही अंग माना है।[15] इस संप्रदाय में गोपियों को भगवान की आनंद शक्ति का रूप और अनन्य भक्तादर्श है, तो दूसरा उसकी फलप्राप्ति का रूप।

पुष्टिमार्गीय सेवा का स्वरूप

वल्लभाचार्य की प्रेमलक्षणा भक्ति में भगवत्प्रेम की द्योतक कुछ सेवा-विधियाँ भी स्वीकृत है। सांसारिक सुख-दु:ख की निवृत्ति तथा कृष्णानुराग की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा पर बल दिया। उन्होंने कृष्णसेवा के दो भेद किए–(1) क्रियात्मक सेवा, (2) भावात्मक सेवा। क्रियात्मक सेवा विधि के वित्तजा अर्थात् धन से सेवा और तनुजा अर्थात् शरीर से सेवा–ये दो भेद हैं। ठाकुरजी का मंदिर बनवाने या शृंगारादि प्रसाधनों को जुटाने में आर्थिक योगदान वित्तजा सेवा है। ठाकुर जी के मंदिर में सफाई करना, ठाकुर जी के वस्त्र सीना, स्नान कराना, शृंगार करना आदि कार्य तनुजा सेवा कहलाते हैं।

भावात्मक सेवा को मानसिक सेवा भी कहते हैं। इसके भी दो रूप वल्लभाचार्य ने माने। (1) मर्यादामार्गीय सेवा, (2) पुष्टिमार्गीय सेवा। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्गीय सेवा को अधिक उत्तम बताया है। मन, वचन और कर्म, सब विधि से कृष्णार्पण और कृष्णलीलाओं में लीन होना ही पुष्टि-पुष्ट मानसी सेवा है।

कृष्ण की उपर्युक्त सेवा-विधियाँ 'नित्य' और 'वर्षोत्सव' दो प्रकार की हैं–

(क) 'नित्य' की सेवाविधियाँ

इसमें प्रात: से शयन तक ठाकुर जी की नित्य सेवाएँ चलती हैं, जो आठ अंगों में इस प्रकार है–

1. मंगला : इसमें कृष्ण को जगाने, कलेऊ खिलाने आदि और आरती का विधान है।
2. शृंगार : इसमें कृष्ण के नहलाने, साज-सज्जा आदि का विधान रहता है।
3. ग्वाल : यह कृष्ण का ग्वाल वेश बनाकर गो-चारण के लिए वन में भेजने की क्रिया है।
4. राजभोग : कृष्ण को भोजन कराना।
5. उत्थापन : कृष्ण को नट-वेश में सजाना।
6. भोग : कृष्ण को फिर भोजन कराना।
7. संध्या आरती
8. शयन

(ख) 'वर्षोत्सव' सेवाविधियाँ

इसमें षट्ऋतुओं के उत्सव-रास, होली, हिंडोला आदि तथा अनेक त्योहार, मकर सक्रांति आदि पर्व, अन्य अवतारों की जयंतियाँ इत्यादि उत्सव-पर्व आते हैं।

'अष्टछाप' : कृष्णभक्ति मत में अनेक वैष्णवों ने दीक्षा ली और इस प्रकार कृष्णभक्ति

का क्षेत्र विस्तार हुआ। उनके सिद्धांतों को मानकर कृष्णभक्ति का विकास करने वाले कवियों में अष्टछाप के कवि प्रमुख हैं। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने चार भक्तकवियों को वल्लभाचार्य के शिष्यों में से और चार भक्तकवियों को अपने शिष्यों में से चुनकर अष्टछाप की स्थापना की। वल्लभाचार्य के शिष्यों में से सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास और कुंभनदास को चुना गया और विट्ठलनाथ के शिष्यों में से नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंददास को। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं–

सूरदास : भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवियों में सूरदास का सर्वप्रमुख स्थान है। सूरदास ने अपने काव्य की रचना श्रीमद्‌भागवत से प्रेरणा लेकर की है, किंतु भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक है, वहाँ सूर के कृष्ण के चरित्र में प्रेम और मधुरता को मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है।

नंददास : कविवर नंददास की गणना अष्टछाप के प्रमुख कवियों में की जाती है। उन्होंने कृष्ण के विषय में सरल और मधुर काव्य की रचना की है। उन्होंने कृष्ण की रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसंगों को लेकर 'रासपंचाध्यायी' व 'भँवरगीत' नामक रचना की।

कृष्णदास : कविवर कृष्णदास ने राधाकृष्ण प्रेम को लेकर शृंगाररस के पद लिखने के अतिरिक्त कृष्णलीला के अन्य पक्षों पर भी स्फुट रचना की है। वे जाति के शूद्र थे, फिर भी कृष्णभक्त कवियों में उनका ऊँचा स्थान है।

परमानंददास : परमानंददास ने तन्मयता से भरे हुए आकर्षक भक्ति के पद लिखे हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण के शृंगाररस और विनयभाव से संबंधित काव्य की रचना की है।

कुंभनदास : महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेनेवाले अष्टछाप के कवियों में भक्त कुंभनदास का नाम सर्वप्रथम आता है।

चतुर्भुजदास : भक्त कुंभनदास के पुत्र चतुर्भुजदास भी कृष्णभक्त कवि थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला का गान किया है।

छीतस्वामी : श्रीकृष्ण के महत्त्व का तन्मयता के साथ प्रतिपादन करने वाले कवियों में छीतस्वामी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला का गान करने के अतिरिक्त विनयभाव के भी सुंदर पर लिखे हैं।

गोविंदस्वामी : कविवर गोविंदस्वामी ने श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का सरस वर्णन किया है। उन्होंने यशोदा के पुत्र-प्रेम का अच्छा चित्रण किया है। काव्य के अतिरिक्त वे संगीतकला में भी पारंगत हैं। ब्रजभाषा साहित्य के अष्टछाप कवियों में उनका मुख्य स्थान है।

इन सब कवियों ने वैष्णवधर्म के प्रचार में पर्याप्त योग दिया।

हवेली-संगीत

नवधा भक्ति में हवेली संगीत को महत्त्व मिला। नवधा भक्ति द्वारा आराध्य की आराधना के साथ अपने 'स्व' को समर्पित करके आत्मविस्मृत होकर आराध्य से तादात्म्य स्थापित करना और उसे रिझाना, भक्त गायकों के जीवन का परम ध्येय रहा है। 'हवेली-संगीत' उसी तन्मयता का दूसरा नाम है।

यह संगीत वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित पुष्टिमार्गीय ठाकुरसेवा की भोग एवं रागसेवा के लिए अष्ट सखाओं की मंडली, जिसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य–कुंभनदास, परमानंददास,

सूरदास, कृष्णदास तथा चार उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी के शिष्य–गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नंददास जी थे। इन्हें 'अष्टछाप कवि' भी कहा जाता है।

संदर्भ

1. स्व॰ मुंशी देवीप्रसाद, भागवत संप्रदाय (2010 वि॰), पृ॰ 299
2. बलदेव उपाध्याय, भागवत संप्रदाय, पृ॰ 368
3. माया सम्बन्ध सहितं शुद्धभित्युच्यते बुधैः।
   कार्य कारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्।।
   –शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, श्लोक 28 (चौखंभा, काशी)
4. ब्रह्मसूत्र, 32./2/27 पर अणुभाष्य
5. यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादमि चोत्तमा।
   आतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।
   –गीता', 15/18
6. विस्फुलिंगा इवाग्नेहिं जड़जीवा विनिर्गताः।
   सर्वताः पाणिपादान्तात् सर्वतोऽक्षि शिरोमुखात्।।
   –अणुभाष्य', 2/3/43
7. समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयमृ।
   –शुद्धाद्वैत मार्तण्ड', पृ॰ 49
8. डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा, पुष्टिमार्ग, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, 2020 वि॰, पृ॰ 497 से
9. जे॰सी॰ शाह, श्रीमद्वल्लभाचार्य, हिज फिलासफी एंड रेलिजन, पृ. 165
10. जे॰सी॰ शाह, पूर्वोक्त, पृ॰ 165
11. पोषणंतदनुग्रह, श्रीमद्भागवत 2/10/4
12. वल्लभाचार्य, अणुभाष्य, 2/3/33
13. स्व॰ मुंशी देवीप्रसाद, भागवत संप्रदाय, (2010 वि.), पृ॰ 372 से
14. डॉ॰ दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ॰ 506
15. डॉ॰ शरणबिहारी गोस्वामी, कृष्णभक्तिकाव्य में सखी-भाव, पृ॰ 177

बधव अजय गौर एंड एसोसिएट
आफिस नं. 412, **दीप प्लाजा, न्यू कोर्ट के सामने**
सिविल लाइंस, गुड़गाँव (हरियाणा)
email id-drrashmij09@gmail.com
मो॰ 09873660520

 ISSN 0975-735X

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता : तुलनात्मक अध्ययन

डॉ॰ सतीश यादव

आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य में अज्ञेय और मर्ढेकर ने अपनी प्रतिभा से एक नए युग का निर्माण किया। हिंदी में सन् 1940 से 1987 तक 'अज्ञेय युग' का स्पष्ट प्रभाव एवं प्रचलन दृष्टिगोचर होता है तो मराठी में सन् 1940 से 1956 तक 'मर्ढेकरी' कविता का एक नया युग स्थापित हुआ, जिसका प्रभाव परवर्ती कविता पर ही नहीं, आज तक की मराठी कविता पर स्पष्ट देखा जा सकता है। यूँ तो कवि अपने समय और समाज की उपज होता है। समाज की पारिस्थितिकी में जैसे-जैसे बदलाव के चिह्न अंकित होने लगते हैं, वैसे-वैसे कवि और कविता की प्रवृत्ति में बदलाव की सूचना प्राप्त होती है। अपने युगीन परिवेश का पुनर्पाठ ही एक तरह से प्रतिभाशाली कवि करता है। युगीन अंतर्विरोध, स्थितियाँ और गतियाँ, समाज का बदलता का तापमान आदि को कवि रेखांकित करता है।

अज्ञेय और मर्ढेकर दो भिन्न भाषा, दो भिन्न संस्कृति, दो भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिवेश में पले-बढ़े कवि रहे हैं। दोनों के व्यक्तित्व और कृतित्व में अनेक सम-विषम रेखाएँ परिलक्षित होती हैं। दोनों की साहित्य, जीवन और कलाविषयक मान्यताओं में भी अनेक साम्य-वैषम्य दिखाई देते हैं। दोनों के पारिवारिक एवं साहित्यिक परिवेश में भी भिन्नता दिखाई देती है। किंतु यह सच है कि दोनों समकालीन हैं। अपने समय और समाज के प्रति बड़े गंभीर और सतर्क हैं। हालाँकि किसी भी दो व्यक्तियों या कवियों में व्यक्तित्व और जीवनगत दृष्टिकोण में वैषम्य का होना अधिक लाजिमी होता है। किंतु संयोग कहिए या साहित्य और कला और जीवन के बारे में देखने के दृष्टिकोण में अनेक समानताएँ भी इन दोनों में लक्षित होती हैं।

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में जो सम-विषम रेखाएँ हैं, उसे कुछ बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। दोनों कवियों के काव्य में प्राप्त संवेदनागत प्रवृत्ति-विशेष को केंद्र में रखकर यहाँ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। विशेषत: दोनों की कविता जिस आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में निर्मित हुई, विकसित हुई और अपनी-चरमसीमा पर पहुँची, उसका आकलन निम्नांकित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है।

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में संवेदनागत भाव

व्यक्ति एवं समाज का चित्रण

व्यक्ति समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक भी हैं विरोधी भी। व्यक्ति और समाज में सदियों से संघर्ष चलता आया है। यह संघर्ष अनेक कवियों की कविता में भिन्न-भिन्न रूप में उभरा है। व्यक्ति और समाज के संबंध, व्यक्ति-स्वतंत्रता, व्यक्ति-चेतना, सामाजिक बाध्य, वैयक्तिकता का आग्रह, समाजोन्मुख होने की प्रवृत्ति दोनों कवितों

में कम-अधिक मात्रा में दिखाई देती है। अज्ञेय का संपूर्ण काव्य व्यक्ति-चेतना का आविष्कार करता है। उनका मानना है कि व्यक्ति-विकास के साथ समाज-विकास जुड़ा हुआ है। वे वैयक्तिकता का आग्रह करते हैं, तुलना में सामाजिकता के। व्यक्ति का अंत:सत्य ही सर्वोपरि है, ऐसा अज्ञेय का कहना है। वे व्यक्ति के बाह्य अंग की अपेक्षा व्यक्ति-स्वतंत्रता और व्यक्ति-सत्य को उजागर करते हैं। उनका दृष्टिकोण समाजोन्मुख व्यक्तिवाद है। अज्ञेय की इसी संवेदनागत चेतना को ध्यान में रखते हुए शशि शर्मा लिखती हैं, 'अज्ञेय ने अपने चिंतन में व्यक्ति की गरिमा को आधुनिक, वैज्ञानिक अन्वेषक की दृष्टि से लगातार प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है।'[1] अर्थात् व्यक्ति-चेतना ही अज्ञेय के आधुनिकता-बोध के केंद्र में है। इसी आधुनिकता-बोध के चलते कवि अज्ञेय व्यक्ति के आभ्यंतरिक यथार्थ का प्रभावी चित्रण करते हैं। मनुष्य के भीतरी मनोवेगों का विश्लेषण करते हैं। यह कवि व्यक्ति को अनेक संभावनाओं का पुंज मानता है। व्यक्ति की समस्त क्षमताओं और सीमाओं को अज्ञेय बताते हैं। इसलिए अज्ञेय का व्यक्ति धीरे-धीरे समष्टि की ओर पथक्रमण करता है। यही कारण है कि विश्वंभर मानव लिखते हैं, उनका व्यक्ति अपना पृथक् अस्तित्व रखकर ही सामूहिक की पुष्टि करने वाला है क्योंकि उसका लक्ष्य ही लोककल्याण है।'[2] किंतु यह भी वास्तविकता है कि अज्ञेय व्यक्ति की गरिमा के प्रबल समर्थक होते हुए भी पश्चिम से जो व्यक्तिववादी विचारधारा आ रही थी, उसे पचाकर भारतीय व्यक्तिवाद को एक नया रूप देते हैं। संवेदना का एक नया संसार गढ़ते हैं। किंतु अज्ञेय व्यक्ति को समाज की ओर प्रयाण करते हुए दिखाते हैं, पर समाज में पल रहे अन्याय-अत्याचार के समर्थक नहीं, विरोधी रूप में उसे खड़ा करते हैं। अर्थात् अज्ञेय की कविता में व्यक्ति के बहाने समाज आता है। व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को कवि अंकित करता है। अज्ञेय जी की लोककल्याणकारी व्यक्तिववादी चेतना उनकी कविता 'अंधकार में जागने वाले' नामक कविता में प्रखर रूप से उभरकर आई है–'मेरा अकेलापन एक समूह में विलय हो जाता है, जिसके हर सदस्य का एक बँधा हुआ कर्तव्य है, जिनसे हमारा देश पलता है।'[3]

वस्तुत: मर्ढेकर की कविता में भी व्यक्ति और समाज का सजग चित्रण दिखाई देता है। मर्ढेकर ने औद्योगिक सभ्यता में पल रहे, यंत्रयुग में सांस ले रहे, दो भीषण महायुद्धों के बीच असुरक्षा में जी रहे व्यक्ति का चित्रण किया है। मर्ढेकर ने अपनी अनेक कविताओं में व्यक्ति-जीवन की क्षुद्रता का चित्रण किया है। मनुष्य-जीवन की असहायता, अकेलापन, अर्थशून्यता और पीड़ामय जीवन जी रहे व्यक्ति का चित्रण वे करते हैं। मर्ढेकर की कविता में व्यक्ति के प्रति आस्था है। अकेलापन, रूढ़िग्रस्त जीवन जी रहे मनुष्य की अभिव्यक्ति कवि करता है। उनकी कविता आत्मकेंद्रित नहीं है, व्यक्तिकेंद्रित हैं, जिसके अनेक उदाहरण उनकी कविता में मिलते हैं। पर मर्ढेकर व्यक्ति में अधिक नहीं रमे। क्योंकि समाज को लेकर यह कवि अत्यंत संवेदनशील प्रतिक्रिया देता है। मर्ढेकर समाज के बहाने व्यक्ति की बात करते हैं। वे अनुभूति के नए सरोकार से पाठकों को जोड़ते हैं। जहाँ 'मी एक मुंगी' (मैं एक चींटी) कविता में व्यक्ति-जीवन की क्षुद्रता को दर्शाते हैं, वहीं वे समाज-जीवन की भयावह वास्तविकता से भी हमें अवगत कराते हैं। समकालीन यथार्थ से हमें परिचित कराते हैं। इसलिए उनकी कविता में कालबोध और मूल्यबोध बराबर लक्षित होता है। यही बोध कवि को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में एक बड़े कवि के रूप में सिद्ध करता है। महानगरीय जीवनबोध और प्रश्नाकुलता से कवि जुड़ा हुआ है, जिसकी सजग

 ISSN 0975-735X

अभिव्यक्ति उनकी कविता में हुई है। द्रष्टव्य है उनकी कविता, जो समाज में फूट डाल रहे नेताओं को संबोधित करते हुए लिखी गई है–

क्यों मचा रहे हो फूट।
क्यों खराब कर रहे हो स्वतंत्रता की कापी
स्वजनों के रक्त से हमेशा
लपलपाना।[4]

या इसी कविता में एक और संदर्भ प्राप्त होता है, जो सांप्रदायिकता के चेहरे को कवि बेनकाब करता है। 'अरे! हिंदू-मुसलमान। प्राण देश पर कुर्बान परंतु आपस की यह लड़ाई है लांछनास्पद। अल्लाह-हे राम।'[5]

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि अज्ञेय और मर्ढेकर का व्यक्तिवाद समाजोन्मुख है। दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता जरूर है, किंतु लक्ष्य एक ही है–लोककल्याण। दोनों कवियों में यह विश्वास पाया जा सकता है कि व्यक्ति ही समाज का मूलाधार है। व्यक्तिसत्य को अभिव्यक्त करना दोनों की कविता का लक्ष्य है। वैयक्तिकता और व्यक्ति-स्वतंत्रता आधुनिकता की दो मुख्य प्रेरणाएँ हैं, जिसकी वजह से उभय कवियों को आधुनिक हिंदी-मराठी साहित्य के प्रणेता के रूप में देखा जा सकता है।

महानगरीय जीवन-बोध

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में महानगरीय जीवन-बोध के अनेक चित्र अंकित हुए हैं। कवि अज्ञेय ने रोमांटिक कविता से छुटकारा पाने के बाद नगरीय बोध की अभिव्यक्ति कविता में की है। कवि जीवन-यथार्थ से टकराता है। कवि ने अपनी अनेक कविताओं में नगर-सभ्यता में पल रही विसंगतियों को उजागर किया है। नगर-जीवन की मशीनी सभ्यता, खोखलापन, मानवीय संबंधों में तनाव, जीवन में अनिश्चितता, असहायता आदि का सजग चित्रण किया है। कवि ने सभ्यता के नाम पर मनुष्य का हो रहा दोहन चित्रित किया है। अज्ञेय की 'उष:काल की भव्य शांति', 'साँप' तथा 'हरी घास पर क्षण भर' कविता-संग्रह की अनेक कविताएँ इसका साक्ष्य देती है। कवि ने आधुनिक सभ्यता के संदर्भ में नर-नारी के प्रणय-संबंधों की नई व्याख्या की है। यहाँ नगर-सभ्यता के प्रति गहरा व्यंग्य अभिव्यक्त हुआ है। मशीनों तथा वौज्ञानिक सभ्यता ने मनुष्य को कितना अकेला और असहाय बना दिया है, इसका सजीव चित्रण कवि करता है। नगर-सभ्यता ने प्रेम-संबंधों को जैसे नए ढंग से देखने के लिए बाध्य किया है। ऊपर उद्धृत कविताओं के अलावा 'हवाई यात्रा' और 'दफ्तर शाम' जैसी कविताएँ मशीनी सभ्यता के विषय को अभिव्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। नई काव्यभूमि से परिचित कराने का श्रेय अज्ञेय को देते हुए डॉ॰ नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, 'हरी घास पर क्षण-भर की कविताओं में अज्ञेय की संवेदना ने एक निश्चित स्वरूप ही ग्रहण नहीं किया, हिंदी को भी नई काव्यभूमि से परिचित करवाया। संवेदना व शिल्प, भाषा सभी दृष्टियों से इस संग्रह का परवर्ती कविता पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यांत्रिक सभ्यता और नगर-बोध की जितनी अभिव्यक्ति परवर्ती हिंदीकाव्य में हुई, उसका प्रारंभ इस काव्य-संग्रह में देखा जा सकता है।'[6] अलावा इसके 'इंद्रधनु रौंदे हुए' शीर्षक यंत्रसभ्यता के आक्रमण का संकेत करता है। इंद्रधनु सौंदर्य का प्रतीक है। यंत्र ने सौंदर्य-चेतना को जड़ बना दिया है। 'ऊँची उड़ान', 'पश्चिम के जनसमूह' और 'साँप' जैसी कविताएँ उनकी इसी चेतना की अभिव्यक्ति हैं। 'साँप'

कविता में कवि का यही कहना है कि नगर-सभ्यता ने व्यक्ति को सहानुभूतिहीन ही नहीं, विषैला बना दिया है। नगर-सभ्यता के प्रति वितृष्णा का भाव कवि में बार-बार उभरता है। 'हमारा देश' नामक कविता में उस शहरी सभ्यता पर व्यंग्य है, जिसके कारण सांस्कृतिक विघटन होता जा रहा है। सांस्कृतिक विघटन के इस दौर में कवि व्यक्ति की निजता को असुरक्षित महसूस कर रहा है। इसी बात को केंद्र में रखते हुए डॉ॰ नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं, 'आज के नागर जीवन, विशेषतया महानगरों के जीवन के प्रति अज्ञेय में वितृष्णा का भाव इसीलिए है कि, वहाँ निजता की सुरक्षा दूभर है, वहाँ की कृत्रिमता और मृषा संस्कृति की अनिवार्यत: विरोधी है।'[7] इसी संदर्भ को दर्शाने वाली अज्ञेय की काव्य पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं–

बड़े शहर के ढंग और हैं,
हम गोटे हैं वहाँ
दाँव गहरे हैं, उस चौपट के।

या 'बावरा अहेरी' संकलन की इसी शीर्षक की कविता द्रष्टव्य है–

वही जो तारे हैं, वही आकाश है।
किंतु यहाँ आसपास
घुमड़न है, त्रास है
मशीनों की गड़गड़ाहट में
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।

(बावरा अहेरी, पृ॰ 40)

अर्थात् कवि अज्ञेय ने औद्योगिक सभ्यता, मशीनी युग और भौतिक विकास की आपाधापी में असहाय मनुष्य को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसलिए नगरबोध उनकी कविता की एक मुख्य प्रवृत्ति के रूप में उभरी है।

कवि बा॰ सी॰ मर्ढेकर ने भी अपनी कविता में महानगरों में साँस ले रहे आम इंसानों के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं। मर्ढेकर का यह मानना है कि विज्ञानयुग के कई प्रतिकूल परिणाम मनुष्य-जीवन पर हुए हैं। मुंबई जैसे महानगर में जीते समय इसका अनुभव बड़ी तीव्रता से होता है। मानवीय संबंधों का टूटते जाना, स्त्रियों की दुर्दशा, मानवता की पल-प्रतिपल हो रही हत्या, अकेलापन और भय से आप्लावित मनुष्य-जीवन आदि का मार्मिक अंकन कवि करता है। मर्ढेकर की कविता में महानगर मुंबई बार-बार उभरता है। कवि ने मुंबई के यंत्रवत् विद्रूप, अशांत जीवन का अत्यंत जीवंत चित्रण किया है। यांत्रिकता, औद्योगिकरण और मशीनी सभ्यता को कवि बेहद संजीदा तरीके से व्यक्त करता है। महानगरीय जीवन में व्याप्त कोलाहल, रिक्तता, अकेलापन, परायापन आदि भावों की अभिव्यक्ति कवि ने की है। कवि महानगर के तमाम अंतर्विरोधों, विडंबनाओं तथा यातनाओं को चित्रित करता है। साथ ही इस महानगर की तंग गलियाँ, मुहल्ले, वहाँ का मध्यवर्ग, कामगार वर्ग, वेश्याओं की बस्तियाँ, उनका यांत्रिक जीवन आदि का मर्मग्राही अंकन कवि करता है। इस संदर्भ को दर्शानेवाली अनेक कविताएँ मर्ढेकर ने लिखी हैं। 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया' (कोलाहल से भरी तथा संकरी) 'जिथे मारते कांदेवाडी' (कांदेवाडी मुंबई), 'मी एक मुंगी' (मैं एक चींटी), 'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या' (नहाई हुई जैसी गर्भवती),

 ISSN 0975-735X

'पंक्चरली जरी रात्र दिव्यांनी' (पंक्चर हुई हो रात दीयों से), 'फलाटदादा' आदि कविताएँ संदर्भित हैं। 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोल्या' (कोलाहल से भरी तथा संकरी) कविता में कवि ने गिरगाँव की गलियाँ, वहाँ के लोग, उनका अंधकारमय जीवन, यंत्रवत् जीने का अभिशाप, परिस्थिति से परेशान आम मनुष्य आदि का प्रभावी चित्रण कवि ने किया है। मुंबई जैसे महानगर में चल रही वेश्यावृत्ति, स्त्री की असहाय एवं बेबस स्थिति और जीवन में व्याप्त एकरसता, नीरसता का चित्रण कवि ने किया है। इस शहर में उभर रहा आर्थिक विषमता का भयावह चित्र, भूख और बदहाली का मंजर, मूल से उखड़ जाने का दर्द, लाचारी, सांस्कृतिक दरिद्रता, मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त असहायता, अर्थशून्यता का प्रभावी चित्रण कवि ने किया है। मर्ढेकर की एक महत्त्वपूर्ण कविता है, जो इसी संदर्भ को दर्शाती हैं, 'पिपात मेले ओल्या उंदीर' (पीप में मरे जो गीले चूहे)। प्रस्तुत कविता द्रष्टव्य है–

मरे पीपे में गीले चूहे,
गर्दन गिरी, जैसे लचक गई हों,
होंठों पर होंठ मिले,
गर्दनें गिरीं बिना आसक्ति के।
गरीब बेचारे बिलों में जीए
पीप में मरे हिचकी बँधकर
दिन चला गया कंजई आँखें,
गात्रविंग और धो लेकर।[8]

कवि की एक और महत्त्वपूर्ण कविता है, जो महानगरीय बोध को व्यक्त करती है। कविता का शीर्षक है–'मी एक मुंगी' (मैं एक चींटी)। प्रस्तुत कविता में कवि ने मनुष्य को 'चींटी' की प्रतीकात्मकता में पेश किया है। 'चींटी' क्षुद्रता का प्रतीक है। मर्ढेकर मनुष्य-जीवन की क्षुद्रता को दर्शाते हैं।

तात्पर्य यही है कि अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता में नगरीय बोध के अनेक दृश्य उपस्थित हुए हैं। मर्ढेकर शहरी जीवन के प्रॉडक्ट हैं। अज्ञेय ने भी नगर-जीवन में व्याप्त अंतर्विरोधों को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। अर्थात् उभय कवियों की कविता में नगरीय संस्कृति के परिणामस्वरूप अभिव्यक्त जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। यह महत्त्वपूर्ण साम्य दोनों में दिखाई देता है।

भावुकता एवं बौद्धिकता का चित्रण

हिंदी के दार्शनिक कवि अज्ञेय और मराठी नवकविता के अग्रणी मर्ढेकर ने कविता के क्षेत्र में पूर्ववर्ती परंपरा को नकारते हुए खुद की राह बनाई। दोनों कवियों ने रोमांटिक काव्यधारा के विरुद्ध खड़े होकर एक नई काव्यभूमि का प्रवर्तन किया। परिणामत: काव्य जनजीवन के निकट आया। यहाँ आकर कवि मनुष्य-जीवन की यथार्थ संवेदनाओं को व्यक्त करने लगा। विशेषत: अज्ञेय व्यक्ति के आभ्यंतरिक यथार्थ का बखूबी चित्रण करने लगे। भावुकता को नकारते हुए (निर्जल नकार) इन दोनों कवियों ने बौद्धिकता का दामन पकड़ा। वस्तुत: बौद्धिकता, तर्क बुद्धिवाद, विवेकधर्मिता तथा प्रखर वैचारिकता आधुनिकता के पहचान-बिंदु हैं। इन दोनों कवियों ने बौद्धिकतामूलक यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया। अर्थात् बौद्धिकता के आग्रह ने भावुकता की

काव्यभूमि को नकारना शुरू किया। परिणामत: कविता के क्षेत्र में एक नई काव्यप्रवृत्ति का उदय हुआ। वस्तुत: अज्ञेय और मर्ढेकर जिस सामाजिक, राजनीतिक परिवेश में कविता लिख रहे थे, उस काल की स्थितियों का कायदे से विश्लेषण कर रहे थे। वे तत्कालीन परिस्थिति के भीतर पैठकर अपनी सघन अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। युद्ध के भीषण प्रभाव, औद्योगिक विकास की प्रक्रिया से उदित पूँजीवादी सभ्यता, वैज्ञानिक युग की त्रस्तता, चिड़चिड़ापन, यांत्रिकता आदि बातों के कारण भावुकता का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया। धीरे-धीरे कविता में भावना के स्थान पर बुद्धितत्त्व विराजित होता गया। इसी बौद्धिकता की वजह से कविता में प्रामाणिक एवं वास्तविक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होने लगी।

अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में भावुकता के दर्शन होते हैं। 'इत्यलम्' तक छायावादी संस्कारों में ही कवि पलता रहा। किंतु 'तारसप्तक प्रथम' सन् 1943 के प्रकाशन के पश्चात् कवि ने भावुकता को त्यागकर बौद्धिकता का आग्रह शुरू किया। इस परिवर्तन की सूचना 'तारसप्तक' के संपादकीय वक्तव्य में मिलती है। किंतु यह सच है कि अज्ञेय में कई बार भावुकता हावी होती हुई नजर आती है।

बा॰ सी॰ मर्ढेकर की काव्य-यात्रा में भी लगभग यही स्थिति दिखाई देती है। 'शिशिरागम' और 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटरे) में कवि की भावुकता, स्वच्छंदतावादी वृत्ति की झाँकी मिलती है। किंतु 'कांही कविता' (कुछ कविताएँ) और 'आणखी कांही कविता' (कुछ और कविताएँ) के प्रकाशन के पश्चात् कवि बौद्धिकता का आग्रह पकड़ने लगता है। मर्ढेकर की बौद्धिकता में मनुष्य-प्रेम अभिव्यक्त होता है। वे बौद्धिकता के माध्यम से मनुष्य समाज की ओर देखने का सशक्त प्रयास करते हैं। अर्थात् कहीं-कहीं बौद्धिकता आध्यात्मिक संवेदना में परिवर्तित होती हुई दिखाई देती है। तात्पर्य यही है कि उभय कवियों ने अपने सृजन-कर्म में भावुकता को त्यागकर तर्क-बुद्धिवाद को महत्त्व दिया।

समग्र जीवन-बोध

आधुनिकता समग्रता को महत्त्व देती है। वह जीवन की ओर अनेक आयामों से देखने का एक स्पष्ट दृष्टिकोण है। मर्ढेकर के काव्य में जीवन संपूर्ण आयामों को लेकर उपस्थित हुआ है। उनका काव्य जीवन का विस्तृत ब्योरा प्रस्तुत करता है। मर्ढेकर के काव्य में आधुनिक मनुष्य की पीड़ा है। जीवन के प्रति मर्ढेकर का दृष्टिकोण समग्र है। कवि एक साथ कितने आयामों से देखता है, इसका प्रमाण उनकी अनेक कविताएँ हैं। मध्यवर्गीय मनुष्य स्वप्नभंग, मोहभंग, कामगार वर्ग की पीड़ा, श्रमिकों की व्यथा, वेश्याओं का जीवन, गर्भवती स्त्री की वेदना, महानगरों का गंदगीपूर्ण जीवन, परिस्थिति का शिकार मनुष्य, अकेलेपन, यांत्रिक जीवन जीता हुआ मनुष्य, आध्यात्मिक अनुभूति, प्रेम की अनुभूति, दु:ख के क्षण, विरह के क्षण तथा मनुष्य की असहाय स्थिति का मर्मग्राही चित्रण कवि मर्ढेकर करते हैं। वस्तुत: वे जीवन को 'क्षण' के रूप में नहीं, विस्तृत एवं विशद् रूप में देखते हैं। वे अपनी कविता में जीवन के विविध पहलुओं की पहल करते हैं। उनकी अनेक कविताएँ इसके प्रमाण हैं। जैसे–'फलाटदादा', 'गोंधळलेल्या अन् चिंचोळया', 'पांडुर संध्या चौथ्या प्रहरी', 'न्हालेली जणु गर्भवती', 'अजुन येतो वास फुलांना' आदि कविताएँ इसके सुंदर उदाहरण हैं।

इसके विपरीत कवि अज्ञेय क्षणवादी हैं। वे क्षणानुभति को महत्त्व देते हैं। वे जीवन को

 ISSN 0975-735X

समग्रता में नहीं, टुकड़ों में, क्षणों में बाँटकर देखते हैं। अर्थात् अज्ञेय मनुष्य-जीवन में व्याप्त 'क्षण-बोध' को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् क्षणानुभूति के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं–

एक क्षण होने का, अस्तित्व का, अजरुाअद्वितीय क्षण।
होने के सत्य का, सत्य के साक्षात का, साक्षात के क्षण।
क्षण के अखंड पारावार का
आज हम आचमन करते हैं।[9]

मर्ढेकर की कविता में जीवन का विस्तार है, किंतु वह विस्तार हम अज्ञेय में नहीं पाते। क्योंकि अज्ञेय के काव्य में प्रकृति, अध्यात्म और वैयक्तिकता के प्रति अधिक महत्त्व दिखाई देता है। मर्ढेकर जीवन को बाँटकर नहीं, समग्रता में देखते हैं। किंतु अज्ञेय में क्षण के आग्रह में क्षणिकता का भाव नहीं हैं, बल्कि अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है।

प्रश्नाकुलता

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता मनुष्य-जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश डालती है। बेचैन, संत्रस्त, असहाय मनुष्य के प्रति ये दोनों कवि जवाबदेह हैं।

भारतीय समाज में तीसरा दशक अनेक प्रश्नों को लेकर आता है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थिति के चलते अनेक प्रश्न उपस्थित हुए। यंत्रयुग का आरंभ, राजनीतिक गुलामी, सांस्कृतिक विघटन, दो महायुद्धों की बर्बरता, अकेलेपन की यातना, लघुमानव का अस्तित्व तथा व्यक्ति के मानसिक उलझाव के परिप्रेक्ष्य में दोनों कवियों की कविता नए प्रश्न पैदा करती है। विशेषतया अज्ञेय की कविता में प्रश्नाकुलता का भाव बार-बार लौट आता है। कवि अज्ञेय अपने समय, समाज और संस्कृति की बुनियादी चिंताओं से जुड़े हुए हैं। वे अपनी कविता में मनुष्य-मात्र की चिंता करते हैं। यथार्थ से मुठभेड़ करते हैं। इसलिए अज्ञेय की कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि 'यह कविता अस्तित्व के जड़ों से फूटती है।' समकालीन प्रश्नों से रू-ब-रू होती है। 'व्यक्ति' को केंद्र में रखकर सार्वभौम सत्य का प्रकाशन करती है। वस्तुतः यह प्रश्नाकुलता आधुनिककाल की देन है।

कवि अज्ञेय ने 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' कविता-संग्रह की अनेक कविताओं में 'प्रश्नाकुलता' की अभिव्यक्ति दी है। व्यक्ति, उसका मानसिक जगत जीवन का सार्वभौम सत्य, नवरहस्यवादी स्वर और आसपास फैले, बिखरे जीवन-सत्यों के प्रति कवि प्रश्नाकुल है। यही भाव उनकी अनेक कविताओं में लक्षित होता है। जैसे–

प्यार है अभिशप्त,
तुम कहाँ हो नारी?
या
स्मृतिहीन, अपेक्षाहीन वर्तमान। ऐसा वर्तमान क्या
वर्तमान है–वही क्या?
या
तुम-तुम सागर क्यों नहीं हो?
मेरी आँखों में ज्यों प्रश्न उभर आया,

अपनी फहरती लटों के बीच से वह
पलकें उठाए हुए,
उसे न कारती हुई पर अपने उत्तर से,
मानों मुझे फिर से ललकारती हुई।

तात्पर्य यही है कि अज्ञेय की कविता में समकालीन प्रश्नों की गूँज सुनाई देती है। केवल इतना ही नहीं स्वयं कवि जीवन-यथार्थ से आकुल, संकुल और संतप्त भी है। इसी वजह से डॉ॰ रमेशचंद्र शाह लिखते हैं, 'निश्चय ही अज्ञेय जैसे साहित्यकार बिरले ही होते हैं, जो अपनी जमीन पर मजबूती से पैर जमाए रखकर दार्शनिक, भौतिकीविद् और मनोविश्लेषक की दुनियाओं से वास्तविक सहानुभूति और वास्तविक अभिज्ञता के आधार पर मुठभेड़ कर सकें और समग्र मनुष्य के विखंडन से संबंधित वे बुनियादी सवाल वे उनसे पूछ सके, जो कोई और शायद उनसे नहीं पूछता।[10]

ठीक इसी तरह मर्ढेकर की कविता में 'प्रश्नाकुलता' का भाव नजर आता है। कवि ने समाज जीवन के अनेक प्रश्नों को छूते हुए जीवन-यथार्थ से मुठभेड़ की है। कवि युद्ध की भीषणता, महानगरों के अंतर्विरोध, जीवन में व्याप्त विद्रूपताएँ, कोलाहल से भरी संकरी ज़िंदगी, स्त्री-जीवन की दुर्दशा, असहायता, बेबसी और लाचारी के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं। द्रष्टव्य है–

प्रेम के पटेरे
सौंदर्य का नयापन
खोजूँ?
आसपास, चारों ओर,
मुर्दों की राशि,
मशीन से आग,
गोलियों के पराग,
विमानों का आक्रमण,
बेचिराग मिले,
खून के ढेर
विकलांग चीख।[11]

या 'फलाटदादा' कविता में भी प्रश्नाकुलता अभिव्यक्त हुई है। प्रश्नाकुलता के माध्यम से कवि अपने युग को टटोलता है, 'स्व' की तलाश भी करता है। यह खोज मर्ढेकर की कविता में निरंतर दिखाई देती है। यही कारण है कि मर्ढेकर अपनी कविता के माध्यम से वर्तमान से टकराते हैं, युगीन संदर्भों की पड़ताल करते हैं।

कुल मिलाकार यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय और मर्ढेकर में प्रश्नाकुलता का भाव बड़ी तीव्रता से उजागर हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

अज्ञेय और मर्ढेकर में प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग-भाव नजर आता है। अज्ञेय जब कविता के क्षेत्र में आए, तब छायावादी कविता अपने उफान पर थी। जाहिर है, प्रारंभिक दौर में अज्ञेय पर छायावादी कवियों के प्रकृति-चित्रण का प्रभाव लक्षित होना। किंतु छायावादी कविता

 ISSN 0975-735X

का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया। अर्थात् यहाँ प्रकृति कवि पर नहीं, कवि प्रकृति पर हावी होने लगी। अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने प्रकृति को आधार बनाया। किंतु वास्तविकता यह है कि कवि बौद्धिकता, यथार्थ और सहज दृष्टिकोण का आग्रह करने लगा, जिससे उसके भीतर प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टि विकसित होती गई। कवि ने नंदादेवी के प्रकृति-सौंदर्य को देखकर अनेक कविताएँ लिखी हैं, जिसमें एक ओर प्रकृति के मनोहारी रूपों का वर्णन है तो दूसरी उजड़ते वनों को देखकर कवि 'इकॉलॉजी' की चिंता करता है। द्रष्टव्य है काव्य पंक्तियाँ–

ऊपर तुम नंदा
कटगिरे वन की चिटी-पट्टियों के बीच से
नए खाने-यंत्र की
भट्टी से उठे फंदे का धुआँ।[12]

कवि अज्ञेय प्रकृति-सौंदर्य में खो नहीं जाते, बल्कि प्रकृति के प्रति एक प्रकार की रागात्मक तटस्थता भी रखते हैं। कवि प्रकृति में मुक्त जीवन का सुख प्राप्त करना चाहता है। वह नगर-सभ्यता के कोलाहल से दूर प्रकृति-सौंदर्य में अपनी प्रिया को तलाशना चाहता है। यांत्रिक दबावों के बीच जी रहे मनुष्य की 'निजता' के क्षणों में जाना चाहता है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य-संग्रह की अनेक कविताएँ इसका प्रमाण हैं।

अज्ञेय प्रकृति में रहस्यात्मक सत्ता की अवस्थिति पाते नहीं, किंतु प्रकृति के द्वारा उन्मत्त स्थिति को अवश्य प्राप्त करते हैं। उनकी 'उन्मत्त' कविता इसका सहज प्रमाण दिलाती हैं।

मराठी कवि मर्ढेकर ने भी अपनी अनेक कविताओं में प्रकृति के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं। मर्ढेकर भी प्रकृति के अनुरागी कवि हैं। उन्होंने 'शिशिरागम' की अनेक कविताओं में प्रकृति की अनेक छवियाँ अंकित की हैं। 'झोपली ग खुळी बाळे', 'अजुन येतो वास फुलांना' तथा 'आला आषाढ़-श्रावण' शीर्षक से लिखी गई कविताओं में प्रकृति की अनेक रूपाकृतियाँ उभरी हैं। कवि मर्ढेकर प्रकृति के माध्यम से जीवन यथार्थ को अंकित करने का प्रयास करते हैं। 'अजुन येतो वास फुलांना' कविता में कवि ने जीवन आस्था का परिचय दिया है। द्रष्टव्य है काव्य-पंक्तियाँ–

अजुन येतो वास फुलांना
अजुन माती लाल चमकते
खुरटफा बुंध्यावरती चढुनि
अजुन बकरी पाला खाते

निष्कर्षत: अज्ञेय और मर्ढेकर की काव्य-संवेदना में प्रकृति-बोध पूरी तरह से अंकित हुआ है। जहाँ उभय कवियों ने प्रकृति को सहचरी के रूप में अंकित किया है।

आधुनिकता-बोध

अज्ञेय आधुनिक हिंदी-कविता के प्रणेता हैं। तीसरे दशक की तमाम घालमेल, विडंबना, उठापटक को पचाते हुए कवि आधुनिक मनुष्य को अपनी कविता में अंकित करता है। यंत्रयुग का आगमन, औद्योगिक सभ्यता के परिणाम, सामंती व्यवस्था का पटाक्षेप और पूँजीवादी व्यवस्था के

आगमन ने समाज मानस को प्रभावित किया। कवि अज्ञेय आधुनिक मनुष्य का अकेलापन, जड़ों से कटने का दर्द, यंत्रवत, भयावह ज़िंदगी तथा कुंठाओं से भरी मानसिकताएँ, इसी पृष्ठभूमि में उन्होंने कविता के क्षेत्र में कदम रखा। इस आधुनिकता-बोध में वे आधुनिक मनुष्य की जटिल, चुनौतिपूर्ण ज़िंदगी को करीब से देख रहे थे। मनुष्य की जटिल, यंत्रवत् एवं कुंठाग्रस्त (मानसिक) जीवन के चलते कवि इन तमाम अनुभूतियों को व्यक्त करता है। अर्थात् इसके पूर्व समाज के बाह्य जीवन पर प्रकाश डाला जा रहा था। अज्ञेय व्यक्तिसत्य और व्यक्ति की दमित कुंठाओं को लेकर आते हैं। व्यक्ति को बाह्य की अपेक्षा भीतर से अंकित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए उन्होंने संवेदना, भाव, भाषा, शैली के प्रति विद्रोह किया। नई संवेदनाएँ, नई भाषा और नव्य शैली का प्रवर्तन किया। अनुभूति का विशाल क्षेत्र लेकर वे आए। कवि प्रकृति में अधिक देर तक नहीं रमा। रौमांटिसिज्म के प्रभाव को झाड़कर 'प्रयोगशीलता' का दामन पकड़ लेता है। जहाँ से अनुभूति में दर्शन को घुलाने की राह निकालता है। साहीजी के शब्दों में 'त्रासजनित विवेक' को प्रस्फुटित करने का प्रयास करता है।

अर्थात् मराठी साहित्य में भी बा॰सी॰ मर्ढेकर 1940 तक आते-आते 'नवकविता' का प्रवर्तन करते हैं। आधुनिकता के मूल्य को लेकर सटीक भाष्य करने लगते हैं। कवि मर्ढेकर ने संत्रस्त, परिस्थिति की मार झेलता मनुष्य, यंत्रवत् जीवन, अनुभूति का नया सरोकार स्वात्मबोध, प्रश्नाकुलता और युगीन जीवन-संदर्भों की तलाश कवि करने लगता है। 'कांही कविता' (कुछ कविताएँ) और 'आणखी काही कविता (कुछ और कविताएँ) इन दो संकलनों में संगृहीत कविताओं में आधुनिकता के कई आयाम खुलते नजर आते हैं। कवि ने महानगरों की दुर्दशा, कामगारों की दुर्व्यवस्था, महिलाओं की बेबसी, यंत्रों का मनुष्य को संवेदनहीन बनाना, तर्कप्रधानता और व्यक्ति की भीतरी क्षमताओं का प्रस्फुटन, जहाँ व्यक्ति-जीवन की क्षुद्रता का भी आयाम होता है। मर्ढेकर ने आधुनिक मनुष्य की विडंबनामय ज़िंदगी के अनेक चित्र उकेरे हैं। विशेषत: दो महायुद्धों की विभीषिका को झेलता हुआ मनुष्य, तमाम अभावों के बीच साँस लेता हुआ मनुष्य, यथार्थ से टकराते हुए परिस्थिति परवशता में जीता हुआ मनुष्य तथा सँकरी, विडंबनामय ज़िंदगी जीने के लिए विवश मनुष्य का चित्रण मर्ढेकर ने किया।

अर्थात् उभय कवि विविध संवेदनाओं की अभिव्यक्ति देनेवाले कवि हैं। इनमें रहस्य, समाज, आत्मान्वेषण के भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दोनों की कविता में 'प्रकृति' और 'प्रेम' भाव का सजग रूप दिखाई देता है। दोनों में प्रगतिशीलता के तत्त्व परिलक्षित होते हैं। इसलिए आधुनिक हिंदी-मराठी कविता के प्रणेता के रूप में दोनों को देखा जाता है।

अस्तु, इन दोनों कवियों की कविता का अवलोकन करने के पश्चात् ये महत्त्वपूर्ण तथ्य लक्षित होता है कि उभय कवियों ने आधुनिक मनुष्य की संतप्त ज़िंदगी को कविता में स्थान दिया है। आत्मान्वेषण, सृजन, प्रयोग और अकेलापन का बोध दोनों की कविता में नजर आता है, जिसकी वजह से दोनों की कविता में आधुनिकता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

अनेकार्थसूचकता एवं क्लिष्टता

निस्संदेह, अज्ञेय और मर्ढेकर के काव्य में अनेकार्थसूचकता एवं क्लिष्टता के दर्शन होते हैं। दोनों के काव्य में अनेकार्थबोध होता है। पर क्लिष्टता के अलग-अलग कारण हैं। अज्ञेय के उत्तरवर्ती

 ISSN 0975-735X

काव्य में नव्यरहस्यवाद के स्वर ने आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति की, जिसकी वजह से दार्शनिक विचार कविता में संलग्न हो पाते हैं। परिणामत: कविता की भाषा जनसामान्य से दूर जाती है। दूसरी वजह है, विदेशी संस्कृति, संदर्भों एवं प्रतीकों का प्रयोग। साथ ही कविता आत्मबोध, आत्मान्वेषण और व्यक्ति के मानसिक जगत के चित्रण में अधिक रमी है। यही कारण है कि कविता अतिसूक्ष्म भावों, सूक्ष्म सौंदर्यबोध और मनोविश्लेषण शास्त्र के सिद्धांतों का निरूपण करती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए अज्ञेय का 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की अधिकतर रचनाएँ।

लेकिन मर्ढेकर की कविता में अनेकार्थसूचकता एवं दुरूहता या क्लिष्टता के अलग कारण हैं। उनका मानना है कि यंत्र-संस्कृति के आगमन ने व्यक्ति के जीवन को जटिल बनाया, अनुभूति में सहजता की अपेक्षा द्वंद्वमय जीवनाभूतियाँ अधिक रहीं। साथ ही आधुनिक मनुष्य की आपाधापी, अकेलापन, असहायता और संत्रास ने उसकी संवेदना में गहराई आती गई। परिणामत: कवि जिन बिंबों, प्रतीकों और उपमाओं का प्रयोग करता है, उनमें उलझाव अधिक है। परिणामत: कविता समझने में, संदर्भों को तलाशने में क्लिष्ट लगती है। अर्थात् दोनों कवियों की कविता में अनेकार्थसूचकता (वस्तुत: यह कविता की सबसे बड़ी ताकत है) और क्लिष्टता का भाव नजर आता है।

प्रणयानुभूति का भाव

अज्ञेय और मर्ढेकर की कविता प्रेमिल हृदय की अनुरागपूर्ण संवेदनाओं से ओतप्रोत है। वैयक्तिक प्रेमभाव के अनेक चित्र दोनों कवियों ने अंकित किए हैं। यह प्रेम कभी लौकिक तो कभी अलौकिक स्तर पर अभिव्यक्त होता है। अज्ञेय के काव्य में प्रणय की ऋजुता और आर्द्रता और सौंदर्य है। वैयक्तिक प्रेम-संवेदना, कल्पना का वायवीलोक और आध्यात्मिक उदात्त-भावना का अविष्कार कवि ने किया है।

अज्ञेय वस्तुत: प्रेम के चितेरे रहे हैं। स्वच्छंदतावादी कवियों के प्रभाव ने उनकी आरंभिक कविता में प्रणय का भाव सहज रूप में अंकित हुआ है। किंतु उत्तरवर्ती प्रेम-संबंधी कविताओं में जटिल मन:स्थिति का सम्मिलन हुआ है। अर्थात् आलोचकों का मानना है कि यही रोमांटिक चेतना तत्पश्चात रहस्यवाद का रूप धारण कर लेती है। किंतु सच्चाई यही है कि कवि की साधनात्मक प्रवृत्ति आत्मा के सत्य की ओर उन्मुख हुई है।

मर्ढेकर ने अपनी आरंभिक कविताओं में प्रणय-भावना की स्वत:स्फूर्त अभिव्यक्ति की है। 'शिशिरागम' तथा 'प्रेमाचे लव्हाळे' (प्रेम के पटेरे) में कवि ने अपनी अज्ञात प्रेमिका 'सुहास' को संबोधित करते हुए अनेक कविताएँ लिखी हैं। दोनों कवियों के अपनी प्रेमिका से संबोधित दो चित्र-

अज्ञेय– जिसे कुछ भी, कभी कुछ से नहीं सकता मार
वही लो, वही रक्खो साज सँवार
वह, कभी न बुझने न वाला
प्यार का अंगार।[13]

मर्ढेकर– हाँ हाँ थांब! नको सुहास,
गमवूं तोंडातली मौक्तिके,
देवाच्या घरचाच न्याय असला!

प्रश्नास दे उत्तर
झाला खेळ अता पूरे!
वद असे धिक्कारुनी कौतुके[14]

तात्पर्य यही है कि उभय कवियों ने अपनी कविता में 'प्रणयानुभूति' के भाव को सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

कुल मिलाकर डॉ॰ नंदकिशोर आचार्य के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि, 'वस्तुत: अज्ञेय हिंदी के प्रथम समर्थ कवि हैं, जिन्होंने अपनी संवेदना को विज्ञान के अधुनातन शोधों एवं दर्शन की समस्त पूर्वी और पश्चिमी परंपरा से निरंतर संस्कारित किया है और इस प्रभाव ग्रहण को मुक्तमन से स्वीकार भी किया है।'[15] यही बात संवेदना की दृष्टि से मर्ढेकर पर भी लागू होती है। मर्ढेकर ने अपनी कविता में संवेदना की वैविध्यता को महत्त्व दिया है। कवि खुलकर विविध संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है। इसलिए डॉ॰ केशव सद्रे ने मर्ढेकर को 'अभिजात संवेदनाओं का कवि' कहा है। इसलिए उनकी कविता में प्रकृति-सौंदर्य, आधुनिक मनुष्य के जीवन में आई असंबद्धता, निरर्थकता, भय, अकेलापन, विज्ञान और मनुष्य की बुद्धि में द्वैतभाव आदि संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ

1. समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 46
2. आत्मनेपद, अज्ञेय, अंतिम पृष्ठ
3. सदानीरा भाग-2, अज्ञेय, पृ॰ 262
4. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र॰ 6, पृ॰ 29
5. मर्ढेकर की कविता, मर्ढेकर, कविता क्र॰ 6, पृ॰ 29
6. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ॰ 47
7. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ॰ 55-56
8. कुछ कविताएँ, बा॰ सी॰ मर्ढेकर, कविता क्र॰ 21, अनु॰ डॉ॰ रणसुभे
9. अज्ञेय, सदानीरा भाग-1, नयी कविता एक संभाव्य भूमिका, पृ॰ 283
10. अज्ञेय का कवि-कर्म, रमेशचंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ॰ 60
12. स॰ ही॰ वा॰ अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, नंदादेवी-2, पृ॰ 308
13. स॰ही॰वा॰ अज्ञेय, सदानीरा भाग-2, अंगार, पृ॰ 154
14. मर्ढेकरांची कविता, मर्ढेकर, पृ॰ 11
15. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा, पृ॰ 30

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर
जि. लातूर (महाराष्ट्र)
मो॰ 094032 49804
Email : satishvyadav@rediffmail.com

ISSN 0975-735X

हिंदीकाव्य में गीतिकाव्य की परंपरा

डॉ॰ दीप्ति
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हिंदू कालेज, अमृतसर (पंजाब)

गीत मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। गीतों से मानव तो क्या, जीव-जंतु भी प्रभावित होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह तथ्य प्रमाणित किया है। गीत मानस-पटल पर ऐसा प्रभाव छोड़ते हैं कि उन्हें सुनने तथा बोलने वाले सुख की अनुभूति करते हैं। यही कारण है कि प्राचीनकाल से गीतिकाव्य की धारा साहित्य में निरंतर चलती आ रही है। हमारे प्राचीन वेदों–ऋग्वेद संहिता की ऋचाओं, सामवेद संहिता के मंत्रों, उपनिषद की स्तुतियों और बौद्धों की कथाओं में गीतिकाव्य की विशेषताएँ स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती हैं। गीतिकाव्य में रचनाकार अपने व्यक्तिगत अनुभवों को मार्मिक रूप से संगीतमय रूप में उपस्थित करता है। गीतिकाव्य में संक्षिप्ता, आत्माभिव्यक्ति, मार्मिकता और भावना की एकता पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ संगीत की लय और ताल की योजना पर भी ध्यान दिया जाता है। गीतिकाव्य मुक्तक काव्य के रूप में उपलब्ध होता है। महादेवी वर्मा के अनुसार, 'सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'[1]

हिंदी साहित्य के आदिकाल की रचनाओं में भी हमें गीतिकाव्य की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। आदिकाल में अधिकतर वीरभावना-प्रधान रचनाएँ लिखी गईं, जिससे राजा और प्रजा दोनों को युद्ध करने की प्रेरणा मिलती थी। इस काल में कवि जगनिक की रचना 'आल्हाखंड' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसकी रचना ओजपूर्ण वीर गीत के रूप में की गई। इन वीर गीतों की रचनाओं के अतिरिक्त सरस गीतों की रचना भी इस युग में मिलती है। इस दृष्टि से विद्यापति की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन है। इनकी 'पदावली' से एक उदाहरण निम्नलिखित है–

छांडु कन्हैया मोर आँचर रे
काटत नव सारी।
अपजस होएत जगत भरि है
जनि करिअ उघारी।[2]

'विद्यापति के गीतों में नैतिकता, रागात्मकता, संक्षिप्तता, भावों की एकता, काल्पनिकता, संगीतात्मकता आदि गुण विद्यमान हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे हिंदी साहित्य में अपना कोई सानी नहीं रखते।'[3]

आदिकाल की अपेक्षा भक्तिकाल में गीतिकाव्य का बाहुलय विकास हुआ। इस काल

में गीतिकाव्य को व्यवस्थित रूप मिला। निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख कवि कबीर के काव्य में भी गीतिकाव्य की विशेषताएँ झलकती हैं। प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि कबीर ने स्वयं को पत्नी और परमात्मा को पति रूप में मानते हुए आध्यात्मिक मिलन में माया का विरोध किया है। 'कबीर साहब ने अपने पदों के संबंध में स्वयं एक स्थल पर 'गीत' शब्द का प्रयोग किया है। जहाँ वे कहते हैं कि 'तुम यह न समझो कि मैं केवल 'गीत' की रचना कर रहा हूँ। इसमें मेरे ब्रह्म-संबंधी निजी विचार भी निहित हैं–

तुम्ह जिनि जानौ गीत है, यह निज ब्रह्म विचार।[4]

निर्गुण भक्तिधारा के कवि गुरु नानकदेव जी रचनाएँ 'आसा दी वार', 'रहिरास' तथा 'सोहिला' गीतिकाव्य की दृष्टि से प्रमुख रचनाएँ हैं। उनके राग-रागनियों में बद्ध अनेक पद 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में भी संकलित हैं। 'सच्चे हृदय से निकले हुए भक्त के अत्यंत सीधे उदगार और सत्य के प्रति दृढ़ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं। यह नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया है।'[5] उनके द्वारा रचित पद यहाँ प्रस्तुत है–

आपे जाणै आपे दोई, आखहि सि भि केई केइ
जिसनौ रखसे सिकति सालाह, नानक पातिसाही पातिसाहुं।[6]

भक्तिकाल की कृष्णकाव्यधारा के प्रतिनिधि कवि सूरदास ने भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को अपना इष्ट मानकर उनके प्रति अपने भावों को सफलतापूर्वक गीतिकाव्य के माध्यम से चित्रित किया। इन्होंने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की बाललीला, रासलीला संबंधी पदों को अपनी प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' में प्रस्तुत किया। 'सूर की कविता में संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहे हैं। सूर के गीत सहृदय संवेद्य हैं। उनमें एक अनुपम तन्मयता और भावानुभूति है।'[7] श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा से संबंधित संगीतमयी उक्ति निम्नलिखित है–

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ
मोसौ कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायौ।[8]

प्रसिद्ध भक्तिन मीराबाई ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति विरह और मिलन के उल्लास से संबंधित भावनाओं को संगीतमय पदों में अभिव्यक्त किया है। गीतिकाव्य की दृष्टि से मीराबाई के पद श्रेष्ठ बन पड़े हैं–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल
मोहनि मूरत साँवली सूरत नैना बने बिसाल
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।[9]

भक्तिकाल के प्रख्यात भक्त और कवि तुलसीदास ने भगवान राम की भक्ति से संबंधित भावनाओं को गीतिकाव्य के माध्यम से सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। उन्होंने श्रीराम के प्रति विनय-भाव के पदों को विभिन्न राग-रागनियों में बाँधकर लिखा है। इनके गेय पदों में प्रसंगानुकूल कोमलता और कर्कशता दोनों मिलती हैं। गेयता की दृष्टि से इनकी 'विनयपत्रिका' अत्यंत उत्तम बन पड़ी है। भरत की आत्मग्लानि से संबंधित गेय पद प्रस्तुत है–

जो पै हौं मातु मते ह्वै हौं।

 ISSN 0975-735X

तो जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ह्वै हौं।[10]

भक्तिकाल के पश्चात रीतिकाल के राज्याश्रित कवियों ने अधिकतर छंदोबद्ध मुक्तक रचनाओं का ही प्रणयन किया। अत: इस काल में भक्तिकाल की अपेक्षाकृत गीतिकाव्य कम लिखा गया।

शृंगाररस के आचार्य मतिराम की रचनाओं में प्रमुखत: शृंगाररस और नायिका-भेद को संगीतमय रूप में प्रस्तुत किया गया है। छंदों में विषयानुरूप संगीत की सृष्टि ने तद्गत बिंबों और उनकी अभिव्यक्ति को जिस रूप में ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया है। वह इस काल के गिने-चुने कवियों की रचनाओं में ही देखने को मिलती है–

कुंदन कौ रंग फीकौ लगै, झलकै सब अंगन चारु गुराई
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई।[11]

रीतिकाल के 'प्रेम की पीर' के कवि घनानंद की रचनाओं में उनके दो रूपों–सुजान के प्रेमी और श्रीकृष्ण के भक्त के दर्शन होते हैं। संगीत के अच्छे ज्ञान के कारण उनके पद राग-रागनियों में बँधे हुए परिलक्षित होते हैं। कृष्णचरित-संबंधी एक पद निम्नलिखित है–

नंदलाला सो खेलो होरी।

X X X

प्रान-जीवन 'आनंदघन' पिय को गहि राखौ पन डोरी।[12]

रीतिकाल की अपेक्षा आधुनिककाल में गीतिकाव्य का विभिन्न रूपों में वर्णन हुआ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भक्ति, सामाजिक चेतना, प्रकृति-चित्रण तथा देशप्रेम आदि विविध विषयों को लेकर प्रचुर मात्रा में काव्य-प्रणयन किया। उन्होंने छंदोबद्ध कविताएँ तो लिखीं ही, परंतु साथ ही गेय पद-शैली का प्रयोग भी अपनी कविताओं में किया। 'हिंदी काव्य-क्षेत्र में साक्षात् चंद्रावली के अवतार रसिक कलाकार भारतेंदु की ब्रजमाधुरी आज भी बरसाने की गोपांगना के स्वर में स्वर मिलाकर अपनी धुन में मानो गाती जा रही है। एक पद प्रस्तुत है–

बोल्यौ करै नुपुर श्रवन के निकट सदा
पद तल लाल मन मेरे बिहरयो करै
बाती करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम मुख
मन मुसकानि मंद मनहि हँस्यो करै।[13]

राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्ध मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति की महानता के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना का चित्रण तथा इतिहास की महान उपेक्षित नारी को अपनी रचनाओं में गौरवान्वित किया है। गीतिकाव्य की विशेषताओं को दर्शात इनकी कृति 'यशोधरा' में यशोधर के विरहवर्णन पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस मार्मिक कृति के प्रसिद्ध गीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं–

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में
क्षात्र - धर्म के नाते
सखि वे मुझसे कहकर जाते।[14]

छायावाद के आधारस्तंभ जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में भारत के गौरव, देश-प्रेम की भावना, इतिहास और कल्पना के सामंजस्य का सुंदर चित्रण मिलता है। इनकी रचनाओं–आँसू, लहर, कामायनी में भी गीतात्मकता का पूर्ण समावेश है। इनके संग्रह 'लहर' का गीत 'बीती विभावरी जाग री' उत्कृष्ट गीत है–

बीती विभावरी जाग री
अंबर पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी

x x x

लो, यह लतिका भी भर लाई मधु मुकुल नवल रस गागरी।[15]

आधुनिक कवि निराला ने अपनी रचनाओं में नारी-सौंदर्य, रहस्यवाद और प्रगतिवाद, श्रृंगार, देश-प्रेम तथा प्रकृति को सफलतापूर्वक गीतात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। निराला ने 'बेला', 'अर्चन' तथा 'गीतिका' में गीतों से जुड़े विविध प्रयोग किए हैं। डॉ॰ बच्चनसिंह ने 'निराला' के गीतों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया है। यथा–प्रार्थना-प्रधान, नारीसौंदर्य-संबंधी, प्रकृति-चित्रण संबंधी, दार्शनिक गीत और राष्ट्रीय गान। 'अनामिका' संग्रह की 'सरोज-स्मृति' को हिंदी का श्रेष्ठतम शोकगीत कहा जाता है। 'अनामिका' रचना में संगृहीत गीत 'सच' का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

यह सच है
बार-बार हार-हार मैं गया

x x x

नहीं फूल जीवन अविकच है
यह सच है।[16]

आत्मानुभूति के कवि हरिवंशराय बच्चन की रचनाओं–'निशा-निमंत्रण', 'एकांत संगीत' और 'मिलनयामिनी' में कवि ने अपने सुख-दुख, सौंदर्य और प्रेम के गीतों के साथ-साथ सामाजिक विसंगतियों के प्रति विद्रोह भी किया है–

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिपल
मनुज पराजय के स्मारक है
मठ, मस्जिद, गिरजाघर।[17]

प्रसिद्ध कवि नरेंद्र शर्मा ने चित्रात्मकता और आत्मीयतायुक्त गीत लिखे। इनके गीत मुख्यतः प्रकृति, मानव केंद्रित हैं। इनकी रचना 'पलाशवन' से विरह-मिलन की अनुभूतियों से संबंधित एक उदाहरण प्रस्तुत है–

कच्चे धागे-सा सुख अपना
टूट गया सो टूट गया।[18]

कुछ समय पश्चात नवगीत आंदोलन अस्तित्व में आया। कुछ कवियों ने अपने गीतों को नया घोषित करते हुए उनमें नए छंद, नए प्रतीक, नई भाषा, नए अप्रस्तुत-विधान को प्रस्तुत करने का दावा किया। इनमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, नीरज, शंभुनाथसिंह, रवींद्र भ्रमर, भारतभूषण

अग्रवाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से अज्ञेय के 'हरी घास पर क्षण भर' गीत का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद[19]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक गीतिकाव्य हिंदी साहित्य का अभिन्न अंग रहा है। चूँकि गीतिकाव्य मानव के मानस-पटल पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम होता है, अतः भविष्य में भी गीतिकाव्य के और अधिक समृद्ध होने तथा प्रसार की आशा है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1987 ई॰, पृ॰ 56
2. प्राचीन कवि, विश्वंभर मानव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965, पृ॰ 51
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : आदिकाल एवं भक्तिकाल, डॉ॰ अविनाश शर्मा, पृ॰ 62
4. कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, 2011, पृ॰ 300-301
5. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ॰ 159
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र, पृ॰ 147
7. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1977, पृ॰ 302
8. प्राचीन कवि, विश्वंभर मानव, पृ॰ 120
9. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, सं॰ 2007, पृ॰ 185
10. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, पृ॰ 243
11. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र, पृ॰ 346
12. प्राचीन कवि, विश्वंभर मानव, पृ॰ 247
13. आधुनिक हिंदी कवियों की काव्य-कला, डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1961, पृ॰ 22
14. हिंदी के आधुनिक कवि, रवींद्र भ्रमर, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1966, पृ॰ 28
15. वही, पृ॰ 52
16. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेंद्र, पृ॰ 55
17. वही, पृ॰ 624
18. वही, पृ॰ 625
19. हिंदी के आधुनिक कवि, रवींद्र भ्रमर, पृ॰ 208

अज्ञेय की कविताओं में छायावादोत्तर विश्वचेतना का प्रभाव

डॉ॰ गायत्री

अज्ञेय कवि ऐसे थे, जो छायावाद और प्रगतिवाद दोनों के मिलन-बिंदु पर थे, इसलिए इनकी कविताओं में दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हुई है। छायावाद की सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव नई कविता पर पड़ा। प्रगतिवाद के आविर्भाव में साहित्यिक परंपराओं के साथ राजनीतिक और आर्थिक आंदोलन भी विद्यमान थे। इस काव्य-प्रवृत्ति के समर्थ रचनाकारों के रूप में अज्ञेय कवि का नाम उल्लेखनीय है। आधुनिक युग में अज्ञेय की रचना पर औद्योगिक सभ्यता का काफी प्रभाव पड़ा है। एक व्यापक स्तर पर पूँजी का संचय और उत्पादन के साधनों का निर्माण आरंभ हुआ। इस औद्योगिक सभ्यता के परिणाम की चर्चा करते हुए डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ ने लिखा है–'विश्व-इतिहास में पहली बार मनुष्य मशीनों का दास हुआ। पहली बार रेनैसा का आरम्भिक कृषकवर्ग, व्यापारी-वर्ग में रूपांतरित हो गया। पहली बार उच्च मानवतावाद की परिणति 'व्यक्तिवाद' में हुई। फलस्वरूप पहली बार अकेले मनुष्य और अव्यवस्थित समाज के बीच 'परायापन' की भीषण समस्या आ खड़ी हुई। पुराने आदर्श और प्रारूप अनुपयोगी तथा अप्रामाणिक हो गए।'[1] अभिप्राय: यह है कि परंपरागत मूल्यों में बदलाव आरंभ हुआ। औद्योगीकरण के फलस्वरूप सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन पूँजीवाद, शहरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण और समाजवाद के रूप में प्रकट हुआ। पूँजीवाद के कारण पूँजी का संचय शुरू हुआ और समाज में पूँजीपति और श्रमिक के बीच की खाई भी चौड़ी हुई। 'शहरीकरण' में नगरों में यातायात और व्यापार की सुविधाओं का अभिवर्द्धन हुआ तथा कारखाने भी वहीं संस्थापित हुए। काफी संख्या में लोग गाँव छोड़कर शहर आए। शिक्षा-दीक्षा, नौकरी, व्यवसाय सबके लिये लोग शहरों की ओर मुड़े और शहर क्रमश: विकसित होने लगे। उद्योगों के विकास और शहरों की अभिवृद्धि के साथ 'बेरोजगारी' की समस्या भी सामने आई। नए-नए यंत्रों के आविष्कार से मनुष्य का स्थान मशीनों ने ले लिया। यंत्रीकरण के बाद गृहउद्योग नष्ट होने लगे। अत: शहरों में बेरोजगारी की समस्या भीषण रूप से उपस्थित हो गई। औद्योगीकरण के साथ ही 'विशेषीकरण' की प्रवृत्ति बढ़ी। पहले एक ही व्यक्ति कई काम करता था, किंतु अब किसी विशेष काम में प्राप्त योग्यता और क्षमता को ही विशिष्टता दी गई।

अज्ञेय ने जीवन में मच रही आपा-धापी का वर्णन 'शरणार्थी-5: रुकेंगे तो मरेंगे' नामक कविता में किया है। राष्ट्र के विकास से औद्योगीकरण स्वत: बढ़ता चला गया, जिसके कारण

 ISSN 0975-735X

लोगों की विचारधारा भी गतिशील हो गई। जीवन में गति को ही सब-कुछ मानते हुए अज्ञेय कहते हैं कि मनुष्य औद्योगीकरण के कारण जीतने की होड़ में भागा जा रहा है। भागना-भागना और केवल भागना ही उसकी नियति बन गई है–किसी को यह भी ज्ञात नहीं है कि किस दिशा में भागना है–

भागो, भागो, चाहे जिस ओर भागो
अपनी नहीं है कोई, गति ही सहारा यहाँ
रुकेंगे तो मरेंगे।[2]

अज्ञेय ने औद्योगीकरण के बुरे परिणाम को बताने का प्रयत्न किया है। श्रमिक-जीवन इन नारकीय यांत्रिक चक्कियों में अहर्निश पिसता रहता है, मानव द्वारा निर्मित यंत्र ही मानव को छलता है, दलता है और उसकी मेधा को जड़ीभूत करता है। इस प्रकार मानव-जीवन इन चक्कियों में अविराम पिस रहा है। अवकाश और विश्राम के क्षण कभी नहीं प्राप्त होंगे। वह मात्र मृग-तृष्णा है, एक मानसिक भ्रम है–

यंत्र हमें दलते हैं और हम अपने को छलते हैं,
थोड़ा और खट लो, थोड़ा और पिस लो
यंत्र का उद्देश्य तो बस शीघ्र अवकाश, और अवकाश,
एक मात्र अवकाश है।[3]

कवि ने 'सबेरे-सबेरे' कविता में नगरीय सभ्यता का वर्णन मार्मिक ढंग से किया है। उनके अनुसार नगरीय सभ्यता के प्रसार के साथ मनुष्य का जीवन प्रकृति से कितना दूर चला गया है कि अब प्रातःकाल होते ही बुलबुल, कोयल या अन्य चिड़ियों की मधुर ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। शहरीकरण के कारण सभी कुछ धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है–

सबेरे-सबेरे,
नहीं आती बुलबुल,
न श्यामा सुरीली
न फूटकी, न दँहगल
सुनाती है बोली
नहीं फूलसुँघनी,
पतेना-सहेली
लगाती है फेरे।[4]

महानगरीय जीवन के ये प्रपंच-प्रदर्शन अंदर कुछ और बाहर कुछ शीघ्र ही प्रकाश में आ जाते हैं। 'दफ्तर: शाम' कविता में अज्ञेय ने शहरीकरण के कारण अपनाए जाने वाले दुर्व्यसनों का ही वर्णन किया है। प्राकृतिक तत्त्वों से छूटकर लोग नशा या उससे संबंधित सामग्री का सेवन करते हैं–

बीड़ी-सिगरेट फूँक आते हैं
या कि पान खाते हैं
और जिस देह में है खून नहीं, रसना में रस नहीं,
उसकी लाल पीक से दीवारें रंग आते हैं।[5]

आज के नगर-जीवन विशेषत: महानगरों के जीवन के प्रति अज्ञेय में वितृष्णा का भाव इसलिए है कि वहाँ निजता की सुरक्षा दूभर है। वहाँ की कृत्रिमता और मृषा संस्कृति की अनिवार्यत: विरोधी है। इस जीवन में रहने वाले का कुंठाओं से ग्रसित होना अधिक संभव है। समूह के साथ रहते हुए वह उससे जुड़ नहीं पाता। अत: अकेलेपन और अवशता की अनुभूति उसे घेर लेती है।

कवि ने 'साँप' कविता में समाज-विरोधी तत्त्वों से प्रश्न किया है कि तुमने मानवता तो नहीं सीखी, सदाचरण और सहृदयता तो तुमने नहीं पाई, केवल इतना बता दो कि पाशविकता, दुराचरण और कठोरता कहाँ से सीख ली? 'साँप' का प्रतीक लेकर कवि ने संपूर्ण आधुनिकता की विकृति को प्रकट कर दिया है–

'साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं-
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूँछूँ (उत्तर दोगे)?
तब कैसे सीखा डसना, विष कहाँ पाया।'[6]

कवि की 'साँप' कविता समूची विषमता और विडंबना को चित्रित करती हुई आधुनिक व्यंग्यकारों के लिए उदाहरण है।

'अज्ञेय ने शिक्षा, जाति-प्रथा, जाति-भेद, नर-नारी, निर्बल-सबल, धनी-निर्धन के बीच के वर्गभेद को रेखांकित किया और 'घृणा का गान' की संज्ञा दी।'[7]

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में पूँजीवाद का विरोध किया है और शोषण का अंत करने का प्रयास किया है। किसान की जीवन-भर की मेहनत का आनंद उठाते महाजन, निरीह जनता की बेबस स्थिति का चित्रण कवि कर रहा है। उन्हीं के शब्दों में–

बह चुकीं बहकी हवाएँ चेत की
कट गईं पूलें हमारे खेत की
कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की
गिन रहा होगा महाजन सेंत की।'[8]

कवि ने पूँजीवादी वर्ग का विरोध करके शोषितों के प्रति सहानुभूति को व्यक्त किया है। चैत् मास की हवाओं के पश्चात् किसानों की मेहनत उनकी हरियाली के रूप में लहराएगी। ऐसे में शोषकवर्ग महाजन उस हरियाली को लूटकर उसे रात तक दीपक के प्रकाश में संभालेंगे और बेचारे किसान जो इस समय का इंतजार कर रहे थे, वे तब भी उन महाजनों के सहारे ही रह जाएँगे। 'कृषि-प्रधान देश होने पर भी देश में कृषकों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। अधिकांश किसान भूमिहीन थे, क्योकि भूमि पर जमींदार महाजन आदि का कब्जा था।'[9]

'अधिकतर किसान जमींदारों और सूदखोर महाजनों के ऋण के बोझ से दबे हुए अभाव एवं दरिद्रता का जीवन बिताने के लिए विवश थे।'[10]

सामाजिक असमानता का इससे बड़ा रूप और क्या हो सकता है कि पानी भी सबके लिए समान नहीं, ईश्वर-प्रदत्त वस्तुओं पर भी उच्चवर्ग अपना ही अधिकार समझता है और बेचारा निम्नवर्ग उस नदी को ही गंगा मानकर संतुष्ट हो जाता है। कवि ने इस शोषण की भर्त्सना ही नहीं की, अपितु शोषकों को घृणित वाणी में ललकारा भी है। शोषकवर्ग सदियों से शोषितों का खून

 ISSN 0975-735X

चूसता आ रहा है, इसलिए वह कह रहे हैं–

'डरो मत, शोषक भैया: पी लो।
मेरा रक्त ताज़ा है, मीठा है, हृद्य है।
पी लो, शोषक भैया: डरो मत।'[11]

कवि ने हास्य का प्रयोग करके भी व्यंग्य को तीक्ष्ण बना दिया है। ऐसी कविताएँ शोषकों (पूँजीपतियों) को मुँह छिपाने के लिए मजबूर कर देती हैं। इनके प्रति कवि का आक्रोश अपने पूर्ण चरत्मोत्कर्ष पर कविता में प्रकट हुआ है, क्योंकि इनके शोषण और अत्याचार की सीमा अब पार हो चुकी है।

घृणा के पात्रों की व्याख्या करते हुए डॉ॰ ज्ञानप्रकाश शर्मा कहते हैं–'धन की दृष्टि से पूँजीपतियों द्वारा शोषण, अनाचार की श्रेणी में आता है, राजनीतिक दृष्टि से राजनीतिक अधिकार-प्राप्त व्यक्ति द्वारा दमन और अत्याचार, अमानवीय कहा जाता है। सामाजिक भाव की दृष्टि से उच्च जातियों का निम्न जातियों के प्रति भेदभाव और असहिष्णुता को हम अंधविश्वास कह सकते हैं, किंतु जहाँ व्यक्ति न तो पूँजीपति है, और न ही राजनीतिक सत्ता मंडित फिर भी अपने सजातियों के प्रति अनाचार, अमानवीय, असहिष्णु हो जाता है, उसे क्या कहें? ऐसे व्यक्ति को मात्र स्वार्थी कहने में कोई हानि नहीं है।'[12]

अज्ञेय आधुनिक समाज के शोषण, अत्याचार एवं मूल्यहीनता पर व्यंग्य ही नहीं कर रहे है बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का हृदय पीड़ित हो रहा है कि किसान जो पालन-पोषण करता है, उसकी विपन्नता के कारण कमर झुकी है, परंतु इन शोषकों ने माया का चश्मा चढ़ा रखा है। भेड़िया और मर्कट शब्दों का प्रयोग साभिप्राय है, क्योंकि भेड़िये के समान हिंसा-भाव और बंदर (मर्कट) की सी चपलता। कवि के भावों में सामाजिक असमानता प्रतिबिंबित हो रही है, वहीं शैली में हास्य की सर्जना की गई है। अज्ञेय ने स्थिति के प्रत्येक पहलू का गहराई से अध्ययन किया है। वे शोषक को ही नहीं, शोषितों को भी उनकी स्थिति का सही आभास करा देते हैं। गधा 'ऊँट' तो नहीं बन सकता और न ही ऊँट की समानता कर सकता है। एक अन्य सूक्ष्म कारुणिक व्यंग्य–

रेंक रे रेंक गधे, रेंक रे रेंक
कुटिया के पीछे का आँगन डेढ़ बित्ते का
छेंक ले छेंक गधे, रेंक रे रेंक
रेंक रे रेंक गधे, रेंक रे रेंक
अपने ही रूप पर होता लोट-पोट, टाँगें
नभ की ओर फेंक रे फेंक
गधे, ऊँट का साक्ष्य क्या, रेंक रे रेंक।[13]

भावों के साथ शब्द-संयोजन व शैली में व्यंग्य है। 'गधा ऊँट बनना भी चाहे तो नहीं बन सकता' में कवि को समाज के प्रत्येक पीड़ित जन से सहानुभूति है। वे सामाजिक असमानता से दु:खी है। अज्ञेय की ऐसी कितनी ही कविताएँ हमें रुककर सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं। इस कविता मे कवि ने पशुओं का बहुत सुंदर बिंब खींचा है। गधा और ऊँट के द्वारा अज्ञेय ने पूँजीवाद का विरोध किया है। शोषितवर्ग को व्यंग्य और उपहास का पात्र बनाकर जहाँ कवि अपने आक्रोश

को वाणी देता है, वहीं निर्बल वर्ग को विपन्नता का चित्रण करके समाज के घावों पर पट्टी भी बाँधता है।

'कवि की आस्था और संवेदना उसकी हर धड़कन से मिली हुई है, वह स्वयं उससे अलग अस्तित्व नहीं रखता।'[14]

अज्ञेय के अनुसार औद्योगीकरण के विकास के साथ समाज में वर्गचेतना का विकास हुआ। एक ही प्रकार के कार्य करने वाले लोग अपने-आपको एक समूह-वर्ग-अभिन्न अंग समझने लगे। समय के साथ ही यह वर्गचेतना निरंतर विकसित होती गई। इस कारण कवि ने कटु सत्य को उजागर किया है कि जो निम्नवर्ग मेहनत करके खेतों में हरियाली लाते हैं, उनके पास खलिहान भी नहीं है। महंतो इनकी मेहनत से घर बैठकर ही आनंद उठाते हैं, परंतु उनकी नीयत कभी नहीं भरती। बेचारे गरीबों की आँखें आँसुओं से भरी रहती हैं, पर इन अत्याचारियों के पेट नहीं भरते। बनियों के कागज उनकी संपदाओं से भरे रहते हैं, पर इन गरीबों के साथ टेंट भी नहीं है। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की स्थिति को कवि ने अपनी कविता के दर्पण में उतारकर सजीव कर दिया है। एक वर्ग सागर के समान अतल संपत्ति को सँजोये हुए पुजता है तो दूसरा वर्ग गिरगिट की तरह कुत्सा का शिकार बना है। देखिए! कवि के शब्दों में–

सागर भी रंग बदलता है, गिरगिट भी रंग बदलता है।
सागर को पूजा मिलती है, गिरगिट कुत्सा पर पलता है।
सागर है बली: बिचारा गिरगिट भूमि चूमता चलता है।
या यह : गिरगिट का जीवनमय होना ही हम मनुजों को खलता है।[15]

कवि ने सागर के द्वारा उच्चवर्ग और निम्नवर्ग का वर्गभेद प्रस्तुत किया है। सागर और गिरगिट के माध्यम से कवि उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की तुलना करते हुए सामाजिक विकृति की ओर ध्यान आकर्षित करता है। सागर और गिरगिट दोनों रंग बदलते हैं, परंतु लोग सागर की उपासना करते हैं और गिरगिट को तुच्छ समझकर कोसते हैं। बिहारी की यह उक्ति 'कौ कह सके बड़ैन को लखै बड़िय भूल' यहाँ चरितार्थ हो रही है। धन की कमी निर्धन को विद्वान होते हुए भी उपहास की वस्तु बना देती है।

'संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि उस समय देश में भयंकर महँगाई, निर्धनता, दरिद्रता अभाव व्याप्त था। उस समय एक ग्रामीण की वार्षिक आय 36 रुपए थी, जिसमें से जमींदार महाजन और अन्य कर देने के बाद मुश्किल से 13 रुपये बाकी रह जाते थे।'[16]

इस प्रकार अज्ञेय का यह व्यंग्य समूचे भारतीय परिवेश की धज्जियाँ उधेड़ देता है। अज्ञेय ने स्वतंत्रतापूर्व से ही वर्गविहीन समाज का सपना देखा था, जो आज भी निरंतर अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को प्रेरणा दे रहा है। अज्ञेय की कविताएँ जहाँ छायावाद की सुष्ठु गंध से किसी सीमा तक अनुप्राणित-आप्लावित भी थीं तथा उससे मुक्त होने के लिए प्रयासरत भी, वहीं इन कविताओं में कवि अपने परिवेश से कुछ और ठोस रूप में संपृक्त हुआ है।

संदर्भ

1. डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ, आधुनिकता-बोध और आधुनिकीकरण, पृ॰ 60
2. कविता : शरणार्थी-5: रुकेंगे तो मरेंगे, सदानीरा भाग-1, पृ॰ 216
3. कविता : दफ्तर : शाम, सदानीरा भाग-1 पृ॰ 256

4. कविता : सबेरे-सबेरे, सदानीरा भाग-1 पृ॰ 230
5. कविता : दफ्तर : शाम, सदानीरा भाग-1, पृ॰ 256
6. कविता : साँप, सदानीरा भाग-1 पृ॰ 269
7. डॉ॰ ओमप्रकाश अवस्थी, अज्ञेय कवि, ग्रंथम्, कानपुर, पृ॰ 99
8. कविता : हवाएँ चेत की, सदानीरा भाग-1, पृ॰ 252
9. आर॰पी॰ दत्त, इंडिया टू डे, पृ॰ 198
10. आर॰पी॰ दत्त, इंडिया टू डे, पृ॰ 216
11. शोषक भैया, सदानीरा भाग-1, पृ॰ 259
12. डॉ॰ ज्ञानप्रकाश शर्मा, हिंदी की हास्य व्यंग्यमय कविता का सांस्कृतिक विवेचन, पृ॰ 176-177
13. कविता : रेंक, सदानीरा भाग-1, पृ॰ 268
14. डॉ॰ कृष्ण भावुक, अज्ञेय की काव्य चेतना, पृ॰ 21-22
15. कविता : सागर और गिरगिट, सदानीरा भाग-1 पृ॰ 300
16. रजनी पाम दत्त, इंडियन टूडे, आठवाँ भाग, बरडन ऑफ पीसेंट्री, पृ॰ 211-212

द्वारा श्री हरीशचंद्र
18 **सी मिशन कंपाउंड, सहारनपुर**
मो॰ 9412131520

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में पीढ़ी दर पीढ़ी की समस्याएँ

डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी

भूमिका: आधुनिक हिंदी साहित्य में जिन साहित्य-साधकों ने अपना अमूल्य योगदान दिया है, उनमें डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साहित्य-सृजेता डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न रचनकार हैं, जिन्होंने मूलत: कवि एवं गजलकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इसी के साथ नाटक, निबंध, एकांकी, नुक्कड़ नाटक और उपन्यास के साथ-साथ कहानियों के क्षेत्र में भी डॉ॰ अग्रवाल ने अपनी लेखन-प्रतिभा और शब्द-शिल्प के कौशल का अच्छा परिचय दिया है। कहानी लिखने की कला में तथा कहानी को जीवन के उच्च सरोकारों से जोड़ने में डॉ॰ गिरिराज जी पूर्णत: पारंगत हैं। उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट पक्ष कोशकार एवं संपादक का भी रहा है, जिसके कारण वे हिंदी-जगत में विशेष रूप से याद किए जाते रहेंगे।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों का परिचय

साहित्य का लक्ष्य मानव-जीवन का चित्रण करना है। मनुष्य का जीवन ही वह धरातल है, जिस पर साहित्य का भवन खड़ा किया जाता है। मानव-जीवन के चित्रण को यदि साहित्य से अलग कर दिया जाए तो साहित्य के पास कुछ भी नहीं बचता है। साहित्य में कहानी का जितना सीधा और निकट संबंध मनुष्य से है, उतना किसी अन्य विधा का नहीं है।

मानव-जीवन और उसमें होने वाले व्यवहार, व्यापार, समस्याओं, द्वंद्व, अंतर्रहस्य आदि का चित्रण कहानी का विषय है। इसका अभिप्राय यह है कि कहानी अपनी कथावस्तु के निर्माण के लिए सामग्री का चयन जीवन और जगत् से करती है। डॉ॰ अग्रवाल ने अपनी कहानियों के कथ्य का चुनाव समाज से ही किया है। वे आवश्यकता और उपयोगिता के अनुसार प्रारंभ से ही कहानी लिखते रहे, इसी का प्रमाण है 'डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली खंड तीन–'कहानी समग्र'। इस खंड में उनकी व्यापक जीवन-दृष्टि से परिपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों में मानव- जीवन की जिज्ञासा और परिवार के बनते-बिगड़ते संबंध, समस्याएँ कहीं भी देखे जा सकते हैं। डॉ॰ अग्रवाल की कहानियों का कथ्य सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक घटनाओं के आस-पास घूमता है। इन कहानियों की विषयवस्तु मानव-जीवन की वास्तविक घटनाओं से जुड़ी हुई है। अर्थात् वे दैनिक जीवन की वास्तविकता को उजागर करते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में आधुनिक जीवन की घटनाओं का बड़ी ही बारीकी और सूक्ष्मता

 ISSN 0975-735X

के साथ वर्णन किया है। डॉ॰ अग्रवाल मध्यमवर्गीय परिवार से भली-भाँति परिचित हैं, अत: उनकी कहानियों में इनसे जुड़ी घटनाएँ, जैसे परिवार, परिवार का विघटन, टूटन आदि का सजीवता से अंकन हुआ है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की कहानियों में पीढ़ी दर पीढ़ी की समस्याएँ

'डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली' के कुल ग्यारह खंड हैं, जिसमें तीसरा खंड कहानियों का है, जो 'कहानी समग्र' नाम से संकलित है। इस संकलन में कुल 83 कहानियाँ हैं, जिनमें आठ से भी अधिक कहानियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी की समस्याओं का चित्रण हुआ है। इन कहानियों में वृद्धों की समस्याओं को लेकर काफी गंभीर लेखन हुआ है, जिनमें इस अवस्था की समस्याओं की जड़ों को खँगालने के साथ-साथ उसके वर्तमान तथा भविष्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

इन कहानियों में वृद्धों के प्रति युवा पीढ़ी के उपेक्षापूर्ण रवैये के साथ ही वृद्धों की पीड़ा तथा व्यथा को भी चिह्नित किया गया है।

कहानी 'अवैध संबंध' में अस्सी वर्ष का बूढ़ा विलसन कृपाराम, जो जलसेना से रिटायर हुआ था, वृद्धाश्रम में रहने लगता है। पर वहाँ काफी दिन तक नहीं रह पाता। पत्नी को मरे कई वर्ष बीत चुके थे। बेटा और बेटी विदेश में रह रहे हैं। विलसन की मुलाकात पिचहत्तर साल की रोजी जॉन स्मिथ के साथ होती है, जिसका भी अपना कहने वाला कोई नहीं है। कृपाराम रोजी जॉन के स्वभाव को पसंद करने लगता है और इस तरह दोनों दोस्त बन जाते है और एक दूसरे की सहायता करते हुए एक साथ रहने लगते हैं, परंतु आस-पड़ोस के लोग उन दोनों के रिश्तों को गलत समझते हुए उसे एक अवैध संबंध मानते हैं। कहानी 'अवैध संबंध' का यह अंश उल्लेखनीय है–

'जो लोग यह मानते हैं कि बूढ़े लोग बूढों के बीच रहकर खुश रह सकते हैं या उन्हें अपनी आयु के लोगों के बीच ही रहना चाहिए, वे वृद्धों की मनोवैज्ञानिक सत्यता से परिचित नहीं हैं।'[1]

'दरअसल, बूढों से जो कुछ छिन चुका होता है, जो उनके जीवन में नहीं रहा होता है, वे उसे युवाओं में अपने इर्द-गिर्द देखकर संतुष्ट होते हैं। जब मैं वृद्ध आश्रम में था, तो दिन-रात अपने ही जैसे बूढ़े व्यक्तियों को देखकर मुझमें एक विचित्र-सी उदासी फैलती चली जाती थी। वहाँ युवा पुरुष, औरतें, हँसते-खिलखिलाते बच्चे कम ही आते थे और जो आते थे, उन्हें आश्रम से वापस जाने की जल्दी लगी रहती थी। बूढों की संगत उनके लिए जरूरी नहीं रह गई थी।'[2]

कहानी 'अस्वीकृति' में पत्र-लेखन की शैली में अंतर्जातीय विवाह का विरोध किया गया है। घर का मुखिया अपने ही घर में पले-बड़े विक्रम से अपनी पुत्री की शादी के लिए विक्रम को इसलिए इंकार कर देता है, क्योंकि विक्रम दूसरी जाति का लड़का है। वह इस संबंध को आखिर कैसे स्वीकार कर सकता है।

योग्य होते हुए भी दलित परिवार के युवक को अपनी कन्या नहीं सौंपना समाज में व्याप्त कुरीतियों का परिणाम है। कहानी का एक अंश इस प्रकार है–

'मुझे वे दिन अच्छी तरह से याद हैं, जब मैं जाति या वर्णभेद, संप्रदाय-भेद और वर्गभेद की काली और कलुषित दीवारों को खंडित करके उसके मलवे को धरातल में दबा देने के लंबे-चौड़े भाषण दिया करता था और अपनी धाराप्रवाह वाणी से शब्दों के मजबूत जाल बिछाया करता था। मैं हमेशा कहा करता था कि अभेद, अद्वैत और विश्व-एकता की अद्वितीय भावना वाले देश में भेद-भावना का विष समाज पर गहरा प्रभाव डाले हुए है। लगता है, उसे गहरी नींद में सुला देना चाहता है, ताकि देश की पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस अभिशाप से ग्रस्त रहे।'[3]

कहानी 'आशाओं के बीच नारी' में एक नारी की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है। सुनीता के पति राजहंस ने सुनीता से विवाह के दो वर्ष उपरांत ही डाइवोर्स ले लिया था, जबकि उनका एक वर्ष का छोटा बेटा भी था, क्योंकि उसका पति अपने पुलिस विभाग में ही कार्य करने वाली एक महिला को चाहने लगा था और उसी के साथ आगे का जीवन बिताना चाहता था। सुनीता विवश होकर अपने पति की खुशी के लिए राजी हो जाती है। अकेली रहकर भी सुनीता हिम्मत नहीं हारती, बेटे की खातिर एक विद्यालय में नौकरी करने लगती है। पात्र अक्षय पांड्या सुनीता से विवाह करना चाहता है, पर वह पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं होती। काफी मेहनत से सुनीता बेटे का पालन-पोषण करती है, शिक्षा-दीक्षा भी दिलाती है। पढ़ाई पूरी करने के बाद बेटे को एक अच्छी कंपनी में नौकरी भी मिल जाती है। कई वर्ष बाद एक दिन सुनीता को पता चलता है कि उसके बेटे ने दिल्ली में रोजी नाम की किसी क्रिश्चियन युवती से प्रेम-विवाह रचा लिया है। बेटे ने अपनी माँ को इस विषय में सूचित करना भी उचित नहीं समझा। अब भी सुनीता निराश नहीं होती, वह एक अनाथ को शिक्षित बनाने में व्यस्त हो जाती है। कहानी 'आशाओं के बीच नारी' के कुछ संवाद इस प्रकार हैं–

'तुम मेरी जैसी नारी को नहीं जानते हो, अक्षय। हम लोग एक धुँधली-सी आशा के सहारे संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं। यह बहुत आसान होता है हमारे लिए...संतान के बाँहों में आते ही हमारे मन में उम्मीद का एक फूल खिल जाता है। हमें लगता है, बेटा धीरे-धीरे बड़ा होता जाएगा, युवावस्था को पहुँचेगा, पढ़-लिखकर किसी अच्छे कार्य में लग जाएगा। गृहस्थी फिर उसी तरह बस जाएगी जैसे कि कभी थी। यह आशा ही है, जो हमसे कहती रहती है किसी और पुरुष की ओर मत देखो। इस आशा को पाल-पोसकर बड़ा करो, जो तुम्हारी गोद में है। परित्याग कर गए पति की पहचान नाम के साथ बनाए रखो, क्योंकि आशा का यह फूल प्रदान करने में उसका भी कम योगदान नहीं है। तुम नहीं जानते हो अक्षय कि संतान के बाद नारी अपनी कोख में, अपनी गोद में जीने लगती है। गोद आबाद हो जाती है तो कोख का सूनापन अखरता नहीं है।'[4]

बुजुर्ग, जो अनुभवों की एक निधि अर्थात् खजाना होते थे, उन वृद्धों की आज के उपयोगितावादी तथा उपभोक्तावादी समाज में और उनके परिवार में स्थिति दयनीय है। जिन औलादों के पालन-पोषण के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन कष्टों में बिताया और अपनी संतान पर सब-कुछ समर्पित कर दिया, वही संतान उन्हें तरह-तरह के कष्ट दे रही हैं।

कहानी 'एक और घटना का पुनर्जन्म' में बूढ़े नानकचंद, पत्नी की मृत्यु के बाद बिलकुल अकेले रह जाते हैं। बेटा और बहू उनका ख्याल रखना तो दूर उनको बोझ समझने लगते हैं। केवल उनका पोता उन्हें चाहता है। कहानी 'एक और घटना का पुनर्जन्म' के संवादों के

 ISSN 0975-735X

माध्यम से लेखक परोक्ष रूप से पात्रों के जरिये उन जैसे लोगों पर प्रहार कर रहे हैं, जो अपने बुजुर्ग माँ-बाप को बोझ समझते हुए अपने साथ नहीं रखना चाहते। कुछ संवाद उल्लेखनीय हैं–

'जिस तरह आदमी का पुनर्जन्म लेता है, बार-बार और बार-बार, इसी तरह घटनाएँ भी पुनर्जन्म लेती हैं। वे बार-बार घटती हैं। मनुष्य इस चक्र से तभी मोक्ष प्राप्त कर सकता है, जब वह स्वयं को संसार के मायाजाल से मुक्त कर ले। दुर्घटनाओं के पुनर्जन्म पर विराम लगाना तभी संभव है, जब मनुष्य अपने आचरण को बदलने में सफल हो जाए।'[5]

'मनुष्य की उपयोगिता समाप्त हो जाती है, तो अक्सर परिवार में उसके साथ ऐसा ही होता है।'[6]

कहानी 'पुत्रवधू' में पात्र चौधरी कुलवंत राय एक कठोर व्यक्ति है। वे अपने पुत्र मोहन राय से अपने संबंध-विच्छेद कर लेते हैं क्योंकि बेटे ने उनके विरुद्ध कोर्ट में जाकर लव-मैरिज कर ली थी। परंतु मोहन राय को अपने पिताजी का निर्णय स्वीकार नहीं है। वह अपने माता-पिता की सेवा करना चाहता है और उनके प्रति उसे श्रद्धा और प्यार भी है। चौधरी के दोस्त शेखर, चौधरी से इस मामले को समझाने का प्रयास करते हैं, परंतु चौधरी मानने को तैयार ही नहीं होते। चौधरी की पत्नी अर्थात् मोहन की माँ किडनी के असाध्य रोग से पीड़ित होती है। डॉक्टर के कहे अनुसार उनके दोनों ही गुर्दे काम नहीं कर रहे हैं, एक गुर्दा तुरंत बदल जाना चाहिए। उनके ब्लड ग्रुप की कोई महिला गुर्दा डोनेट करने को तैयार हो जाय तो बच जाएँगी। बेटा मोहन राय की पत्नी अर्थात् चौधरी कुलवंत राय की पुत्र-वधू संगीता अपना गुर्दा डोनेट करने के लिए तैयार हो जाती है। यह जानने पर कठोर कुलवंत राय की आँखों में आँसू भर जाते हैं और वे दोनों, पुत्र एवं पुत्र-वधू को प्यार से गले लगाते हुए उन्हें स्वीकार कर लेते हैं।

इस कहानी के माध्यम से लेखक में बहुत ही सुंदर ढंग से समय के अनुकूल विचारों में भी परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी है। उदाहरण के रूप में यह संवाद द्रष्टव्य है–

'लेकिन राय, तुम यह भी तो सोचा।' शेखर ने तर्क देते हुए कहा, 'संबंध टूटकर भी कभी टूटते नहीं हैं, याद बनकर खटकते रहते हैं मन में, काँटे की तरह। वह टूटकर और भी तीखे हो जाते हैं।'[7]

'बूढ़ा ज्वालामुखी' कहानी कुछ इस प्रकार है–पिचहत्तर साल का रायबहादुर प्रतापनारायण सिंह के साथ बस उनका नौकर इमामू और एक अलसेशियन नस्ल की एक कुतिया ही है। बूढ़े बाप के विरुद्ध विद्रोह करके बेटी शकुंतला शादी कर लेती है। इस कारण प्रतापनारायण जी अपनी बेटी से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। उनका बेटा भी अलग रहता है, परंतु अपनी दीदी का समर्थन करते हुए अपने पिता को पत्र लिखता है। नौकर इमामू भी अपने मालिक से अक्सर विनती करता है कि वे अपनी बेटी को क्षमा करें, पर रायबहादुर अपनी जिद पर ही अड़े रहते हैं। बेटी कभी अपने पिता से मिलने भी आती तो अपने स्वभाव की कठोरता के बीच झूलते हुए बेटी को मुख्य द्वार से ही वापिस जाने की आज्ञा दे देते हैं। रायसाहब अपनी कुतिया कैटी को भी मुहल्ले भर के कुत्तों से अलग रखते थे। एक दिन रायसाहब ने देखा कि कुतिया कैटी मुहल्ले के चार-पाँच कुत्तों के बीच खड़ी दुम हिला रही है। क्रोध के मारे रायबहादुर सिंह अपनी बंदूक निकलकर कैटी को गोली से भून देते हैं। कैटी मर जाती है। 'बूढ़ा ज्वालामुखी' कहानी के कुछ अंश प्रस्तुत हैं–

'दीदी ने कुछ बुरा नहीं किया था। अब वह इतने सुख से है कि आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। क्या हुआ जो उसने एक ऐसी जाति के युवक से प्रेम-विवाह कर लिया, जिसे आप नीच समझते हैं। आप लोग अगर अब भी अपनी मान्यताएँ नहीं बदलेंगे तो आज की पीढ़ी से आपका रिश्ता बिलकुल टूट जाएगा-।'[8]

'इंसान-इंसान के खून में कोई अंतर नहीं है। खून पवित्र-अपवित्र नहीं होता। विज्ञान आपकी मान्यताओं को झुठला चुका है।'[9]

'क्या पच्चीस वर्ष की अवस्था इतनी अधिक होती है कि युवतियाँ अपनी शादी का निर्णय स्वयं करने पर विवश हो जाएँ। क्या अब इस पीढ़ी में अपने रक्त, अपने गोत्र की पहचान नहीं रही है। क्या ये सब पागल हो गए हैं, पागल।'[10]

कहानी 'बूढ़े जीवन की एक रात' में वृद्धों की पीड़ा तथा व्यथा का वर्णन मिलता है। काफी देर इंतजार करने के बाद ही वृद्ध रोशनलाल और उनकी पत्नी नीलिमा को बहू भोजन देती है और वह भी उसे याद दिलाने के बाद। उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं होता। उन्हें वह कमरा दे दिया जाता है जहाँ कबाड़ी की चीजें रखी हुई हैं जैसे पुरानी बेकार की वस्तुएँ, काम न आने वाली प्लास्टिक की वस्तुएँ, टूटी हुई बोतलें, फटे कपड़े एवं जूते आदि सब। अर्थात् जब वस्तुएँ अनुपयोगी हो जाती हैं तो फेंक दी जाती हैं या उन्हें एक कमरे में डाल दिया जाता है, उसी प्रकार आज की युवा पीढ़ी वृद्ध लोगों के साथ पेश आ रही है। इन्हीं सब बातों को लेखक गिरिराज जी ने अपनी इस कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कहानी के संवाद द्रष्टव्य हैं–

'नीलू खाट पर उठकर बैठ गई। 'मुझे काठ-कबाड़ के बीच पड़ा रहना बहुत अखरता है जी।'

'अखरनेवाली कोई बात नहीं है, नीलू।' रोशनलाल ने पत्नी को समझाने के लिए कहा, 'हर समय की अपनी अलग सच्चाई होती है। सामने पड़े फटे हुए टायर की उस समय भी एक सच्चाई थी, जब यह स्कूटर के पहिए में लगा सड़कों पर तेजी से दौड़ रहा था। अब बदल गए समय की यह भी एक सच्चाई है कि यह बेकार हो गई चीजों के बीच पड़ा है और कोई भी इसकी ओर देखनेवाला नहीं। किसी दिन कबाड़ी आएगा और ठीक इसी तरह इसे उठाकर यहाँ से ले जाएगा, जैसे बूढ़े व्यक्तियों को मौत।'

वाक्य पूरा होने से पहले ही रोशनलाल को फिर खाँसी का दौरा पड़ा।

खाँसकर शांत हुए तो पत्नी कड़वाहट-भरे स्वर में बोली, 'फटे टायर और बूढ़े आदमी के बीच कोई अंतर नहीं होता है क्या?'

'मैं यह नहीं कह रहा हूँ नीलू कि इन दोनों में कोई अंतर नहीं होता। होता होगा। मैं तो समय के साथ-साथ बदलने वाली सच्चाई की ओर संकेत कर रहा हूँ। समय के साथ-साथ सच्चाइयाँ भी बदल जाती हैं।'[11]

रोशनलाल ने सिरहाने रखी रिस्ट-वाच को आँखों के निकट लाकर देखा। बोले, 'पौने दस बजे हैं अभी। तुम्हें बहुत ज़्यादा भूख लग रही है क्या?'

'नहीं, बहुत ज़्यादा नहीं।' नीलिमा ने उत्तर देते हुए कहा, 'और अगर लग भी रही हो तो किया ही क्या जा सकता है। खाना तो तुम्हें-हमें तब ही मिलेगा, जब घर के सब लोग खा

 ISSN 0975-735X

लेंगें। है न!'[12]

'तो क्या संतान का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे अपने बूढ़े माता-पिता का ध्यान रखें।' बूढ़ी नीलिमा ने दया की भूखी दृष्टि पति के चहरे पर डाली।

'कर्त्तव्य है, लेकिन मजबूरी नहीं है।' रोशनलाल ने उत्तर दिया, 'वस्तुएँ जब अनुपयोगी हो जाती हैं तो उनकी देखभाल करना जरूरी नहीं रह जाता है, नीलू।'

'पर आदमी वस्तुओं की श्रेणी में तो नहीं आते हैं न।' नीलिमा ने रुखाई से उत्तर दिया।

'बूढ़े आदमी, अगर अनुपयोगी हो जाएँ तो वे भी उन वस्तुओं की तरह ही हो जाते हैं, जो किसी काम की नहीं रही हैं। याद आने पर उनकी झाड़-पोंछ कर दी जाती है अन्यथा पड़ी रहती हैं एक कोने में।'[13]

'सब दोषी सब निर्दोष' कहानी में माँ और पत्नी के बीच के झगड़ों में फँसा हुए पात्र संजय की दुविधा का वर्णन मिलता है। एक संयुक्त परिवार में यह समस्या अक्सर हर घर में देखी जा सकती है, क्योंकि माँ को लगता है बेटे ने अपने प्यार को बाँट लिया है। पत्नी को भी ऐसे लगने लगता है कि पति माँ के प्यार में ज़्यादा डूबे हैं। हालाँकि दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रकार के प्यार हैं। इसी बात को गिरिराज जी इस कहानी के माध्यम से समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस पारिवारिक कहानी के संवाद में से कुछ अंश देखिए–

'मुझ अभागी को तो यह दिन देखने ही थे। बहू घर में क्या आई, बेटा भी हाथ से गया।'[14]

'न बेटा हाथ से निकला, न बहू ने तेरा कुछ छीना। स्थिति कुछ और ही है, जिसे तू समझ नहीं पा रही है।'[15]

'यह बात कि तू मेरी श्रद्धा है और क्षिप्रा मेरी जरूरत।'[16]

निष्कर्ष: डॉ॰ अग्रवाल के साहित्य में विधाओं का वैविध्य है और वह इनकी इंद्रधनुषीय संवेदनाओं के सत्य को उद्‌घाटित करती हैं। डॉ॰ अग्रवाल की साहित्यिक रचनावाली में अपने समय का सच, अपने युग की वास्तविकता और घोर अमानवीय स्थितियों में जीने की जिजीविषा का अद्‌भुत तथा अनुपम संयोग है। कोई भी लेखक जीवन के यथार्थ से मुँह नहीं मोड़ सकता, परंतु वह जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखने की अपनी प्रतिबद्धता को भी नजरअंदाज नहीं कर सकता। डॉ॰ अग्रवाल की रचनाओं में यही सकारात्मक दृष्टि मिलती है।

संदर्भ

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली, खंड तीन, कहानी समग्र, संपादक : डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल)

1. अवैध संबंध, पृ॰ 77,78
2. अवैध संबंध, पृ॰ 78
3. अस्वीकृति, पृ॰ 82
4. आशाओं के बीच नारी, पृ॰ 88,89
5. एक और घटना का पुनर्जन्म, पृ॰ 122
6. एक और घटना का पुनर्जन्म, पृ॰ 123
7. पुत्रवधू, पृ॰ 331

8. बूढ़ा ज्वालामुखी, पृ॰ 376,377
9. बूढ़ा ज्वालामुखी, पृ॰ 377
10. बूढ़ा ज्वालामुखी, पृ॰ 378
11. बूढ़े जीवन की एक रात, पृ॰ 381
12. बूढ़े जीवन की एक रात, पृ॰ 383
13. बूढ़े जीवन की एक रात, पृ॰ 383
14. सब दोषी, सब निर्दोष, पृ॰ 512
15. सब दोषी, सब निर्दोष, पृ॰ 513
16. सब दोषी, सब निर्दोष, पृ॰ 513

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज
ताम्बरम, चेन्नै 600 059
ई मेलः mathurajaya@gmail.com

 ISSN 0975-735X

प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या'

नंदिनी जोशी
क्रिश्चियन एमिनेंट महाविद्यालय, इंदौर (म॰प्र॰)

स्त्री-मन की कुशल चितेरी, वरिष्ठ रचनाकार प्रभा खेतान का जन्म 1 नवंबर 1942 में कोलकाता के एक रूढ़िवादी मारवाड़ी परिवार में हुआ। इन्होंने तात्कालीन रूढ़िवादी समाज के दायरे तोड़कर अपने लिए रास्ते खुद तय किए। प्रभा जी ने एम॰ए॰ करने के बाद 'ज्यां पाल सार्त्र के अस्तित्ववाद' पर पीएच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त करने के बाद अपना व्यवसाय खड़ा कर आर्थिक आत्मनिर्भरता अर्जित की। बहुमुखी प्रतिभा की धनी प्रभा जी ने साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी कलम चलाई। इन्होंने अपनी प्रभावपूर्ण लेखन-शैली के माध्यम से स्त्री के विविध स्वरूपों, उसके जीवन की समस्याओं व स्त्री-विमर्श पर खुलकर लिखा है। प्रभा जी का संपूर्ण साहित्य उनके अनुभव की उपज है। ये स्त्री स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक रहीं। प्रभाजी ने उपन्यास, कविता, चिंतन अनुवाद एवं संपादन का कार्य भी किया। उन्होंने सन् 1990 से सन् 1999 तक आठ उपन्यासों का सृजन किया। इनमें 'आओ पेपे घर चले', 'तालाबंदी', 'अग्निसंभवा', 'एड्स', 'छिन्नमस्ता', 'अपने-अपने चेहरे', 'पीली आँधी', 'स्त्री-पक्ष' आदि उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी अधिकांश कृतियाँ नारी-केंद्रित रहीं। इसके साथ इनके छः कविता-संग्रह प्रकाशित हुए–अपरिचित उजाले, सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं, एक और आकाश की खोज में, कृष्णधर्मा मैं, हुस्नबानो और अन्य कविताएँ, अहल्या। इन्होंने 'उपनिवेश में स्त्री': मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ', 'सार्त्र का अस्तित्ववाद', 'सार्त्र : शब्दों का मसीहा' 'आल्बेयर कामू: वह पहला आदमी', 'बाजार के बीच बाजार के खिलाफ : भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न', 'भूमंडलीकरण: ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र' आदि चिंतन-प्रधान ग्रंथों की रचना की। इसके साथ ही प्रभा जी ने साँकलों में कैद कुछ (कुछ दक्षिण अफ्रीकी कविताएँ) 'स्त्री उपेक्षिता' (सीमोन द बोउवार) की प्रसिद्ध कृति 'द सेकंड सेक्स' का अनुवाद किया। 'एक और पहचान' शीर्षक से कविताओं का संग्रह उन्होंने संपादित किया। 'एक और पहचान', 'हंस' का स्त्री विशेषांक भूमंडलीकरण : पितृसत्ता के नए रूप का कुशल संपादन किया। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में इनके नारीविषयक विविध महत्त्वपूर्ण लेख भी प्रकाशित हुए।

प्रभा खेतान का लेखन मनोविज्ञान की गहन जाँच पड़ताल करता है। 'बाजार में खड़ी स्त्री' और अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' तक अपनी अधिकांश रचनाओं में प्रभा जी ने स्त्री-जीवन के विविध पहलुओं और उसकी दशा को वर्णित किया है। 'अन्या से अनन्या' में प्रभा जी ने अपने जीवन यथार्थ एवं संबंधों को खुलकर प्रस्तुत किया है। डॉक्टर सर्राफ जैसे विवाहित पुरुष

के साथ अपने संबंधों को इन्होंने खुलकर स्वीकार कर, अपने को उनकी प्रेमिका घोषित किया है। वह एक सफल, संपन्न व दृढ़ संकल्पी महिला थीं, जिन्होंने अपने बोल्ड लेखन के जरिए साहित्य-जगत में खलबली मचा दी।

स्त्री-विमर्श की सशक्त साहित्यकार प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' नामक आत्मकथा में स्त्री का विद्रोही स्वर मुखरित किया है। 'अन्या से अनन्या' प्रभा जी की कुल नौ अंकों में लिखी अनूठी आत्मकथा अनूठी है। हिंदी साहित्य में ऐसी जोखिम-भरी आत्मकथा लिखने वाली शायद यह पहली लेखिका हैं। आत्मकथा के माध्यम से उन्होंने स्त्री के कई रूपों को दर्शाया है। आत्मकथा में प्रभा जी ने बचपन की कड़वी यादों के साथ-साथ डॉ॰ सर्राफ के साथ शादी के बिना गुजारे अट्ठाईस सालों का जीवन, साथ ही अपने व्यवसायी जीवन के संघर्ष को व्यक्त किया है। इनका जन्म श्री लादूराम जी खेतान के यहाँ एक संकीर्ण हिंदू सनातनी मारवाड़ी परिवार में पाँचवीं बेटी के रूप में हुआ। उस समय मारवाड़ी परिवार तो क्या, अधिकांशत: परिवार में बेटियों के जन्म पर खुशी नहीं मनाई जाती थी और प्रभा तो इस परिवार में पाँचवीं बेटी के रूप में जन्मी थीं, अत: उन्हें परिवार, यहाँ तक कि अपनी माँ पूरणीदेवी से भी उपेक्षा और ताने ही मिले। इनके पिता जूट के व्यापारी तथा जूट मिल के मालिक भी थे। इनका सात भाई-बहनों का भरा-पूरा परिवार था, परंतु इनके पिता का लाड़-प्यार प्रभा को ही अधिक मिला। वे उन्हें घर की लक्ष्मी समझते थे, परंतु इसे दुर्भाग्य कहा जाए या विधाता की निष्ठुरता, जब प्रभा केवल 9 साल की थीं, तब किसी षड्यंत्र के अंतर्गत इनके पिता की (उनका मित्र ही उन्हें जहर देकर उनकी हत्या कर देता है) असमय मृत्यु ने प्रभा को झकझोर दिया। इनके पिता सुधारवादी, आदर्शवादी, गांधीवादी थे। दूसरी ओर इनकी माँ एक अमीर घर की मारवाड़ी परंपरावादी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली स्त्री थीं, जिन्हें बेटी के जन्म से ही नफरत थी। इस कारण वे अपनी बीमारी की जिम्मेदार भी प्रभा को मानती थीं। प्रभा जी की माँ को सुंदर बच्चे पसंद थे, किंतु प्रभा जी दिखने में साँवली और मोटी थीं अत: वह सदैव अपनी माँ की उपेक्षा की पात्र बनी रहीं। इनके भाई-बहन भी हमेशा उनका मजाक उड़ाते थे, जिसके लिए इनकी माँ जिम्मेदार थीं। भरे-पूरे घर में रहने के बावजूद उन्हें हर एक चीज के लिए तरसना पड़ा। उन्हें सभी दंतोली, दाई माँ की बेटी कहकर पुकारते थे। परिवार से उपेक्षित प्रभा को उनकी दाई माँ से खूब लाड-दुलार मिला। प्रभा जी का स्कूल जाना उनकी माँ को पसंद नहीं था। इसके विपरीत इनके पिता बेटियों को पढ़ाने के पक्षधर थे, किंतु पिता के जाते ही घर की परिस्थितियाँ भी बदल गईं। उस समय स्त्री-शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। ऐसे समय में माँ द्वारा भी स्कूल भेजने के विरोध ने प्रभा को कई अंर्तद्वंद्वों में फँसा दिया। उनकी माँ कहतीं 'घर बैठो, राई-जीरा चुनो, सिलाई-कढ़ाई करो।' नानी कहती-'यह छोरी तो लंबी ताड़ होती जा रही है। अरे बेटा पुरणी, जरा इन छोरियों का नाक तो छिदा दे। दोनों ब्याह के लायक हो गई हैं।'[1]

उनके लिए उनका ही घर अब असुरक्षित-सा हो गया था। उन्हें अपने सगे बड़े भाई के द्वारा शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ा। इनकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी। अकेली प्रभा बचपन में घंटों बरामदे में बैठकर चिड़ियों से बातें करती रहतीं। वह अपने आपसे सवाल करतीं और स्वयं ही जवाब ही देतीं। ऐसा करते देख, उनके भाई-बहन उन्हें पागल समझते और उन्हें 'अछूत कन्या मिलिट्री का घोड़ा' कहकर चिढ़ाते थे। हर नई चीज पर भाई-बहनों का हक था।

 ISSN 0975-735X

यहाँ तक कि बीमारी के समय भी प्रभा जी को उचित उपचार के लिए तरसना पड़ता। मासिक धर्म के समय उन्हें अछूत कन्या कहकर उनकी हँसी उड़ाई जाती। घर के सदस्यों के साथ नौकर भी उन्हें उपेक्षित नजरों से देखते। उनकी आया मालिश करते समय कहती, 'एक तो प्रभाबाई ऐसे ही काली है, फिर यह सरसों के तेल की मालिश से कहाँ गोरी होगी।'[2] प्रभा अपनी माँ का प्यार पाने के लिए तरस जातीं। प्रभा स्वयं लिखती हैं, 'अम्मा ने मुझे कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।'[3]

इनकी स्कूली शिक्षा कलकत्ता के बालीगंज शिक्षा सदन में पूरी हुई। स्कूली जीवन से ही प्रभा ने कविता लिखना शुरू किया। बचपन से ही इन्हें प्रकृति ने आकर्षित किया। चिड़िया, पेड़-पौधे, झरने की कलकल जैसे प्राकृतिक उपादानों से ही इन्हें कलम चलाने की प्रेरणा मिली। सातवीं कक्षा में उन्होंने अपनी सबसे पहली कविता लिखी जो 'दैनिक सुप्रभात' में छपी और तब से उनका लेखन जारी रहा। इनके जीवन में मन्नू भंडारी एवं राजेंद्र यादव जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। शिक्षा प्राप्त करने में भी इन्हें कई परेशानियाँ आईं, किंतु उनके शिक्षकों ने उन्हें हमेशा प्रोत्साहित किया। ग्यारहवीं के बाद भी प्रभा जी ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और अपने मजबूत इरादों की बदौलत प्रेसिडेंसी कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। पढ़ाई के दौरान उन्होंने हमेशा अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। कॉलेज में इन्हें सुभाषचंद्र बोस की अगली कड़ी के रूप में संबोधित किया गया। कॉलेज में आकर प्रभा की समझ विकसित होने लगी। सन् 1965 में प्रभा जी ने एम॰ए॰ के साथ लॉ इंटरमीडियेट की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने 'ज्यां पॉल सार्त्र का आस्तित्ववाद' पर शोधकार्य करते हुए, दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इस दौरान ये 'सिमोन द बोऊवार' की प्रसिद्ध कृति 'द सेकंड सैक्स' से काफी प्रभावित हुईं। बचपन से ही इन्हें किताबें पढ़ने का शौक था और आगे चलकर इसी शौक ने प्रभा जी को लेखन की ओर अग्रसर किया। उन्होंने अमेरिका के लॉस एंजेल्स से ब्यूटी थैरॉपी कोर्स में डिप्लोमा किया।

अपने बचपन की विकट परिस्थितियों को झेलते हुए, जब प्रभा जी ने समाज की ओर देखा तो उन्हें नारी की स्थिति दोयम दर्जे की दिखाई दी। अमीरों के घर नारी गहनों से लदी एक कठपुतली-सी दिखाई दी। एक तरफ नारी घर की चौखट में कैद थी, दूसरी तरफ अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए मजदूरी करती और आधी मजदूरी पाकर संघर्ष कर रही थी। इन सब कारणों से प्रभा जी में नारीवादी सोच सुदृढ़ होने लगी और इन्हीं सब परिस्थितियों पर जब उन्होंने अपनी कलम चलाई तो साहित्य-जगत में ये नारी-चिंतक के रूप में पहचानी गईं। प्रभा जी मार्क्स, फ्रायड, उपनिषद्, गीता, ओशो आदि के चिंतन से काफी प्रभावित रहीं।

इन्होंने भारतीय साहित्य और विदेशी साहित्य दोनों का गहन अध्ययन किया और कई बार विदेशी यात्राएँ भी कीं। इन्हीं यात्राओं के दौरान उन्हें लगने लगा कि मनुष्य मात्र वस्तु बनकर रह गया है। आर्थिक रूप से मजबूत होने के लिए वह मानवीय धरातल से हटने लगा है। इस अति भौतिकवाद ने उन्हें झकझोर दिया और लिखने के लिए प्रेरित भी किया। उन्होंने अपनी माँ के जीवन से हर पल टूटती नारी की पीड़ा को स्वयं महसूस किया था। उनकी माँ अमीर घर में रहकर भी संतुष्ट नहीं थीं। उन्हें एक-एक पैसे के लिए अपने पति और उनके बाद अपने बेटे धन्नाराम

से याचना करनी पड़ती थी। प्रभा जिस समाज में जन्मीं, वहाँ स्त्री वस्तु-मात्र थी, परंतु इन परिस्थितियों को देखते हुए, प्रभा जी ने ऐसी घुटन-भरी ज़िंदगी से दूर रहने की ठान ली। वह अपना जीवन आँसुओं में नहीं बहाना चाहती थीं। उन्होंने अपने घर की स्त्रियों से लेकर स्कूल की शिक्षिकाओं तक जिन्हें वह अपना प्रेरणास्रोत मानती थीं। सभी को इस पुरुषसत्तात्मक समाज में आँसुओं के सैलाब में डूबा हुआ पाया। उनके स्कूल की हैड मिस्ट्रेस पुष्पमयी बोस और यहाँ तक कि प्रसिद्ध रचनाकार मन्नू भंडारी जी को भी उन्होंने उदास और दु:खी ही पाया। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि कोई स्त्री गलत पुरुष के हाथ में पड़कर कितनी असहाय हो जाती है। प्रभा जी को भी अपने जीवन में निरंतर दु:ख, घृणा, उपेक्षा, नफरत सहकर मरणप्राय: यातनाओं से गुजरना पड़ा। उनका कहना है, कि–'मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है। मैंने अपने-आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में सँजोया। हाँ टूटी हूँ, बार-बार टूटी हूँ... पर कहीं चोट के निशान नहीं... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तन नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी साबुत औरत हूँ, जो ज़िंदगी को झेल नहीं बल्कि हँसते हुए जी रही है। जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है।'[4]

बाईस साल की उम्र में प्रभा जी की पेशे से डॉक्टर अठारह-बीस साल बड़े डॉ॰ सर्राफ से मुलाकात होती है। जब प्रभा मरीज बनकर डॉ॰ साहब के क्लिनिक जाती है तो चेकअप के लिए उनकी आँखों में झाँकते ही यकायक उनके मुँह से निकल जाता है कि इतनी सुंदर आँखें तो मैंने पहले कभी नहीं देखीं और प्रभा जी उनकी बातों से इतनी मोहित हो जाती हैं कि उनसे प्रेम कर बैठती हैं। यह प्रेम सामान्य प्रेम नहीं था। मन के झुकाव के कारण प्रभा डॉ॰ सर्राफ के मोहपाश में बँध गईं और हमेशा बँधी रहीं। डॉ॰ सर्राफ एक शादी-शुदा बच्चों वाले इंसान थे और उनके साथ प्रभा जी के संबंध को गलत दृष्टि से देखा गया, क्योंकि उनका विवाह डॉ॰ सर्राफ से नहीं होता है। अत: समाज में उनका रिश्ता अवैध माना जाता है। उन्हें डॉ॰ सर्राफ की रखैल कहा जाता। लेकिन प्रभा जी ने समाज की परवाह न करते हुए इस रिश्ते को कायम रखा। डॉ॰ सर्राफ का सामीप्य पाने के लिए वह उनके क्लिनिक में तीन सौ रुपये की नौकरी कर लेती हैं। शिक्षा-विरोधी महौल में भी वह अपनी पढ़ाई जारी रखती हैं, बाद में विदेश चली जाती है। जहाँ वह ब्यूटी क्लिनिक खोलने के लिए ट्रेनिंग लेती हैं। वह आत्मनिर्भर बनने की चाह में आगे बढ़ती जाती हैं और चमड़े के व्यवसाय को लेकर उन्हें अपने समाज के साथ काफी संघर्ष करना पड़ता है। लेकिन अपने दृढ़निश्चय से वह एक सफल उद्यमी बन जाती हैं। इतनी आत्मनिर्भर होने के बावजूद उन्हें डॉ॰ सर्राफ के अधीन रहना पड़ता है। एक समय ऐसा भी आता है, जब डॉ॰ सर्राफ अपना पुरुष वर्चस्व दिखाते हुए उन्हें विदेश की सड़क पर अकेला छोड़कर चले जाते हैं और प्रभा जी जैसी अर्थसंपन्न स्त्री उनके इस कृत्य को हैरानी से चुपचाप देखती रह जाती है। फिर भी ईमानदारी से अपने रिश्ते का निर्वाह करती है। डॉ॰ सर्राफ अपने परिवार का भी साथ चाहते थे और प्रभा को भी छोड़ना नहीं चाहते थे। प्रभा जी, डॉ॰ साहब से रुपए, पैसे की बजाय सिर्फ प्रेम चाहती थीं, परंतु न उनके रिश्ते को कोई नाम मिला पाता है, न ही सच्चा प्रेम। श्रीमती केडिया उनका बहुत अपमान करती हैं। धीरे-धीरे प्रभा जी को डॉ॰ सर्राफ के अलग-अलग रूप दिखाई देने लगते हैं। वे कभी डरपोक, कभी शंकालु तो कभी चिड़-चिड़े लगते हैं। अंतत: इनके रिश्ते में ठंडापन आने लगता है। डॉ॰ सर्राफ एक रसिक मिजाज के व्यक्ति थे। प्रभा के अलावा उनके

 ISSN 0975-735X

अन्य कई स्त्रियों से संबंध थे। इन बातों को जानकर प्रभा दु:खी होती हैं। उन्हें अपनी नासमझी का अहसास होने लगता है कि 'मैं अबोध यानि मूर्ख हूँ... मेरी कोई पहचान नहीं, मन के सूनेपन का क्या करूँ? ऐसी ईमानदार चाहत को गलत कैसे कहा जा सकता है? ...मुझे अपने प्यार पर भरोसा था, मैं उपेक्षित थी... आत्मसम्मान की कमी ने जीवन-भर मेरा पीछा किया। बड़ी वाहियात-सी ज़िंदगी है। इतने अपमान और लांछन के साथ जीना भी कोई जीना है? मैं क्यों परजीवी की तरह जी रही हूँ। प्यार-व्यार कुछ नहीं, बस देह का जबरदस्त आकर्षण था और उसी का फल मुझे भुगतना पड़ा।'[5]

प्रभा जी धीरे-धीरे जीवन की वास्तविकता से परिचित होने लगीं और जब एक दिन उन्हें यह पता चलता है कि वह डॉ॰ सर्राफ के बच्चे की माँ बनने वाली हैं, तो उनके पैरों तले जमींन खिसक जाती है। जब डॉ॰ सर्राफ से बच्चे को गिराने की बात करती हैं, तो वह बहुत नाराज होते हुए कहते हैं 'मैं भी क्या करूँ? मैं तुम्हें अपना नाम तो नहीं दे सकता, लेकिन यह बच्चा हमारे प्यार...डॉ॰ सर्राफ उन्हें अमेरिका जाकर बच्चे को जन्म देने की बात कहते हैं पर प्रभा जी उनकी बात का विरोध कर देती हैं। गर्भपात, भ्रूणहत्या, स्त्री का अधिकार, स्त्री-जीवन से संबंधित न जाने कितने विषयों पर लिखने वाली प्रभा मातृत्व की कल्पना से ही सहम जाती हैं और अंतत: अपनी समस्या से निजात पा लेती हैं। इस घटना से दु:खी होकर वह अपना संबंध डॉ॰ सर्राफ से तोड़ लेना चाहती हैं, परंतु कुछ समय बाद फिर उनका जीवन डॉ॰ सर्राफ के साथ आगे बढ़ने लगता है। वह अपना संबंध पूरी निष्ठा से निभाती हैं।

डॉ॰ सर्राफ और प्रभा जी का प्रगाढ़ रिश्ता धीरे-धीरे निराशा और नीरसता की ओर आगे बढ़ने लगता है। प्रभा जी को अब यह एक बोझ लगने लगता है। वह कहती है–

'धीरे-धीरे वक्त के साथ मुझे पता चलने लगा कि मैंने और डॉक्टर साहब ने जिस चाँद को साथ-साथ देखा था, वह एक नकली चाँद था। हमने जो कविता गुनगुनाई थी, वह किसी और की कविता थी, जिस चिड़िया ने हमें पहले-पहल एक-दूसरों से लिपटे देखा था। भूले-भटके वह हमारे मुँडेर पर आ बैठी थी, अन्यथा उस चिड़िया को तो कहीं और होना था। हमारा अपराध था कि हम प्यार करते थे, जैसे हजारों स्त्री-पुरुष करते हैं, लेकिन हजारों स्त्री-पुरुषों की शादी हो जाती है और शादी नहीं होती तो वे अलग-अलग हो जाते हैं। त्रासदी तो यह थी कि न हमारी शादी हो सकती थी, न हम अलग हो पा रहे थे। क्या इन सामाजिक मान्यताओं से पहले कोई समाज नहीं था। क्या उस समाज से स्त्री-पुरुष के विवाहेत्तर संबंध नहीं हुआ करते थे?'[6]

प्रभा जी ने आत्मकथा के संदर्भ में लिखा है–

'वैसे आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है। आप चौराहे पर एक-एक कर कपड़े उतारते जाते हैं। लिखने वाले के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी-न-किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की-सी चाहत रहती है कि लोग उसे गलत नहीं समझें कि जो कुछ भी वह लिख रहा है, उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए, पर दर्शकवृंद अपना-अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र है। उनका मन, वे इस नाच को देखे या फिर पलटकर चले जाएँ।'[7]

उन्होंने लिखा है–'मैं जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से अपना पाठ सीख रही थी। यह भी समझ रही थी कि केवल पढ़ने से, अध्ययन-चिंतन और लेखन से स्त्री स्वतंत्र नहीं हो जाती,

सामाजिक पंगुता के विरुद्ध क्रोध और विद्रोह की भावना व्यक्त करने से ही मैं व्यक्ति नहीं हो जाऊँगी। संस्कारों से, परंपरा से मुक्ति की यात्रा बहुत लंबी है और बड़ी कठिन। दो पैसे कमा लेने से ही मुझे निर्णय की स्वतंत्रता मिला जाएगी, ऐसा नहीं है। पीढ़ियों से स्त्री की जो छवि बन चुकी है, उसको बदलने की शायद मेरे पास शक्ति नहीं है। व्यावहारिक स्तर पर अपनी रणनीति विकसित करने के लिए जरूरी है कि स्त्री-पुरुष के बीच कुछ मौलिक अंतर को ध्यान में रखा जाए। जिस प्रकार धन सीमित है उसी प्रकार व्यक्ति की ऊर्जा भी। स्त्री को भी अपनी ऊर्जा का निवेश बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। उफान और भावुकता को मैं बहुत पीछे छोड़ आई थी।[8]

इसी दौरान डॉ॰ सर्राफ केंसर से पीड़ित हो जाते हैं और दो सालों तक इस बीमारी से लड़ते भी हैं। इस भयानक बीमारी से लड़ने में वह डॉ॰ साहब को पूरा सहयोग देती है, किंतु अंततः 10 जनवरी 1993 को उनकी मृत्यु हो जाती है। 50 वर्षीय प्रभा को डॉ॰ सर्राफ के जाने से गहरा धक्का लगता है।

प्रभा जी ने आत्मकथा में अपने परिवार, आस-पास के लोगों, अपने नैतिक-अनैतिक संबंधों, भारत-चीन युद्ध, आंदोलनों, हड़तालों, दिसंबर में बाबरी मस्जिद ढहाने के कारण मुंबई में हुआ दंगा-फसाद के साथ ही बंगाल के बदलते रूप को, वहाँ के युवाओं का आक्रोश नक्सलवाद किस तरह कोलकत्ता के जीवन को अस्तव्यस्त कर देता है ये सारी घटनाएँ भी आत्मकथा में उभरकर आयी हैं। लेखिका ने अपने जीवन के साथ ही विदेशी सभ्यता का भी बखान किया है। अमेरिका, जर्मनी से लेकर चीन तक की यादें भी आत्मकथा में शामिल हैं। उन्होंने अपने व्यावसायिक एवं साहित्यिक जीवन को बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। उनकी आत्मकथा में स्त्री-विमर्श दिखाई देता है। उन्होंने भारतीय स्त्री एवं पाश्चात्य स्त्री, दोनों की पीड़ा, तकलीफ, घुटन, त्रासदी को मार्मिकता से चित्रित किया है।

वस्तुतः प्रभा जी की आत्मकथा उनके जीवन की कहानी है। साथ ही वह सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और एक साधारण व्यक्ति के सुख-दुख, आशा-निराशा को भी व्यक्त करती है। इस आत्मकथा से स्त्रीवादी विमर्श को समझने का प्रयास किया जा सकता है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाने वाली प्रभा खेतान साहित्यिक वैविध्य से परिपूर्ण अपना बहुमुखी व्यक्तित्व सिद्ध करती हैं।

संदर्भ

1. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन प्रा॰लि॰, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 16
2. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 15
3. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 31
4. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 29
5. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 95
6. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 193
7. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 255
8. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृ॰ 256

327, **जवाहरनगर, देवास (म॰प्र॰)**
मो॰ 099261 53862

वैदिककाल से अब तक नारी

मुकेश

सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि के निर्माण और संचालन में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव-जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास का मूलधार स्त्री को ही माना जाता है। स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो मूलभूत तत्त्व हैं। दोनों के सहयोग और समन्वय से सृष्टि की रचना होती है। सृष्टि की रचना में पुरुष की तुलना में स्त्री का योगदान अधिक है। गर्भधारण से लेकर संतान का जन्म तथा उसके पालन-पोषण का कार्य स्त्री ही करती है। इसलिए स्त्री को सृष्टि का आधार कहा गया है।

स्त्री : अर्थ एवं व्युत्पत्ति

स्त्री शब्द 'सत्यै' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'लज्जायुक्त' होना लिया जाता है। पाणिनी ने 'सत्यै' का अर्थ 'शब्द करना' लिया है। पतंजलि ने कहा है कि 'नारी को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। उनकी एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार स्पर्श, शब्द, रस, रूप और गंध का समुच्चय स्त्री है। पुरुष के ज्ञानेंद्रियों की तृप्ति नारी से होती है। इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है।[1]

पति का सम्मान करनेवाली होने के कारण नारी को महिला भी कहा जाता है। 'मह+इलच+या महिला' इस व्युत्पत्ति से भी स्त्री की महत्ता स्पष्ट होती है। वैदिककाल से लेकर आज तक नारी के लिए 'स्त्री' शब्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। 'स्त्री' वैदिक संस्कृत शब्द है। ऋग्वेद में इसका सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। वह परिवार की सूत्रधारक होने के कारण स्त्री कहलाती है तथा जन्म देने वाली होने के कारण जन्मदात्री कही जाती है।

भारतीय विद्वानों के विचारों में स्त्री

1. स्वामी विवेकानंद के अनुसार, 'स्त्री-पूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज में स्त्री-पूजन नहीं होता, वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता।'[2]

2. महात्मा गांधी के अनुसार, 'स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है। यदि शक्ति का अभिप्राय पाश्विक शक्ति है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है। यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति है, तो स्त्री-पुरुष से कहीं अधिक शक्तिमान है।'[3]

3. डॉ॰ राधाकृष्णन के अनुसार, 'एक पशु जिसका प्रशिक्षण नारी करती है, नारी मूलत: पुरुष की शिक्षिका है। जब भी, जब वह बच्चा होता है और तब भी, जब वह वयस्क होता है।'[4]

4. मुशी प्रेमचंद के अनुसार, 'मैं प्राणियों के विकास में स्त्री को पुरुष के पद से भी श्रेष्ठ मानता हूँ। जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा, हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ है। स्त्री पुरुष से उतनी ही

श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से।'[5]

5. सुमित्रानंदन पंत के अनुसार, 'स्त्री के बिना संसार एक अँधेरा कूप-सा है। स्त्री ही अलंकारों में सर्वोत्तम अलंकार है। इसके बिना कविता भी रसीली नहीं होती। यह मधुरता की एक मृदुला तपस्विनी है, सौंदर्य की अपूर्व खान है।'[6]

पाश्चात्य विद्वानों के विचारों में नारी

1. टामस सूर के अनुसार, 'स्त्री रात का तारा और प्रभात की हीरा है, वह तो ओस का कण है, जिससे काँटों का भी मुँह हीरों से भर जाता है।'

2. पेटरिका ब्रानका के अनुसार, 'स्त्री पत्नी, माता, उपभोक्ता, गृहिणी, स्वास्थ्य-निर्देशिका, शिक्षिका, सहयोगी, सलाहकार अर्थमंत्री, अनेक रूपों में एक ही समय सेवा करते हुए घर की बागडोर सँभालती है।

3. लीन यु तंग के अनुसार, 'जब हम सोच लेते हैं कि बिना माता के इस संसार में कोई नहीं आया, हमारी धारणा अत्यंत उदार हो जाती है।'

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री त्याग, करुणा की मूर्ति है और ममतावादी और स्नेहमयी है।

वैदिक-उपनिषद् काल में नारी

भारतीय आर्यों की श्रेष्ठतम संस्कृति का आदिस्रोत वैदिक साहित्य ही है, जिसके महत्व को देश-विदेश के विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। युग-युगों से पददलिता, अपमानिता और लांछिता नारी के गौरव एवं गरिमामय तथा पावन स्वरूप की सर्वाधिक प्रतिष्ठा यदि कहीं है तो वह वैदिक साहित्य में ही देखी जा सकती है।

वैदिककाल में भी समाज का आधार पितृसत्ता-प्रधान परिवार था। फिर भी वैदिककाल में स्त्री सच्चे अर्थों में गृहस्वामिनी थी, जिसे परिवार में सबके ऊपर शासन करते हुए समाज्ञीवत् समादरणीय स्थान प्राप्त था। वैदिकयुग में नारी पुत्री, पत्नी और माता के रूप में क्रमशः स्नेह तथा दुलार, समानाधिकार और प्रेम एवं आदर और सम्मान की अधिकारिणी थी, परंतु वेदों में ऐसे स्थलों की अधिकता है, जहाँ केवल पुत्र अथवा वीर की अभिलाषा व्यक्त की गई है। फिर भी तेजस्वती पुत्री तथा शत्रुनाशक पुत्र, दोनों ही माता के परम संतोष और गर्व की वस्तु है। कन्या की उत्पत्ति कल्याणप्रद तथा उसका स्वरूप मांगलिक माना जाता था। अथर्ववेद में तो कन्या में अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण शक्ति मानी गई है।[8]

जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि वैदिकयुग में कन्याएँ परिवार में माता-पिता के स्नेह एवं दुलार की अधिकारिणी और समाज में पावनता की प्रतीक मानी जाती थी। कुछ स्त्रियाँ बिल्कुल भी विवाह नहीं करती थीं और आजीवन अपने पिता के घर भाई के साथ ही रहती थीं। अतः दो प्रकार की स्त्रियाँ होती थीं—एक ब्रह्मवादिनी जो उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन करती थीं और दूसरी सद्योद्‌वाह, जो गृहस्थ में प्रविष्ट होकर वीर संतति का निर्माण करती हुई जीवन सफल बनाती थीं। मुनियों की भाँति जीवनयापन करने वाली ऋषि स्त्रियों का वर्णन भी आया है, जो धार्मिक साहित्य-सृजन की शक्ति रखती थीं और जिनकी ऋचाएँ ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध हैं। अल्तेकर ने सुलभा, मैत्रेयी, वाक प्राचितेई और गार्गी आदि स्त्रियों का उल्लेख करते हुए कहा है

कि वे वाचकनवी थीं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक विदुषी नारियों के उल्लेख उपलब्ध हैं। यही नहीं स्त्रियां शिक्षकों का पद भी ग्रहण करती थीं। वैदिकयुग मे स्त्रियाँ राजा तथा अन्य राज्याधिकारी भी बन सकती थीं और सभा एवं समिति में जाकर भाषण भी देती थीं।[9]

स्पष्ट है, बालविवाह की कुरीति वैदिकयुग में नहीं थी। कन्याएँ अपनी शिक्षा समाप्ति पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय ले सकती थीं। अपने लिए स्वयं ही पति चुनने वाली कन्याएँ प्रशंसनीय मानी जाती थीं। इसी प्रकार कन्याएँ पूर्ण स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर होती थीं। पर्दाप्रथा का भी कहीं उल्लेख नहीं था। माताएँ स्वयं अपनी युवती कन्याओं को सुसज्जित करके उत्सव में भेजती थीं, जहाँ युवक-युवतियाँ अपनी रुचि का जीवनसाथी चुनने में सफल होते थे। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के तालाब तथा नदियों में स्नान और जलक्रीड़ाएँ करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। कन्याओं के मित्र भी होते थे, जिनका स्वागत वे घर पर भी कर सकती थीं। संभवत: यह स्वतंत्रता जब अनुचित रूप से बढ़ गई होगी और इसके बुरे परिणाम हुए होंगे, तभी आगे चलकर स्मृतिकारों ने नारी की स्वतंत्रता पर बंधन लगा दिए होंगे।

वैदिककाल में पति-पत्नी के संबंध भी बहुत मधुर, सरस एवं मित्रतापूर्ण तथा अटूट कहे गए हैं। वैदिकयुग में विवाह, धर्म, प्रेम और आस्था का पावन बंधन था, जो सौभाग्य-प्राप्ति और कर्त्तव्य-पालन के लिए कभी भी विच्छिन न होने के लिए बाँधा जाता था। जहाँ पति-पत्नी ऋक् और साम, धौ और पृथ्वी, वीर्य और वीर्य धारण करने वाली तथा मन और वाणी के समान एक होकर एक-दूसरे के अनुगामी बनते थे। वेदों में पत्नी के ज्ञानवती होने, घर की मुखिया, धैर्यशालिनी होने के स्पष्ट उल्लेख हैं। वह शत्रु का नाश करने वाली है, अत: पति को चाहिए कि वह उसके अनुकूल व्यवहार करे। स्त्री को पति की कामना पूर्ण करने वाली तथा एक पत्नीव्रत धर्म को धारण करते हुए पूर्ण जीवन एक ही पति के साथ व्यतीत करने वाली होने का आदेश भी है। साथ ही घर के संपूर्ण हितों को बढ़ानेवाली भौतिक सुखों को प्राप्त कराने वाली ज्ञानवृद्ध बनकर घर और बाहर वक्तृता देनेवाली तथा उच्च स्थान की अधिकारिणी मानी गई है।

वैदिककाल में पर्दाप्रथा का कहीं संकेत नहीं था। स्त्री पुरुष के साथ संपूर्ण सामाजिक उत्सवों में पूर्ण स्वतंत्रता से भाग लेती थी। वैदिककाल आनंद और उल्लास, प्रेम और विलास का युग था। हिंदूआर्य नृत्य और गान में रुचिपूर्वक भाग लेते थे तथा सुरा और सोम का पान करते थे। धार्मिक कर्म करने के लिए भी पत्नी समान रूप से अधिकारिणी होती थी। इसके अतिरिक्त पुरुष के अभाव में भी अकेले ही वह संध्योपासना तथा अग्निहोत्र आदि करने के योग्य समझी गई थी। पत्नी द्वारा अपराध किए जाने पर भी उदारता का व्यवहार किया जाता था। वरुण प्राद्यास यज्ञ में अपने अपराध की स्वीकृति करने पर वह यज्ञादि धार्मिक कृत्यों की अधिकारिणी बनकर समाज में पुन: प्रतिष्ठा पाती थी।

वैधव्य अपार दु:ख का कारण था। विधवाओं के पुनर्विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। मृतक पति के शव के साथ लेटी पत्नी (जो केवल पति के साथ जलाए जाने की परिपाटी निभाने लिए चिता पर कुछ देर के लिए लेट जाती) को उसका देवर या कोई अन्य पुरुष मृतक के पास से उठकर जीवितों के संसार में आने का, संतान और संपत्ति प्राप्त करने का संदेश देता है। इस प्रकार विधवाओं की स्थिति सुदृढ़ और सम्माननीय थी। विधुर भी विवाह करते थे और अन्य विशेष स्थितियों में दूसरे विवाह के उल्लेख भी हैं, परंतु अनेक विवाह केवल राजा, पुरोहित या

अन्य कुछ धनवान व्यक्ति ही कर सकते थे। इस प्रकार इस काल में स्त्रियाँ गौरवमयी, आदरयुक्त और सम्माननीय जीवन-निर्वाह करती थी।

वैदिकयुग में माता का स्थान सर्वाधिक सम्माननीय व पूजनीय था। उपनिषदों में भी माता को देवतुल्य पूजने का आदेश दिया गया है। भक्त ने भी भावविह्वल होकर परमात्मा को पिता न मानकर माता के रूप से ममता करते हुए उनसे माता द्वारा प्राप्त होने वाले सुख-शांति तथा रक्षण की कामना की है। पुत्री के विवाह आदि में भी माता का महत्त्वपूर्ण भाग होता था। परंतु माता के अधिकार सीमित थे। यदि समाज और पिता किसी कारणवश पुत्र को त्याग देता था तो वह उसे क्षमा नहीं कर सकती थी।

इससे पता चलता है कि माता का स्थान पिता के बाद दूसरा था, फिर भी माता रूप में स्त्री अधिक सम्माननीय स्थिति की अधिकारिणी थी।

रामायण काल में नारी

रामायण, महाभारत और गीता को भारतीय संस्कृति की पहचान माना जाता है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं रामराज्य को आदर्श राज्य की संज्ञा दी गई है और आदर्श राज्यों में स्त्रियों की स्थिति कितनी आदर्श थी, हमें विश्लेषण करना पड़ेगा। राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं और उस समय एक से अधिक पत्नियों को रखा जा सकता था। बहुपत्नी-प्रथा के बावजूद स्त्रियों में आपसी द्वेष और घृणा नहीं पाई जाती थी। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा का आपसी प्यार और सम्मान अनुकरणीय था। स्वयंवर-प्रथा द्वारा लड़की अपना पति चुन सकती थी, फिर भी पिता की आज्ञा प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक था। स्वयंवर की शर्तें भी लड़की नहीं, उसका पिता तय करता था। स्त्रियों की खामोशी को आदर्श स्थिति माना जाता था, क्योंकि वाचालता कलियुग की निशानी मानी गई थी।[10]

आदर्श रामराज्य भी वेश्यावृत्ति से अछूता नहीं था। वेश्याओं का इस्तेमाल उच्चवर्ग और राजाओं के मनोरंजन के लिए किया जाता था। राजा दशरथ के राज्य में भी वेश्याएँ थीं और रिझाने का कार्य करती थीं। महाराज मुनि के राज्य दरबार में आने से मना करने पर भला दशरथ कहते हैं कि 'अगर सुंदर आभूषणों से विभूषित होकर मनोहर रूप वाली वेश्याएँ वन में जाएँ और भांति-भांति के उपायों से उन्हें लुभाएँ तो वे इनके पीछे-पीछे नगर में आ जाएँगे। तब नगर की मुख्य-मुख्य वेश्याएँ राजा का आदेश सुनकर वन में गईं और मुनि के आश्रम से थोड़ी दूरी पर ठहरकर उनको लुभाने का उद्योग करने लगीं।'

पति-पत्नी का संबंध अत्यंत पवित्र और विश्वासवाला माना जाता रहा है। दोनों को जन्म-जन्म का साथी माना जाता है और प्रत्येक दुख-सुख में संग रहने का विश्वास दिलाया जाता है। राम को आदर्श पति और सीता को आदर्श पत्नी माना जाता रहा है। हमारी संस्कृति में राम जैसा पति पाने की इच्छा प्रत्येक कन्या करती है, क्योंकि राम सीता को केवल प्रेम ही नहीं करते थे, बल्कि सम्मान भी देते थे। ऐसा माना जाता रहा है कि सीता के लिए ही उन्होंने रावण का संहार किया था। परंतु राम ने रावण के संहार के कुछ दूसरे कारण माने और रावण को सीता के लिए नहीं, बल्कि सदाचार की रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक का परिमार्जन करने के लिए मारा।

 ISSN 0975-735X

राम को आदर्श राजा और पति होने के नाते जहाँ सीता को सम्मान के साथ अपने राज्य अयोध्या लाना चाहिए था, क्योंकि वे समझते और जानते थे कि सीता के अपहरण में सीता का कोई दोष नहीं था।

रामराज्य का अध्ययन करते हुए हमें कई बार कष्टपूर्ण वचनों से गुजरना पड़ता है। सीता को अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए अग्निपरीक्षा से गुजरना पड़ता है। इतना ही नहीं इन्हें दोबारा वनगमन करना पड़ता है, जबकि गर्भस्थ स्त्री की वेदशास्त्रों में पूजा की गई है और उसकी सेवा एवं देखभाल को पवित्र माना गया है। वनगमन का कारण था–राम द्वारा एक साधारण जन से सीता की पवित्रता के बारे में संदेह जताते हुए सुन लेना।

अपने निर्णय की सफाई में कहते हैं, जिस किसी भी प्राणी की अपकीर्ति लोक में सबकी चर्चा का विषय बन जाती है, वह नरक में गिर जाता है और जब तक उस अपयश की चर्चा होती है, तब तक वह वहीं पड़ा रहता है।

सच समाज के आदर्श पुरुष को नरक से तो बचना ही चाहिए और सीता के मौन के पीछे माना जा सकता है कि केवल उनका संस्कारों में पालन-पोषण ही इसका कारण नहीं रहा होगा बल्कि पतिपरमेश्वर की आज्ञा का पालन करना ही उसका सर्वधर्म था।

स्वयंवर-प्रथा, कन्याओं के प्रति सम्मान और प्रेम पति के साथ एक सिंहासन या एक स्तर पर बैठने का अधिकार आदि में दोनों काल में सम्मान ही दृष्टिगोचर होते हैं। परंतु स्वयंवर में लड़की स्वयंवर का चुनाव न करके रामायणकाल की ही तरह शर्तों के अनुसार आचरण करने वाले कुमार को ही वरमाला डाल सकती थी या पिता द्वारा निर्देशित व्यक्ति को ही जीवनसाथी बना सकती थी। जैसा कि द्रौपदी-स्वयंवर में हमने पढ़ा है। परंतु स्वयंवर भी कभी-कभी युद्ध के अखाड़े बन जाते होंगे। क्योंकि ताकतवर राजकुमार जो कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर सके, का बोलबाला था। भीष्म का कहना 'क्षत्रिय स्वयंवर की प्रशंसा करते और उसमें जाते हैं, परंतु उसमें भी समस्त राजाओं को परास्त करके जिस कन्या का अपहरण किया जाता है, धर्मवादी विद्वान क्षत्रिय के लिए उसे सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।' भीष्म द्वारा स्वयं भी अंबा, अंबिका, अंबालिका का अपहरण किया गया था।

नियोगप्रथा प्रचलन में थी, अर्थात् पति की मृत्यु के पश्चात् पति के भाई या नगर के श्रेष्ठ पुरुष द्वारा पुत्र-प्राप्ति के लिए संभोग करना। महाभारत में शांतनु के छोटे पुत्र विचित्रवीर्य के देहांत के पश्चात् शांतनु की पत्नी सत्यवती व्यास से कहती है कि जैसे एक पिता के नाते भीष्म उसके भाई हैं, उसी प्रकार एक माता के नाते तुम भी विचित्रवीर्य के भाई हो। अतः उसकी पत्नियों से पुत्र-प्राप्ति करो।

महाभारतकाल में भी स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। तब भी स्त्री मात्र अपने पति की संपत्ति के रूप में होती थी। जिसे चाहे जैसे इस्तेमाल किया जाता था। फिर स्वयं की रक्षा के लिए उसे दाँव पर लगा देना पत्नी का सौभाग्य माना जाता था। यूँ भी रीत प्रचलित थी, आपत्ति के लिए धन की रक्षा करें, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करें और स्त्री तथा धन दोनों के द्वारा अपनी रक्षा करें।

सती-प्रथा का प्रचलन था और सती को सम्मान, पूजा और आदर दिया जाता था। क्योंकि माना जाता था कि पति की मृत्यु के साथ मृत्यु स्वीकार करना पति के लिए महान फलदायक

होता है। जो स्त्री साध्वी होती है, वह अपने पति की मृत्यु हो जाने के बाद ब्रह्मचर्य के पालन में अविचल भाव से लगी रहती है, यम और नियमों के पालन का क्लेश सहन करती है और मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किए जाने वाले शुभ कर्मों तथा व्रत, उपवास और नियमों का अनुष्ठान करती है। वह क्षार और लवण का त्याग करके एक ही बार भोजन करती है और भूमि पर शयन करती है। वह जिस किसी प्रकार से भी अपने शरीर को सुखाने के प्रयत्न में लगी रहती है। अर्थात् अगर पति की मृत्यु हो जाए तो पत्नी के लिए सब-कुछ समाप्त समझा जाता था और उसकी दैनिक आवश्यकताओं को स्वार्थ और पाप समझा जाता था।

समाज में एक पति एक पत्नी के आदर्श के अनुसार भी स्त्री पुरुष के दोहरे मापदंड अपनाए जाते थे। बहुत सी स्त्रियों से विवाह करने वाले पुरुषों को भी पाप नहीं लगता। पुत्री को इस काल में भी संकट माना जाता था। पुत्र अपनी आत्मा है, पत्नी मित्र है किंतु पुत्री निश्चय ही संकट है।

रामायण में जिस प्रकार सीता रावण द्वारा बलात् अपहरण के बाद अपवित्र मान ली गई थी, उसी प्रकार द्रौपदी चाहे अपने पति द्वारा जूए में हरवा दी गई हो, चाहे दुशासन द्वारा बलपूर्वक भरी सभा में केशों से खींचकर लाई गई हो, तब भी अपवित्र उसे ही होना पड़ा। भीम द्वारा कहना कि हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी के शरीर का बल स्पर्श करके दुशासन ने उसे अपवित्र कर दिया है। इससे हमारी संतान रूपी ज्योति नष्ट हो गई, जो पराये पुरुष से छू गई, उस स्त्री से उत्पन्न संतान किस काम की होगी।

भगवद्यान पर्व में राजा ययाति ने आठ सौ श्यामवर्ण घोड़ों के लिए अपनी कन्या गालव को बेच दी। साथ ही वह अपनी पुत्री को बाजार की वस्तु की तरह पेश करते हुए कहते हैं, इसके शुल्क के रूप में राजा लोग निश्चय ही अपना राज्य भी आपको दे देंगे। फिर आठ सौ श्यामवर्ण घोड़ों की तो बात ही क्या है।[11]

अतः उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् महाभारतकाल में स्त्रियों की स्थिति को लेकर कोई संशय नहीं रह जाना चाहिए।

बौद्धकाल में नारी

भगवान बुद्ध ने यद्यपि स्त्रियों को भी बौद्धधर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करके उस युग की सर्वाधिकारों से वांचित, वांछित, प्रताड़ित एवं पतित समझी जाने वाली नारी जाति के लिए उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया। तथापि नारी जिसे समाज ने सब दोषों का मूल मान लिया था, विशेष सम्मान की अधिकारिणी न बन सकी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि बौद्धकाल में स्त्रीजाति के प्रति संवेदना का स्वर ध्वनित हुआ।

आरंभ में बुद्धदेव स्त्रियों के संघ में प्रवेश के पक्ष में नहीं थे, परंतु उनके शिष्य दयालु आनंद ने स्त्रियों की दुरवस्था तथा सास-ननद के अत्याचारों से पीड़ित वधुओं की दारुण व्यथा से द्रवित होकर स्त्रियों को मठों में शरण देने की प्रार्थना की। 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि, धर्मं शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि' का अमृत मंत्र मानव-मात्र के उद्धार का मूल मंत्र था। अतः विवाहिता-अविवाहित, विधवा, वेश्या और पतिता, प्रत्येक दुखिनी के लिए संघ का द्वार खोल देना पड़ा, क्योंकि नरकतुल्य गृह की सीमाओं के बंधन से मुक्त होने के लिए स्त्रियों के लिए बौद्धमठ

ही एकमात्र आधार था। जिसके अनुकरण के लिए उन्होंने उनके लिए अनेक कठोर नियम भी बनाये थे। लेकिन बौद्धविहारों में स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से उत्पन्न दोषों को रोका न जा सका। बौद्धधर्म के पतन का यह भी एक कारण बना। शायद यही कारण रहा होगा कि निवृत्ति पथ पर आरूढ़ संन्यासी बौद्ध धर्मावलंबियों ने जिन बौद्धगाथाओं का चित्रण जावक साहित्य में किया, उसमें स्त्री-मात्र के प्रति सीमांतीत घृणा, अविश्वास एवं अपमान का स्वर ध्वनित होता है। निवृति पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहन हेतु बौद्ध साहित्य में स्त्री-मात्र पर हीनतम, वीभत्स, घृणित तथा पतनकारी कुकृत्यों के लांछन लगाए। अब तक स्त्रियों की चाहे कितनी भी भर्त्सना क्यों न हुई हो, परंतु मातृरूप में वह सदा ही पूजनीय रही है। जातक-कथाओं में माता को पुत्र के साथ व्यभिचार लिए उद्यत तथा एक अन्य वृद्ध आचार्य की अति वृद्धा तथा अंधी माता का एक युवक शिक्ष्य पर आसक्त होकर अपने पुत्र का वध करने की अभिलाषा करते हुए दिखाया है, जिससे वह निश्चिंत होकर भोग-विलास कर सके। इस प्रकार जातकों में स्त्रियों को अस्वाभाविक रूप से असाध्वी तथा दीपशिखा की भाँति सबको भस्म कर देने वाली कहा गया है। कामविह्वल हो जाने पर स्त्रियों में असंयम, असंतुष्टि तथा अमर्यादा की कोई सीमा नहीं रह जाती। इससे विदित होता है कि बौद्ध साहित्य में स्त्री-निंदा पराकाष्ठा पर पहुँच हुई है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भले ही भगवान बुद्ध और उनके आनंद जैसे कुछ शिष्यों ने स्त्रियों के उद्धार का प्रयास किया और उनके प्रति उदारता का दृष्टिकोण रखा, परंतु उस युग के समाज और साहित्य दोनों में नारी की स्थिति शोचनीय तथा अपमानजनक थी।

जैनकाल में नारी

जैन और बौद्ध दोनों धर्मों के दार्शनिक सिद्धांत लगभग एक समान ही हैं। दोनों ही धर्मों में मोक्ष का साधन संन्यास माना गया है। श्री दिनकर ने कहा है कि जैन महात्मा तो इंद्रियसुखों के घोर शत्रु हैं। उनका विचार है कि पाप करने से ही जन्म होता है। अधिक पाप करने से मनुष्य को विवाह करना तथा गृहस्थी के अनेक जंजालों में पड़ना पड़ता है। अत: भोग-आसक्ति ही पाप है। जैनधर्म के मतानुसार मोक्ष का सेवन केवल संन्यासी ही कर सकते हैं।

माता के रूप में नारी-जाति को यहाँ भी आदर मान मिला है। माता का भरण-पोषण और उसकी सुरक्षा कर्त्तव्य कहा गया है। जैन तीर्थंकरों में मल्लीनाथ का उल्लेख मिलता है। कुछ श्राविकाओं का वर्णन भी आया है। उमाकांत प्रेमानंद शाह ने 'जक्कय वे नगर' खंड की अधिकारिणी का वर्णन किया है, जो पति की मृत्यु पर नियुक्त की गई थी। परंतु ये कुछ गिने-चुने उल्लेख नारी-मात्र की सुदृढ़ स्थिति के प्रमाण नहीं माने जा सकते। क्योंकि निवृत्ति मार्ग की अवरोधक नारी-जाति के प्रति जैन मतावलंबियों के विष-बुझे वाक्य-बाण नारी-मात्र की स्थिति को हीन बनाने वाले हैं।

जैन आचरांग सूत्र के अनुसार स्त्रियों को सुख का साधन समझना पुरुषों की मूर्खता है। क्योंकि स्त्रियाँ अज्ञान, दु:ख, मृत्यु और नरक का द्वार हैं। जैनधर्म के ग्रंथों में स्त्रियों का प्रेम अस्थायी, स्त्री रूपी हाथी वासनाओं का गढ़, तीक्ष्ण विष तथा उसका सुख प्रवंचना भर ही माना गया है। स्त्री-मात्र को एक जहरीला पत्थर कहा गया है, जो लगते ही मृत्यु को बुलाता है। अत: उसके प्रकोप से बचना चाहिए।[12]

दिनकर के मतानुसार बौद्ध और जैन मतावलंबियों के मतों का भीषण प्रभाव यह हुआ है कि समाज में नारी के प्रति घृणा और विरक्ति उत्पन्न हुई तथा उसका दृष्टिकोण अमानुषिक अर्थात् इस जीवन के सुखों के स्थान पर मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले सुखों की प्राप्ति पर विचार करने का बन गया।

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनसाहित्य में भी कटु वाणी में नारी की निंदा का उद्घोष हुआ है।

भक्तिकाल में नारी

इस समय तक मुस्लिम आक्रमणकारियों ने धर्म के प्रचार व आर्थिक लाभ के उद्देश्य से भारत में अपना शासन स्थापित कर लिया था। 1206 शहाबुद्दीन गौरी की पृथ्वीराज चौहान पर विजय के साथ ही क्षत्रियों की राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गई। दूसरी ओर हिंदूसमाज में जाति-व्यवस्था अच्छी तरह से स्थापित हो चुकी थी। कर्मकांडों, संस्कारों व मूर्तिपूजा का जोर होने के कारण, ब्राह्मण अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित कर चुके थे तथा शूद्रों के साथ उनके दुर्व्यवहार चरमसीमा पार कर चुके थे। भारत में 12वीं शती में रामानुजाचार्य द्वारा चलाया गया भक्ति-आंदोलन क्रमशः फैला। 'सगुण भक्ति' की अनेक शाखाएँ महान धार्मिक गुरुओं जैसे कि रामानुज, माधव, निंबार्क, चैतन्य तथा अनेक संतों जैसे कि रामानंद, कबीर, नानक, तुलसी, मीरा, ज्ञानदेव, नामदेव, रैदास, चरणदास आदि के नेतृत्व में अस्तित्व में आईं, जिनकी विशेषता मानवतावाद होने के कारण उनका प्रभाव निम्न जातियों पर अधिक पड़ा। क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य लिखा गया, क्योंकि संस्कृत पर उच्चवर्ग का कब्जा था।

भक्ति-आंदोलन का भारतीय स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा। अब तक महिलाएँ और ज्यादा कठोर नियमों में बँध गई थीं। वजह बताई गई मुस्लिम शासकों का कुप्रभाव। स्त्री-शिक्षा प्रायः समाप्त हो गई। पर्दाप्रथा को और भी प्रोत्साहन मिला। लड़कियों के विवाह की उम्र 4 साल तक भी कर दी। बेमेल विवाहों की संख्या बढ़ गई। विधवा-विवाह पूर्ण रूप से बंद हो गए। सतीप्रथा चरमसीमा पर पहुँच गई। उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन कर दिया गया तथा उनके समस्त अधिकार व स्वतंत्रता छीनकर गृहस्थी को ही उनकी समस्त क्रियाओं व आशाओं का एकमात्र केंद्र बना दिया गया। परंतु भक्ति-आंदोलन के समानतावादी व मानवतावादी आदर्शों ने स्त्रियों को भी भक्तिमार्ग के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर प्रेरित किया तथा परिणामस्वरूप कई महिला संत भी इस समय प्रसिद्ध हुईं, जिनमें मीराबाई, जनाबाई, मुक्ताबाई आदि हैं। परंतु एक ओर मुस्लिम समाज की बहुविवाह व पर्दाप्रथा का प्रभाव व दूसरी ओर हिंदू समाज की कट्टरता के आदर्शों के नियंत्रण, कन्यादान का आदर्श, अपनी जाति में विवाह, पूर्वज श्राद्ध में पुत्र का महत्त्व, उपनयन संस्कार द्वारा केवल पुत्रों को ही धार्मिक शिक्षा का अधिकार, पातिव्रत धर्म द्वारा नैतिकता का दोहरा मापदंड, विधवा का अनाकर्षक वेश, विभिन्न प्रतिबंध, सतीप्रथा आदि हिंदू समाज में कठोरता के साथ माने जाते रहे तथा ब्रिटिश शासनकाल तक स्त्रियों की स्थिति गिरती ही चली गई। वह पूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन हो गई। वह घर की चारदीवारी के अंदर कैद होकर रह गई।

भक्तिकाल में नारी के दो रूपों का चित्रण हुआ। प्रथम पतिव्रता नारी और द्वितीय

 ISSN 0975-735X

अध्यात्म साधना के मार्ग की अवरोधक माया रूपी नारी। युगों-युगों से धार्मिक अधिकारों से वंचिता नारी को भक्ति का वरदान भी इस युग में मिला और संत चरणदास की शिष्याएँ सहजोबाई, दयाबाई, संतकाव्य में योगदान करके सम्मान की अधिकारिणी बनीं। भक्तिकाल में पतिव्रता नारी का एकनिष्ठ पत्नीत्व तथा वात्सल्यपूर्ण मातृत्व आकर्षण का केंद्र था। अन्यथा स्त्री-मात्र पर दृष्टिपात नरक कुंड में गिरानेवाला और नारी का स्नेह रसातल को प्रेषित करने वाला कहा गया है।[12]

भक्तों और संतों का जीवन तप, त्याग, वैराग्य और निवृत्ति-पथ का अनुगामी है। अंत: वैरागी जीवन की अवरोधक नारी पूर्ण कटुता से निंदा और भर्त्सना की पात्र बनी है। उनकी दृष्टि में नारी केवल पतन की ओर प्रेरित करने वाली नागिन, बाघिन, विषफल, विषबेली, त्रियोगुण विनाशिनी, साक्षात् नर्क की कुंड है। अत: वह सर्वथा त्याज्य है। नारी-निंदा की उस झोंक में कवि नारी के मातृत्व की भी अवहेलना कर बेठे हैं। उग्रवाणी में निंदा करने पर भी संतकवि स्त्रीत्व की गरिमा और पतिव्रता की दृढ़ता से अभिभूत नारी के सत रूप के प्रति आकर्षित हुए हैं। फलत: उनकी वाणी प्रतीकरूप में स्वयं (भक्त) को भी प्रभु की प्रेयसी, पत्नी और स्वकीया, नायिका मानकर दांपत्य-भाव की सरस और मनोहर स्वरूपों में अभिव्यंजित हुई है। नारी के मातृत्व के उदार, क्षमाशील पक्ष के प्रकाश में संतों ने परमात्मा को माता और स्वयं को बालक का प्रतीक मानकर नारीहृदय के मातृपक्ष का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है।

अत: कहा जा सकता है कि भक्ति के क्षेत्र में नारी को अधिकार दिया गया है, परंतु समाज में साधारण नारी उनकी उपेक्षा, घृणा और निंदा की पात्र रही है।

1857 **से** 1900 **ईस्वी तक का योगदान**

इसे भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं। पहला 1857 का संघर्ष और उसमें महिलाओं का योगदान। दूसरा 1858 से 1900 तक के मध्य महिलाओं में राजनैतिक चेतना का जाग्रत होना। 1857 की लड़ाई पहला संगठित शस्त्र आंदोलन था, जो अँग्रेजों के खिलाफ किया गया। लड़ाई के प्रमुख नेताओं में महिला और पुरुष दोनों ही थे। महिलाओं में प्रमुख थीं बेगम हजरतमहल, रानी लक्ष्मीबाई, रामगढ़ की रानी तेशीबाई इत्यादि। इनमें से किसी ने सेना का नेतृत्व करते हुए युद्ध में अँग्रेजों का सामना किया तो कुछ यातनाएँ कैद और मृत्यु को स्वीकार करते हुए संघर्षरत रहीं।

नारी-जागरूकता आंदोलन

बंगाल और महाराष्ट्र में समाज-सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू कर दिया। स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्त्व पर राजा राममोहन राय द्वारा आत्मीय सभा द्वारा सार्वजनिक बहस छेड़ी गई। सतीप्रथा, बालिका-वध, बालविवाह आदि स्त्री-विरोधी प्रथाओं का विरोध शुरू हुआ। इसका हम क्रमवार वर्णन करेंगे–

1829 ई॰ में विलियम बैंटिक द्वारा सती निर्मूलन एक्ट पास किया गया।

1856 ई॰ में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित किया गया।

1880 ई॰ के उत्तरार्द्ध से अनेक कुलीन आर्यसमाजियों ने कन्या पाठशालाएँ खोलीं।

1910 से 1920 का दशक ऐसा था, जिसमें सर्वप्रथम अखिल भारतीय महिला संगठनों

के प्रयास आरंभ हुए।

1917 ई॰ में नारी-उत्थान के लिए महिलाओं की भारतीय परिषद् का गठन हुआ।

1927 में अखिल भारतीय महिला परिषद् का गठन हुआ।

1929 ई॰ में अखिल भारतीय शिक्षा कोष का गठन हुआ।

1949 ई॰ में स्नातिका संघ का गठन हुआ।

1945 ई॰ कस्तूरबा गांधी मैमोरियल ट्रस्ट की स्थापना हुई।

1953 ई॰ में समाज कल्याण संस्था का गठन हुआ।

1953 ई॰ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की विजयलक्ष्मी पंडित अध्यक्ष बनी

इनके अतिरिक्त अनेक बदलाव सामाजिक स्तर पर हुए। नारी-समस्या को लेकर लगातार संघर्ष किए गए, जो आज भी जारी हैं। कुछ ज्यादा ही ज्वलंत मुद्दों को देखा जाए तो उनमें दहेज-प्रथा और बलात्कार जैसे विषय जो नारी की मौत पर जाकर ही खत्म होते हैं, इनके खिलाफ भी लगातार आवाज उठाई जाती रही है।

संदर्भ

1. डॉ॰ बल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 36-37
2 कल्याणी, नारी विशेषांक, पृ॰ 130
3 डॉ॰ वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 39-40
4 नरेशकुमार, हिंदी व्युत्पत्ति कोश, पृ॰ 178
5 द्वारकाप्रसाद शर्मा व झा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ. 36
6 डॉ॰ बल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 36
7 रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, तृतीय खंड, पृ॰ 250
8 अथर्ववेद 10/3/20 तथा 12/1/25
9 मेरा धर्म, प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ॰ 23 पर अथर्ववेद 7/38/4 और 2/3/52 का उल्लेख करने हेतु ऐसी स्त्रियों का वर्णन किया है।
10 ऋग्वेद 10/27/12
11 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण पृ॰ 7, 8, श्लोक 2
12 संत सुंदरदास, पृ॰ 663

788, **वार्ड नं॰** 20, **गली नं॰** 2
देवीगढ़ रोड
कैथल (हरियाणा)

ISSN 0975-735X

एक विस्मृत रचनाकार : प्रभाकर माचवे

डॉ॰ कृष्णा शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर

जीवन-जन्म तथा शैशव

प्रभाकर माचवे का जन्म मराठी परिवार में 26 दिसंबर 1917 में हुआ था। वे महाराष्ट्र में रहे नहीं। तीन पीढ़ियाँ पहले इनके पूर्वज जन्मस्थान को छोड़कर मध्य प्रदेश में आ बसे थे। इनके पितामह किसी मुसलमान जमींदार के पास एवं पिता रेलवे में काम करते थे। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् पिता ग्वालियर में पोस्टमास्टर बन गए। माचवे जी ने अपने वंश की जड़ों तक पहुँचने की चेष्टा बहुत की, पर वह व्यर्थ रही। जहाँ भी उन्हें अपने पूर्वजों के विषय में कुछ सुराग मिलता, वे वहाँ पहुँच जाते, परंतु हर जगह निराशा ही उनके हाथ लगी। माचवे जी का जीवन उस सहज सरिता का प्रवाह है, जो सम-विषम स्थलों की चिंता न कर स्वच्छंद गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती रहती है। एक साधारण से परिवार में जन्म लेनेवाला प्रभाकर, एक दिन देश-विदेशों में 'प्रभाकर' समान दमका।

माचवे जी ने अपने जन्म-स्थान के विषय में लिखा है, 'ग्वालियर मैंने अपने होश-हवास में देखा नहीं है, न उस घर को पहचान सकता हूँ, जिसमें मेरा नार गड़ा है। रतलाम आने के बाद ही मुझे अपने बारे में याद आता है।'[1]

प्रभाकर माचवे अपने माता-पिता की चौदहवीं एवं अंतिम संतान थे। इनकी माता जबलपुर की, धार्मिक स्वभाव की अनपढ़ महिला थीं। वे अपनी माता के अधिक निकट थे। जहाँ पिता की याद वे क्रोधी व मारने वाले व्यक्ति के रूप में करते थे, वहीं माँ की याद उन्हें स्नेही जननी की याद दिला देती थी। उनके अनुसार पिता की याद इतनी है कि वे बड़े क्रोधी थे, मारते भी थे, सवेरे उठाकर कसरत करवाते थे। संस्कृत पढ़वाते थे। हमें तभी से संस्कृत व व्याकरण से नफरत हो गई। उनके होते हुए शैतानी न कर पाते थे। माँ हमें आँचल में छुपाए घूमती थीं। सबसे छोटी संतान सबसे प्रिय होती है।[2]

बचपन की यादों में उन्हें रेलों के आवागमन की याद है। और याद है वह कुआँ, जो बरसात में ऊपर तक भर आता था। पर कुल मिलाकर उनका बचपन कठिनाई में गुजरा।[3] पिता की असामयिक मृत्यु ने माचवे जी को बहुत अकेला कर दिया था। सबसे छोटे होने के कारण वे शैतान बच्चों के साथ घुलमिल नहीं पाते थे। वे सबसे कटते, अलग होते चले गए और पढ़ाकू बन गए। शुरू में जिनसे माचवे जी को नफरत हो गई थी, संस्कृत, व्याकरण व व्यायाम, बाद में वही उनके बहुत काम आई। व्यायाम से उनका शरीर मजबूत बना और संस्कृत रटने के कारण

उनकी याददाश्त तेज हो गई।

माचवे जी की बचपन से ही तर्कबुद्धि तेज थी, जिसके कारण उन्होंने कई वाद-विवाद और वार्ताओं में हिस्सा लिया और कई पदक जीते। फिर उनका बचपन बहुत सुखद बीता। उन्होंने दो बड़ी विधवा बहनों के साथ अत्याचार होते देखा, धर्म के नाम पर, जिसमें बड़ी बहन अत्याचारों के कारण पागल हो गई और अपनी छोटी बहन को बहुत विरोधों के बावजूद माचवे जी ने पढ़ाया और अध्यापिका की नौकरी भी दिलवाई। एक बार किसी पुजारी ने उनकी माता की सोने की चूड़ियाँ छीननीं चाहीं, तो वे मूर्तिपूजा के और धर्म के नाम पर होनेवाले ढकोसलों के विरोधी हो गए। बचपन से ही इन अंधविश्वासों के खोखलेपन की छाप उनके मन पर अंकित हो गई थी। इस प्रकार जीवन के आरंभ में ही माचवे जी के कुछ ऐसे ठोस संस्कार पड़ गए थे, जो अंत तक उनके अंतर्मन में कायम रहे और एक निश्चित लीक पर चलने में उनका सहयोग देते रहे।

माचवे जी के बड़े भाई का नाम गणेश माचवे था। वे रेलवे में नौकरी करते थे। उन्होंने भी अपने जीवन का अधिकतर समय ग्वालियर में बिताया। उनके मँझले भाई का नाम काशीनाथ माचवे था। माचवे जी की बहन का नाम द्वारकाताई था। द्वारका में जन्म होने के कारण उनका नाम द्वारकाताई रखा गया था। वह देवास (मध्य प्रदेश) में अध्यापन का कार्य करती थीं। द्वारका बहन प्राइमरी स्कूल की कुशल अध्यापिका थीं। माचवे जी के अक्षराभ्यास का प्रारंभ माँ के श्रीचरणों में ही हुआ। माँ बड़ी श्रद्धालु होने के कारण प्रभाकर माचवे जी से वह प्रतिदिन पोथियाँ पढ़वाकर सुनती थीं। इसी कारण आगे चलकर माचवे जी दर्शनशास्त्र के छात्र बने और संतसाहित्य पर शोधप्रबंध लिखा। उनकी माताजी की मृत्यु सन् 1950 में हुई। उनके पितामह बिट्ठल पंत माचवे जी का संबंध संत ज्ञानेश्वर से बतलाया जाता है। वे अहमदनगर के पास बालकी नदी पर बसे हुए बालकी गाँव के निवासी थे।

'प्रभाकर' का पर्याय है 'मित्र या सूर्य'। लेकिन माचवे जी 'मित्र' इस अर्थ को ग्राह्य मानते हैं, जो जलाने की अपेक्षा अधिक स्नेह संवर्धित करे। उनके नाम के अनुसार संसार-भर में उनके कई मित्र व साथी थे। कई संकटग्रस्त मित्रों को उन्होंने बाँह दी। सूर्य के समान हमेशा वे चलते रहते थे। सफर ही उनके जीवन की मंजिल थी।

माचवे नाम का संबंध मछुए से जोड़ा जाता है। माचवे-मचवा (छोटी नाव) या मछुए का ही अपभ्रंश रूप है। माचवे मछुए का व्यापार करने वाली एक जाति-विशेष है। माच याने माँसा तोला। यह व्यापार क्षेत्र की नाप तौल की वस्तु है। इसलिए माचवे जी के पूर्वज व्यापारी रहे होंगे। ऐसा अनुमान कई लोग करते हैं। लेकिन यह सब अर्थहीन है, माचवे जी स्वयं बतलाते थे कि उनके पूर्वज किसान थे, उन्होंने कोई व्यापार नहीं किया।

शिक्षा व नौकरी

उनकी आरंभिक शिक्षा अपनी माँ के श्रीचरणों में घर में ही आरंभ हुई। उनके अग्रज काशीनाथ माचवे गणित के अध्यापक थे। घर पर ही उन्होंने मिडल की तैयारी की और मिडल पास हुए। बचपन से ही माचवे जी को चित्रकला के प्रति रुचि थी। घर में बैठे-बैठे कई सुंदर चित्र वे बनाते थे। प्रभाकर माचवे ने 1930 ई॰ में रतलाम दरबार हाईस्कूल से मैट्रिक पास की। रतलाम में ही उन्होंने कई भाषाएँ सीखीं।

 ISSN 0975-735X

माचवे जी ने क्रिश्चियन कॉलेज इंदौर से स्नातक किया। राजनीति के प्राध्यापक श्री एन॰सी॰ चटर्जी से उन्होंने बंगला सीखी। गांधीजी के आश्रम में उन्होंने उर्दू की तालीम हासिल की। सन् 1936 में उन्होंने आगरा कॉलेज आगरा से साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त की। दर्शन के प्रति रुचि होने के कारण उन्होंने परंपराओं और रूढ़ियों के विरोध में विद्रोह किया, जिसके कारण वे समाज-विरोधी कहलाए। माचवे जी ने जैसा संसार को भोगा और देखा उसका सही प्रतिबिंब उनके साहित्य में देखने को मिलता है। जब वे आकाशवाणी में कार्य करते थे, तब शिवमंगल सिंह की प्रेरणा से शोधप्रबंध के लिए पंजीकरण किया। सन् 1958 में उन्होंने 'हिंदी, मराठी निर्गुण सन्त काव्य' पर शोधप्रबंध लिखकर आगरा विश्वविद्यालय से पीएच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

इसी बीच उन्होंने अँग्रेजी में एम॰ए॰ की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। चित्राकला के भी वे प्रतिभाशाली छात्र रहे, कुछ समय तक सीखने की व्यवस्था भी की, परंतु वह कुछ अधिक महँगा पड़ने के कारण अधूरा ही छूट गया।

प्रभाकर माचवे ने कई नौकरियाँ कीं और छोड़ दीं। उन्हीं के शब्दों में 'छह विभिन्न पदों पर मैं अब तक काम करता रहा, एक जगह जमकर नौकरी करता, तो अब तक पेंशन लेकर जुगाली करता, एकाध अभिनंदनग्रंथ भी छप जाता।'[4] पढ़ाई के पश्चात् सन् 1937 में राष्ट्रीय मजदूर संघ इंदौर के मंत्री पद पर माचवे जी की नियुक्ति हुई। वहाँ केवल चालीस रुपए प्रतिमाह वेतन मिलता था। इसमें उन्हें देशभक्ति का एक प्रकार का मजा मिलता था। सन् 1939 में 140 रुपए प्रतिमाह वेतन पर माधव कॉलेज उज्जैन में अँग्रेजी और दर्शन के प्राध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। इसके ठीक दस साल बाद सन् 1948 में उन्होंने उज्जैन की प्राध्यापकी छोड़कर आकाशवाणी नागपुर में नौकरी प्रारंभ की। आकाशवाणी नागपुर, इलाहाबाद, विदेश सेवा प्रसार दिल्ली में छह वर्ष कार्य के बाद उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दिया। सन् 1959 से 1961 तक वे अमेरिका के दो विश्वविद्यालय विसकान्सिन तथा केलिफोर्निया में अतिथि प्राध्यापक के रूप में अध्यापनकार्य करते रहे। नेहरूजी के अनुरोध पर साहित्य अकादमी के असिस्टेंट सेक्रेटरी बने सन् 1971 से 1975 तक। वहीं पर 58 वर्ष की आयु में स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ले ली। इसके पश्चात् भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में आधुनिक मराठी साहित्य पर गांधी और मार्क्स का प्रभाव पर दो वर्ष की फैलोशिप ली। डॉ॰ माचवे भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता के निदेशक के रूप में कार्यरत रहे। संघ लोकसेवा आयोग में विशेष भाषाधिकारी बने। इस प्रकार प्रभाकर माचवे जीवनपर्यंत सक्रिय रहे, किसी-न-किसी संस्था से संबद्ध रहे और निरंतर लिखते रहे।

आचार-विचार

प्रभाकर माचवे जी संस्कृति व शिष्टाचार की प्रतिमूर्ति थे। विचारों से यह आरंभ से ही क्रांतिकारी व विरोधी थे। बाल्यावस्था में उन्होंने उपनयन संस्कार का विरोध किया। उनका अपना व्यवहार न्यायानुकूल व समान रहता था। वे किसी के साथ पक्षपात नहीं करते थे और बहुत अधिक स्पष्ट बोलने वाले थे।

'वे हैं ऐसे व्यक्ति, एकदम बेलाग, एकदम खुले और करीब-करीब मुँहफट। उनके व्यक्तित्व में ब्रह्मगाँठ जैसी कोई गाँठ नहीं, जिसे सुलझाने के लिए आप किसी को शास्त्रार्थ करने बैठाए या कि यहाँ-वहाँ तर्क करते फिरें। उनके पास छिपाने के लिए कुछ भी नहीं है।'[5]

वह किसी तरह के व्यसन के आदी नहीं थे। किसी की झूठी तारीफ व चापलूसी के वह पक्षधर नहीं थे। हो सकता है उनकी इस स्पष्टवादिता के कारण कई बार लोग उनके बैर मान बैठे थे। माचवे जी का कहना था हमारा तो खुला खेल फर्रुखाबादी है। माचवे जी की एक और विशेषता थी वह यह कि वे किसी वाद-विशेष से निबद्ध न होकर स्वतंत्र व उन्मुक्त विचरण में ही निमग्न रहते थे। कोई उन्हें कट्टर गांधीवादी समझता था तो कोई कम्युनिस्ट, किसी के लिए घनघोर अराजकतावादी। परंतु अंत तक वह किसी वाद या दृष्टिकोण से नहीं बँधे, चाहे इसके लिए साहित्यकारों की जमात में उनकी कोई खास विशिष्ट पहचान न बन पाई।

माचवे जी के भीतर व्यवहार को लेकर दर्द था, सबसे भले तो हम जैसे मूढ़जन जो भली-भाँति जानते हैं कि तीस साल से ऊपर हो गए हिंदी की सेवा करते-करते, लेकिन बदले में तिरस्कार व उपेक्षा पा रहे हैं।[6]

माचवे जी के माता-पिता सनातन धर्म से संबंधित थे। पंढरपुर के श्रीविट्ठल उनके कुल-देवता थे। उनके माता-पिता विट्ठलभक्ति में हमेशा रत रहते थे। लेकिन इसका कोई प्रभाव माचवे जी पर नहीं हुआ। सन् 1963 में माचवे जी श्रीलंका गए। तत्त्वज्ञान पढ़ने के कारण उनकी अंतरात्मा में बौद्धधर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

वह किसी धर्म तथा उसके विचारों से चिपके हुए नहीं थे। उन्होंने सभी धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया और धर्म-संबंधी कई किताबें लिखीं। वास्तव में माचवे जी पूर्णतया नास्तिक थे। ठीक उसके विपरीत उनकी धर्मपत्नी कट्टर आस्तिक रही हैं, लेकिन उनका विरोध माचवे जी ने कभी नहीं किया। वे प्रत्येक मत की उपयोगिता को जीवन की कसौटी पर परखते थे। मानव-मात्र की निःस्वार्थ सेवा को उन्होंने सबसे बड़ा धर्म माना।

नेहरू या गांधी से अपनने निकटतम संबंध होते हुए भी वह उनसे फायदा उठाना कभी न चाहते थे।

'नेहरू-गांधी के साथ रहते हुए भी अपने-आपको तीसमारखाँ नहीं समझा। कई पुरस्कार भी मिले, पर उनके लिए कभी यत्न नहीं किया बस एक इंसान बनने का यत्न किया और आप जानती हैं उसमें मेहनत ज्यादा लगती है।' यह बात उन्होंने धर्मयुग के लिए पद्मा सचदेव से बात करते हुए कही थी। यही उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन है।

सामान्य व्यक्तित्व

प्रभाकर माचवे व्यक्तित्व संपन्न लेखक थे। सामान्यरूपेण ही उनके व्यक्तित्व का प्रभाव द्रष्टा पर पड़ता था। उनका मोहक व्यक्तित्व सदा सर्वदा आकर्षण का केंद्र रहा है। शिवमंगलसिंह ने लिखा है—वे एक अच्छे-खासे राजपुरुष दिखाई पड़ते थे।

शारीरिक संगठन

यद्यपि व्यक्तित्व का बोध सिर्फ शरीर के अनुपात व अवयवों के संतुलन से ही नहीं होता, फिर भी इसकी व्याप्ति में शरीर का बहुत बड़ा भाग रहता है। मुख व आँखों से हम व्यक्ति की बहुत सी बातें एवं स्वभाव जान जाया करते हैं। उनके विषय में गोस्वामी तुलसीदास की यह पंक्ति उपयुक्तता से चरितार्थ होती है—'वृषभ स्कंध केहरठिवनि वलनिधि बाहु विशाल।'

उन्नत ललाट, गौरवर्ण, सुडौल यष्टि में माचवे जी का व्यक्तित्व स्वयं में ही एक

 ISSN 0975-735X

आकर्षण था। डॉ॰ कैलाश वाजपेयी ने उनके बाह्य व्यक्तित्व के बारे में कहा है, 'वे भरे-पूरे शरीर के थे। नाक इतनी नुकीली थी कि जिससे विद्वत्ता का आभास होता था। उनकी आँखें मुस्कराती हुई लगती थीं, जिनमें कुछ-कुछ शरारत का-सा भाव रहता था।'[7]

आज का युग ज्ञान के विस्फोट का युग है, जिसमें हर सामान्य मनुष्य बौना हो आया है। ऐसे में प्रभाकर माचवे जैसे कद्दावर लोग अपवाद लगते हैं। उनकी आंतरिक ऊर्जा, कर्मठता, सहज प्रत्युत्पन्नमति, विलक्षण तीव्रस्मृति, तत्परता उम्र के अंतिम मोड़ तक भी निरंतर सक्रियता किसी भी सामान्य व्यक्ति के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती थी। हिमांशु जोशी ने उनके बारे में कहा है–'जैनेंद्र जी के यहाँ माचवे जी को पहली बार देखा था। बंद गले का लंबा कोट, सिर पर छोटे-छोटे बाल। शरीर भरा हुआ, बात-बात पर हँसी, बात-बात पर व्यंग्य। माचवे जी जब जोर से ठहाका लगाते तो सबका ध्यान उनकी ओर खिंच जाता।'[8] यह बहुत दुर्लभ योग होता है कि देह भी स्वस्थ हो और मन भी स्वस्थ हो। माचवे जी में यह दुर्लभ योग घटित हुआ था।

वेशभूषा

वेशभूषा से मनुष्य के विचारों का घनिष्ठ संबंध होता है। कपड़ों के प्रति प्रभाकर माचवे जी के हृदय में कोई उत्कट लालसा नहीं थी। वेशभूषा में उनकी अपनी अलमस्ती का प्रदर्शन अधिक होता था। माचवे जी के रहन-सहन में एक प्रकार की सादगी थी। माचवे जी को गांधी जी ने खादी पहनने का व्रत दिया था। पति-पत्नी के अलावा घर में कोई खादी नहीं पहनता था। खादी का पाजामा-कुर्ता और कंधों से झूलता कपड़े का झोला ही उनकी पहचान थी। इसी वेशभूषा में उनका व्यक्तित्व सदा खिलता हुआ तथा प्रसन्नचित दिखाई देता। वे कभी-कभी धोती-कुरता पहनना पसंद करते थे। विदेश में बंद गले का कोट भी पहनते थे। अमेरिका में भी उन्होंने खादी ही पहनी। उनकी पुत्री चेतना कोहली के अनुसार, 'दूर-दूर तक अमेरिका, यूरोप घूम आए, वर्षों तक भ्रमण किया किंतु आज भी वे सिर्फ खादी का ही प्रयोग करते हैं।'[9]

वैसे भी जो लोग अपनी बाह्य खूबसूरती पर ही अधिम समय व्यतीत कर देते हैं, उनका अंदर बहुत ज्यादा खूबसूरत नहीं रह पाता। श्रीमती माचवे के अनुसार वे एक बार नेहरू जी से मिलने उल्टा कुरता पहनकर ही चले गए थे। इन सब उदाहरणों से यही सिद्ध होता है कि ईश्वर-प्रदत्त शारीरिक सौंदर्य के उपरांत उन्होंने उसे ऊपरी साज-सज्जा से अलंकृत करने का अधिक प्रयास नहीं किया।

खान-पान

माचवे जी चाय पीने के बहुत शौकीन थे। श्रीमती माचवे जी के अनुसार सुबह उठते ही सबसे पहले थर्मस भरकर चाय बनाकर रख लेते थे। चाय के लिए कभी भी पूछो तो मना नहीं करते थे। फिर चाय मीठी, गाढ़ी, पतली, तेज, हल्की या मसालेदार, सौंफ, अदरक की क्यों न हो। माचवे जी की माँ खास उनके लिए पतला हलुआ बनाया करती थीं। वह भी उन्होंने खूब खाया। विदेश-यात्राओं के दौरान उनके खान-पान में थोड़ा सा परिवर्तन हुआ।

श्रीमती माचवे के अनुसार उन्हें हर प्रांत का खाना पसंद था। अचार और चटनी उन्हें खान में विशेष रूप से प्रिय थे। और मीठा भी पसंद था। मामा वरेरकर उनके चाय के शौक को देखकर उन्हें चाय ची कहते थे।

देश-विदेश भ्रमण (घुमक्कड़)

पिता जी की असमय मृत्यु, भाइयों के द्वारा प्रताड़ना और मित्रों का अभद्र व्यवहार ही शायद वह कारण रहे होंगे, जिसके कारण माचवे जी की अंतरात्मा में घर के प्रति उपेक्षा का निर्माण हुआ। माचवे जी के मन में यात्रा प्रेम जाग्रत करने का एक अन्य कारण उनका चित्रकार रूप भी था। वे अपनी चित्रकारी में बाहर के लोगों को अंकित करना चाहते थे। आकाशवाणी के लिए भी उनको जगह-जगह घूमना पड़ता था।

जीवन और जगत-संबंधी अनुभव-प्राप्ति के परम लालसा माचवे जी की घुमक्कड़ी वृत्ति का मूलाधार रही है। भ्रमण से मनुष्य नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करता है। उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जाग्रत होती है। भिन्न-भिन्न विचारों और संप्रदायों के संपर्क में आने से विचार सहिष्णुता की भावना उत्पन्न होती है। माचवे जी को अपने जीवन के तीन साल अमेरिका में बिताने का सौभाग्य भी मिला। यात्रा के कष्टों ने माचवे जी को कष्टसहिष्णु भी बना दिया। दुर्गम स्थानों को वे खुशी-खुशी पार कर लेते थे।

सन् 1948 में उनकी यात्राओं का वास्तविक आरंभ माना जाता है। उस समय उन्होंने उज्जैन की प्राध्यापिकी छोड़कर आकाशवाणी नागपुर में नौकरी शुरू की। उसके बाद रेडियो की नौकरी के लिए उन्हें सन् 1954 तक बंबई, इलाहाबाद आदि जगह घूमना पड़ा। 1954 में वे केंद्रीय साहित्य अकादमी के प्रथम सहायक सचिव के रूप में नई दिल्ली चले गए। सन् 1961 में अमेरिका से लौटते हुए तीन माह उन्होंने यूरोप के तेरह देशों की यात्राा की। सन् 1963 में श्रीलंका में दो विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने चले गए। उसके बाद 1973 में बंगला देश की यात्रा की। सन् 1979 से 1985 तक उनकी नियुक्ति भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता में निदेशक के रूप में हुई, वहाँ जीवन के छह साल बिताए। सन् 1981 में उन्होंने जापान, हांगकांग, थाईलैंड आदि स्थानों की सपत्नीक यात्रा की। 1984 में नेपाल देखा। 1987 में पत्नी के साथ मारीशस की यात्रा की।

माचवे जी ने धार्मिक दृष्टि से भी कई यात्राएँ कीं। बचपन में माँ के साथ वे उज्जैन, पंढरपुर, आकदी आदि धार्मिक स्थलों को गए। श्रीमती माचवे जी ने चारों धाम की यात्रा करवाई। भारत भर घूमकर बारह ज्योतिर्लिंग के भी दर्शन किए।

गार्हस्थिक पक्ष

प्रभाकर माचवे का विवाह गांधीजी की उपस्थिति में 8 नवंबर, 1940 को हुआ। उनकी पत्नी का नाम शरद माचवे है। वे एक गांधीवादी की पुत्री हैं। उनकी माता का बचपन में ही देहांत हो गया था। वे बा के साथ गांधी आश्रम में ही रही थीं। प्रभाकर माचवे ने अपने विवाह के विषय में लिखा है, 'विवाह चाहे स्वर्ग में पक्के न होते हों। पर मेरे लिए मेरा विवाह एक असाधारण घटना थी, जिसने मेरी जिंदगी को नई दिशा दी।'[10]

जीवन-पर्यंत उन्होंने इस संबंध को बहुत सच्चाई से निभाया। बेशक उसमें शरद माचवे जी का भी बराबर सहयोग रहा। अलग-अलग स्थानों पर नौकरी की, श्रीमती माचवे ने, उन नई जगहों पर फिर से अपनी गृहस्थी जमाने की कठिनाई को अकेले ही झेला। 'एक लेखक को एक वातावरण की, एकाग्रता की आवश्यकता होती है, उसके निर्माण का दायित्व भी उन पर ही था, परंतु जहाँ साथी का यह विचार हो जिस घर में पत्नी खुश है, वहाँ पूरा परिवार सुखी है, वहाँ

 ISSN 0975-735X

नारी को फिर कुछ भी करने में बोझ या कठिनाई का अहसास नहीं होता। जिंदगी की कई कड़वी सच्चाइयों को दोनों ने साथ-साथ झेला। पहले एक पुत्र फिर एक पुत्री की अकाल मृत्यु उसके उपरांत पत्नी का निरंतर गिरता स्वास्थ्य। माचवे बराबर उनके साथ रहे। घर पर रहते हुए रसोई के काम को भी (जो नारी के लिए सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण सहायता है) बखूबी सँभाला वरन् माचवे जी ने ही अपनी पत्नी को पाककला की शिक्षा दी। जब ये आईं तो इन्हें खाना बनाना न आता था। वहीं हमारी पाकविद्या काम आई। घर के कई काम हमने उन्हें सिखा दिए।'[11]

8 जुलाई 1948 को उनके एकमात्र पुत्र असंग का और दो वर्ष बाद चेतना का जन्म हुआ, परंतु दोनों के व्यक्तिगत जीवन में कभी भी हस्तक्षेप नहीं किया। दोनों के जीवन साथी के चयन (दोनों ने अपनी जाति के बाहर विवाह किया) को भी खुशी से स्वीकार किया। उन्होंने अपने विचारों को कभी न अपनी पत्नी और न अपनी संतान पर लादा। 'स्वयं खादी का प्रयोग किया, परंतु रूढ़िवादी नहीं बने। हमें अच्छे-अच्छे पब्लिक स्कूलों में शिक्षा दी और खाने-पीने, पहनने-घूमने, सोचने व कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता दी।'[12]

ये उनकी पुत्री चेतना काहली के विचार हैं। बहुधा किसी भी लेखक या सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व दो होते हैं। घर में कुछ और बाहर समाज में कुछ और। अधिकतर लोग समाज में नारी-मुक्ति, नारी-स्वतंत्रता के बड़े भारी पक्षधर होंगे, पर उनके अपने घर में नारी की स्थिति दयनीय होगी। परंतु माचवे जी का एक ही व्यक्तित्व था, अंदर और बाहर दोनों जगह के लिए। किसी भी स्तर पर उन्होंने पुत्र और पुत्री में भेदभाव नहीं किया।

आदमी को गहराई से और खुले रूप में उसके घर से ही जाना जा सकता है। मेरे हिसाब से जो सबसे करीब होते हैं, वे ही किसी के बारे में खुलासा से और दृढ़ता से कोई बात कह सकते हैं। जैसे चेतना कोहली ने अपने पिता के बारे में कहा, 'मैंने इस संबंध को आदर्श मानकर अपने वैवाहिक जीवन को सफल बनया। त्याग जो आजकल के संबंधों में दूर-दूर तक ढूँढने से भी नहीं मिलता। मैंने आई और काका से सीखा। सहनशीलता का भंडार है काका में।' इससे बड़ी और सच्ची बात उनके गृहस्थ जीवन के बारे में कौन और क्या कह सकता है।

मित्र, परिवार और नेताओं से संबंध

प्रभाकर माचवे जी का स्वभाव अंतर्मुखी होने के कारण उनके आत्मीय मित्र बहुत कम थे। जैनेंद्रकुमार, मामा वरेरकर तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू माचवे जी के आत्मीय तथा समकालीन मित्रों में माने जाते हैं। माचवे जी 'तार सप्तक' के श्रेष्ठ कवि थे। इसलिए तार सप्तक के संपादक अज्ञेय जी उनके घनिष्ठ मित्र बन चुके थे। हिंदी साहित्य जगत् में अज्ञेय जी के अलावा भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर और मुक्तिबोध के साथ भी उनकी घनिष्ठता थी।

'माचवे जी गुणग्राही व्यक्ति हैं। वे दूसरों की सराहना में झिझकते नहीं। सामने आने वाले व्यक्ति को आत्मीय बनाने का, उसमें तुरंत विश्वास रख के उसे वश में कर लेने का हुनर कोई सचमुच उनसे सीखे। मिलनसारी के साथ परिहासशीलता भी उनकी खासियत है।'[13]

माचवे जी का राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से उनके सेवाश्रम में पहली बार संबंध हुआ। माचवे जी को वहाँ दामाद के रूप में देखा जाता था। गांधी जी ने ही शरद माचवे से उनकी शादी करवाई थी। पारिवारिक संबंध होने के कारण माचवे जी वर्धा आश्रम में हमेशा जाया करते थे।

लालबहादुर शास्त्री जी ने उन्हें यूनियन पब्लिक कमीशन में भाषाधिकारी के रूप में खास तौर पर नियुक्त किया था।

सम्मान एवं पुरस्कार

केवल हिंदी या मराठी के लिए नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की अभिवृद्धि के लिए डॉ॰ माचवे ने जो कुछ किया, वह असाधारण था। उनका समय-समय पर मान-सम्मान होता रहा। सन् 1972 में 'टॉलस्टॉय और भारत' पुस्तक के अनुवाद पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से वे सम्मानित हुए थे। 1977 में षष्टिपूर्ति समारोह के उपलक्ष्य में हरिद्वार में अक्षर अर्पण ग्रंथ माचवे जी को समर्पित किया गया था। सन् 1983 में हिंदी साहित्य सम्मेलन कुरुक्षेत्र अधिवेशन में माचवे को साहित्य वाचस्पति उपाधि से विभूषित किया गया। इसी प्रकार सन् 1985 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से रु॰ 21000 का सम्मान पुरस्कार भी तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी द्वारा उन्हें दिया गया। सन् 1987 का हिंदी अकादमी का साहित्यकार सम्मान 11,000 रु. का पुरस्कार भी माचवे जी को मिला। सन् 1988 में हिंदी शिक्षा संघ का 11,000 रु॰ का पुरस्कार उन्हें देकर सम्मानित किया गया।

साहित्यिक संस्कार

प्रभाकर माचवे जी की आत्मा उनकी बाल्यावस्था से ही साहित्य से परिव्याप्त थी। उनकी माता बचपन से ही उनसे धार्मिक पुस्तकें, तुकाराम, रामदास और श्रीधर का साहित्य सुना करती थीं। वे शुरू से ही एकांतवासी थे। कक्षा में सबसे छोटे होने के कारण वे अन्य शैतान बच्चों से घुलमिल न पाते थे। उन्होंने बालसुलभ तुकबंदियाँ करना भी प्रारंभ कर दिया था, परंतु उस समय लोगों को विश्वास न आया। उनका मजाक बनाया गया कि ये उनके बड़े भाई ने लिखा है और वे अपना कहकर पढ़वा रहे हैं। ये साहित्यिक संस्कार क्रमशः समय पाकर विकसित और परिपुष्टि होते गए। मात्र सत्रह वर्ष की आयु में उनकी प्रथम कविता 'कर्मवीर' में छपी। 'कर्मवीर' माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित होता था। सन् 1934 में ही इन्होंने इंडियन नेशनल काँग्रेस का अधिवेशन बंबई में देखा। इस अधिवेशन के प्रधान डॉ॰ राजेंद्रप्रसाद के अँग्रेजी भाषण का हिंदी में अनुवाद किया। जिसका उल्लेख रामवृक्ष बेनीपुरी ने गेहूँ और गुलाब में किया है।

इसी अधिवेशन में गांधी जी को सुना और प्रेमचंद जी से मिलने का मौका मिला। उन दिनों प्रेमचंद फिल्मों का काम करते थे। पर वे उससे अप्रसन्न थे। उनके अंदर का साहित्यकार कुछ और कहना चाह रहा था। अतः फिल्मों के काम को छोड़कर वह 'हंस' का संपादन करने लगे। सन् 1935 में 'हंस' में माचवे जी की प्रथम कहानी प्रकाशित हुई। उसी समय से उन्होंने मराठी, अँग्रेजी और हिंदी तीनों भाषाओं में लिखना प्रारंभ किया। इन पर अज्ञेय और जैनेंद्र का प्रभाव था। जैनेंद्र के दार्शनिक विचारों के निबंधों का संपादन सन् 1937 में किया। यही इनकी प्रथम प्रकाशित हिंदी पुस्तक भी थी। आगरा से अज्ञेय द्वारा संपादित 'सैनिक' में इनकी 'विसंगति' प्रकाशित हुई। उन्होंने अपने आसपास के लोगों से प्रेरणा ग्रहण की।

डॉ॰ माचवे किसी एक वाद या एक भाषा के कवि नहीं रहे। मराठी, हिंदी, अँग्रेजी, बंगला सब उनकी अपनी भाषा रहीं। 'ये जो हूँ उससे अलग होता रहा। जैसे वृक्ष अपनी छाल बदलता है। कई मैत्रियाँ, कई प्रिय मतावलियाँ जीवन में आती रहीं, जाती रहीं। नीत्शे, गांधी, मार्क्स,

ये सब घाट रहे। अपनी नाव कहीं बँधी नहीं। कोई एक गुरु खूँटा नहीं बन सका।'[14]

सन् 1943 में सचिच्दानंद हीरानंद वात्स्यायन ने हिंदी के सात प्रयोगवादी कवियों की कविताओं का एक संकलन निकाला। इसका नाम तारसप्तक रखा गया। इसमें मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार और प्रभाकर माचवे की कविताएँ हैं। यह कृति हिंदी कविता के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाली कृति है। साथ ही राहुल सांकृत्यायन का प्रभाव इन पर सन् 1943 ई॰ से ही रहा। अत: इन्होंने इनकी योजनाओं में कार्य किया। निराला, अज्ञेय, शांतिप्रिय द्विवेदी और श्रीमती महादेवी वर्मा ने इनकी कई रचनाएँ प्रकाशित कीं। नए अनुभवों के साथ इन्होंने पाश्चात्य-पौर्वात्य के अंतर को भी अनुभव किया। इन्होंने अमेरिका प्रवास के दौरान जो कविताएँ लिखीं वे 'मेपल' में संकलित हैं।

माचवे जी ने हिंदी की प्राय: हर विधा में लिखा। कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, व्यंग्य, आलोचना, यात्रावृत्त, जीवनी, शब्दचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि में अपनी अलग पहचान बनाई है। इसके अतिरिक्त दर्शन और कला पर भी लिखा है। उन्होंने शब्दकोश तैयार करने का काम किया और अनुवाद के माध्यम से पर्याप्त रूप में दूसरे साहित्य को हिंदी से परिचित कराया और हिंदी को दूसरे साहित्य से। उनके व्यक्तित्व के बारे में प्रो॰ विजयेंद्र स्नातक का यह कथन पूर्णत: सत्य है 'भारतीय भाषाओं में यदि एक-एक माचवे होता तो भारत की भाषा समस्या और भारतीयता की सार्वभौम पहचान बनाने के लिए हमें किसी राजनेता का मुख नहीं ताकना पड़ता. ...हिंदी-मराठी-अँग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं में अबाध गति से लिखने वाले हिंदी साहित्यकारों में अकेले माचवे ही थे।'[15]

संदर्भ

1. फार्म सेल्फ टू सेल्फ, पृ॰ 4
2. धर्मयुग, 16 जुलाई 1991, पृ॰ 31
3. फार्म सेल्फ टू सेल्फ, पृ॰ 5
4. ज्ञानपीठ पत्रिका, नवंबर, 1965
5. डॉ॰ प्रभाकर माचवे, सौ दृष्टिकोण-बालकवि बैरागी, पृ॰ 139
6. धर्मयुग, 16 जुलाई 1991
7. डॉ॰ प्रभाकर माचवे, सौ दृष्टिकोण, पृ॰ 77
8. वही, पृ॰ 302
9. वही
10. फार्म सेल्फ टू सेल्फ, पृ॰ 12
11. धर्मयुग, 16 जुलाई, पृ॰ 33
12. डॉ॰ प्रभाकर माचवे, सौ दृष्टिकोण, पृ॰ 100
13. वही, पृ॰ 194
14. ज्ञानपीठ पत्रिका, नवंबर, 1965, पृ॰ 8
15. भूमिका, प्रो॰ विजयेंद्र स्नातक, डॉ॰ प्रभाकर माचवे, सादुल्ला की खरी-खरी।

सी 33, **सेक्टर** 52, **नोएडा** 201301
मो॰ 09871726471

भारतीय संस्कृति के चिंतक साहित्यकार निर्मल वर्मा

डॉ॰ रजनी
असिस्टेंट प्रोफेसर

मानव-जीवन के विभिन्न क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार, चिंतन-मनन आदि क्रियाओं का संचालन जिस समष्टि भाव द्वारा होता है तथा जिसे अपनाकर मानव सही अर्थों में मानव बनने का दिशा-निर्देश पाता है, उसे 'संस्कृति' कहते हैं। संस्कृति परिवर्तनशील है, किंतु इसकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण रहा करती है। संस्कृति मरती नहीं, मिटती नहीं और इसी दृष्टि से संस्कृति का अर्थ विकास रहा। संस्कृति अनेक तत्त्वों का समष्टि रूप है। भूगोल से इतिहास तक, दार्शनिक विचारधारा से सामाजिक व्यवस्था तक राजनीति चिंतन से व्यावसायिक व्यवस्था तक, प्रकृति तक के जितने भी तत्त्व हैं, सब संस्कृति में समाहित हैं। संस्कृति के अंग साहित्य, लोकजीवन, संगीत कला, सामाजिक मान्याताएँ तथा सामान्य नागरिक जीवन आदि से अनुप्राणित होते हैं। संस्कृति किसी भी देश की सभ्यता का मानदंड और किसी राष्ट्र की अस्मिता की पहचान होती है। संस्कृति शब्द का सामान्य अर्थ परिमार्जन और परिष्करण की क्रिया है। सामाजिक संदर्भ में इस शब्द का व्यावहारिक अर्थ मानवीय जीवन को परिष्कृत करना है। डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इसी संदर्भ में कहा है कि 'संस्कृति वह वस्तु है, जो स्वभाव में माधुर्य, मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।'[1] भारतीय संस्कृति संस्कृति के इन सब अर्थों को अपने में समाए हुए है। भारत की सांस्कृतिक पहचान पूरे विश्व में सुप्रसिद्ध है।

भारत की दृढ़ता का आधार भारत की संस्कृति ही है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष और अपकर्ष उसकी संस्कृति द्वारा ही नापा-तोला जा सकता है। भारत की संस्कृति ही भारत की उत्कर्षगाथा को हमेशा ही पुख्ता बनाती रही है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। अनेक संघर्षों के बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपनी प्राणवत्ता को अक्षुण्ण रखा है। भारतीय इतिहास में आधुनिक राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पश्चात् अपनी सांस्कृतिक परंपरा के मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन का एक लंबा दौर दिखाई पड़ता है। इस समयावधि में प्रत्येक क्षेत्र भाषा, साहित्य, संस्कृति और इतिहास आदि सब विभिन्न प्रश्नों के घेरे में आ गए। यह सब प्रश्न भारत की 'राष्ट्रीयता' को परखने के आधार बन गए। सांस्कृतिक विरासत का सवाल अब 'अहं' का सवाल बन चुका था और क्षेत्रीयता, भाषा, धर्म-जातिगत भेद-भाव आदि कई प्रश्न भारतीय संस्कृति के विकास की राह में खड़े हुए थे। संस्कृति का संबंध विशेषत: भाषा और साहित्य से होता है, इसीलिए भाषा का राष्ट्रीय स्वरूप और

 ISSN 0975-735X

साहित्य की सोद्देश्यता, मूल्य-प्रतिस्थापना और साहित्य की भविष्योन्मुखी दिशा के निर्धारण में भारतीय मनीषियों के क्रांतिकारी स्वर एक-दूसरे से टकरा रहे थे। हिंदी साहित्य के चर्चित साहित्यकार निर्मल वर्मा कला, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तनों संबंधी अपने समकालीन प्रश्नों से बेखबर न थे। सांस्कृतिक प्राणधारा का मूल्यांकन उनकी समूची साहित्य-साधना का केंद्र है।

निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन पर हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक बोध का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। वह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के सांस्कृतिक चिंतन से प्रभावित होकर भारतीय संस्कृति के प्रति अपना विशेष दृष्टिकोण स्थापित करते हैं।

द्विवेदीजी जहाँ किसी भी राष्ट्र की संस्कृति की ऐतिहासिकता को केंद्र में रखते हुए उस राष्ट्र विशेष की पूरी संस्कृति की व्याख्या करते हैं और इसी सांस्कृतिक इतिहास को मनुष्य की जययात्रा की विकासगाथा'[2] कहते हैं। निर्मल वर्मा इतिहास को मरीचिका मानते हैं परंतु किसी संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में इतिहास का महत्त्व सदैव अक्षुण्ण रहता है, इस तथ्य से भी निर्मल वर्मा भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए वह द्विवेदीजी की इतिहासवादी विचारधारा का समर्थन तो करते हैं, किंतु उनका मानना है कि इतिहास के भ्रमों से मुक्त होने की आवश्यकता अधिक है।

मानव की विकास-यात्रा का प्रस्थानबिंदु भी संस्कृति से शुरू हुआ है। यहीं से समस्त सांस्कृतिक चिंतन-मनन का निष्कर्ष निर्धारित हुआ कि मनुष्य और मनुष्यता से बड़ा और कुछ नहीं और मनुष्य को मनुष्य बनाती है उसकी संस्कृति। इसी सांस्कृतिक विश्लेषण के अंतर्गत ही निर्मल वर्मा एक सुसंस्कृत समाज के लिए अनिवार्य मूल्यों को भी अप्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित करते हैं। मूल्य वह अवधारणाएँ हैं, जो मानव को अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में सही दिशानिर्देश देती हैं। समाज में दो प्रकार की वृत्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं—एक यह कि समाज में क्या हो रहा है और दूसरा समाज में क्या होना चाहिए। 'क्या होना चाहिए' वाली स्थिति ही वास्तव में मूल्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मूल्य वे आदर्शात्मक अवधारणाएँ हैं, जिनका पालन करके मानव अपने समाज को विकसित कर सकता है। निर्मल वर्मा के साहित्य में इसी मूल्य अवधारणा को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत चेतना के साथ-साथ सामाजिक उत्थान की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। वह मानवीय मूल्यों के समर्थक और संरक्षक दोनों ही प्रतीत होते हैं। इस संदर्भ में ओम निश्चल के शब्द हैं कि 'मानवीय मूल्य बचे रहें, हमारी सांस्कृतिक पहचान बनी रहे, हम अपनी परंपरा से विमुख न हों, यह कामना उनके कथा और वैचारिक संसार दोनों में समुज्ज्वलता के साथ प्रतिबिंबित होती है।'[3] इस प्रकार निर्मल वर्मा के साहित्य में सांस्कृतिक चिंतन के अंतर्गत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा भी अपने साहित्य के माध्यम से करने की चेष्टा की गई है।

नोबेल पुरस्कार के लिए नामित इस साहित्यकार ने भारतीय संस्कृति का अध्ययन आधुनिक और पश्चिमी दोनों ही संदर्भों में बड़ी गंभीरता से किया, तब उन्होंने संस्कृति के विषय में निष्कर्ष प्रस्तुत किए कि भारतीय संस्कृति का अस्तित्व समस्त विश्व के लिए किसी चुनौती से कम नहीं है। वह अपने जीवनकाल में एक लंबी अवधि तक विदेश में रहे। किंतु विदेश में रहकर वह वहाँ अपनी भारतीय संस्कृति की परिपक्वता का अध्ययन-विश्लेषण करते रहे। वह

भारत और यूरोप की राजनीतिक टकराहट को वास्तव में सांस्कृतिक टकराहट मानते हैं।[14] उनके अनुसार भारत में अँग्रेजी शासन की स्थापना भारत की संस्कृति के लिए चुनौती थी, परंतु भारतीय संस्कृति ने उसका साहस से सामना किया। वह लिखते हैं 'भारत में अँग्रेजी राज के विरुद्ध संघर्ष महज राजनीतिक स्तर पर ही नहीं था, उस संघर्ष का गहरा महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक पहलू था, जहाँ भारतीय मनीषा की टक्कर सीधी उन यूरोपरीय मान्यताओं से होती थी, जिनका प्रतिनिधित्व अँग्रेज शासक करते थे।'[15] यह टकराहट दो अलग जीवन-पद्धतियों के बीच थी। पश्चिमी सभ्यता मनुष्य इतिहास और भविष्य के आदर्शों को ऐसी जीवन-धारा पर आरोपित करना चाहती थी, जिसे उन 'आदर्शों' की कोई आवश्यकता न थी, जिन्हें बल या प्रलोभन द्वारा भारतीय जीवन पर थोपा तो जा सकता था, किंतु वे उनकी मनीषा में कहीं फिट नहीं होते थे।

निर्मल वर्मा की सोच वर्तमान सन्दर्भों में बहुत प्रासंगिक है। आज की युवा पीढ़ी निरंतर पश्चिमी समाज की ओर बिना सोच-विचार किए आश्रित होती जा रही है। परंतु वास्तव में यह समझने की आवश्यकता है कि युवा पीढ़ी जिस प्रकार पाश्चात्य विद्ववत्ता का अंधानुकरण करने में व्यस्त और पस्त है, वह विद्ववत्ता वास्तव में हमारे भारतीय सामाजिक मॉडल के लिए उपयुक्त नहीं है। इसीलिए आज का युवावर्ग मौलिकता से बहुत परे है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से भारतीय परंपराओं और तथाकथित आधुनिकता के जिस समन्वय की बात की जा रही है, वह वास्तव में समन्वय न होकर एक भ्रामक स्थिति है। आधुनिक युवावर्ग समन्वय के नाम पर जिन मान्यताओं और अवधारणाओं का समर्थन कर रहा है, वह वास्तव में एक विशेष वर्ग से ही संबंधित है। उसे पूरे भारतीय परिवेश पर थोपा नहीं जा सकता। यही वर्ग वास्तव में पूरे भारतवर्ष की मानसिकता और विचारधारा को पथभ्रष्ट कर रहा है। निर्मल वर्मा इसी विचार को अपने निबंध 'अतीत : एक आत्म मंथन' में उद्धृत करते हुए लिखते हैं, 'आज हम जिसे पश्चिम-शिक्षित आधुनिक एलीट कहते हैं, उस वर्ग की जड़ें सीधी इस 'समन्वय' से जुड़ी हैं, यह एक ऐसा वर्ग है, जो एक तरफ भारतीय परंपरा का गुणगान करता है, वहीं दूसरी ओर अपने आदर्शों और सिद्धांतों में, अपनी समूची जीवन-पद्धति में पश्चिम की नकल करता है।'[16] आज भी स्थिति ज्यों की त्यों है। स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि वर्तमान पीढ़ी भी पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है। मौलिकता के अभाव के कारण आज की पीढ़ी विचारहीन होती जा रही है। आधुनिक समाज की मूल समस्या यही है कि अपनी जड़ों से कटकर हम अपने अलग-अलग अस्तित्व खोजने में मग्न हैं। इसीलिए अपने आस-पास के परिवेश से अनजान अपनी अलग दुनिया बनाकर बैठै हैं। हम अपने आत्मीय संबंध को खोते जा रहे हैं। द्विवेदीजी जिन दिखाऊ प्रवृत्ति के लोगों की बात करते हैं, उन्हीं का उल्लेख निर्मल वर्मा भी करते हैं। निर्मल वर्मा का मानना है कि जब हम अपने आत्मीय संबंधों का त्याग करने लग जाते हैं, तब हम अपनी जीवन-प्रणाली, अपनी प्राणधारा को खोखला करते जाते हैं। द्विवेदीजी की ही भाँति निर्मल वर्मा भी 'अहं-बोध' की अपेक्षा 'आत्मबोध' का समर्थन करते हैं। यही 'आत्मबोध' भारतीय संस्कृति के उत्थान का मूल मंत्र है, क्योंकि उनका मानना है कि हम आत्मबोध के नहीं, अहंकेंद्रित अलगाव में जीते हैं। इसी अहं के कारण हम परस्पर अजनबी बनते जा रहे हैं। इस अहं को धर्म के वास्तविक अर्थों के आग्रह से दूर किया जा सकता है। मनुष्य को अपनी चेतना के माध्यम से स्वयं को अहंकार के अंधलोक से निकालने का प्रयास करना होगा। निर्मल वर्मा इस चेतना का सीधा संबंध कर्त्तव्यबोध

से जोड़ते है। वह लिखते हैं 'दुनिया में मनुष्य में होने की चेतना और उससे उत्पन्न हुआ कर्त्तव्यबोध है, जिसमें उसका धर्म निहित है। इसी धर्म को बार-बार महाभारत के कुहासे के क्षणों में याद किया गया है, ताकि वह मनुष्य को अपने भूले हुए कर्त्तव्य की याद दिला सके।'[7]

इस प्रकार निर्मल वर्मा के कथनानुसार हमें स्वयं की चेतना को जाग्रत करके अपने कर्त्तव्यों का बोध प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसके लिए वह अपनी आत्मशक्ति को पहचानने पर बल देते हैं। वह किसी पूर्वाग्रह और भय से आक्रांत न होकर अपने अंदर एक ऐसी शक्ति का संचार करने का आग्रह करते हैं, जो अबाधित गति से निरंतर आगे बढ़ती रहे। इसके लिए हमें निष्पक्ष, तटस्थ और निडर होना होगा। अपनी इस विचारधारा का प्रकाशन वह द्विवेदीजी की उक्ति के माध्यम से करते हैं कि डरना किसी से नहीं, न लोक से, न वेद से, न गुरु से। अर्थात् हमें अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बचाने के लिए समस्त भय और संत्रासों का हनन करना होगा। तभी हम अपनी उस सभ्यता का पुनरुत्थान कर पाएँगे।

इस प्रकार यह विदित होता है कि निर्मल वर्मा का वैचारिक संसार वास्तव में उनकी निजी अनुभूतियों से पनपा, वह साहित्य जो भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम परंपरा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की वर्तमान दशा और दिशा का चित्रण भी करता है। निर्मल वर्मा ने भारतीय संस्कृति की पहचान और उसकी विशेषता को पूर्णरूपेण प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। उन्होंने साहित्य की अपेक्षा समाज और उसके सांस्कृतिक सरोकारों को गहनता से महसूस किया और अपनी विचारधारा का प्रतिपादन निष्पक्ष होकर किया। बिना किसी भय और प्रलोभन के निर्मल वर्मा ने भारतीय होने के सही मायनों को समझा। इसीलिए निर्मल वर्मा का नाम लीक से हटकर चलने वाले साहित्यकारों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। इनके साहित्य का विश्लेषण करने के उपरांत निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि वह मानवीय चेतना से आप्लावित साहित्यकार हैं, क्योंकि इनके केंद्र में मानव और उस मानव का सही मार्गदर्शन करनेवाली संस्कृति है।

संदर्भ

1. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, स्वतंत्रता और संस्कृति, पृ॰ 33
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कल्पलता, पृ॰ 131
3. ओम निश्चल, भूलने के विरुद्ध, नया ज्ञानोदय, अंक 4, दिसंबर, 2005, पृ॰ 27
4. निर्मल वर्मा, भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृ॰ 25
5. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ॰ 15
6. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ॰ 17
7. निर्मल वर्मा, पत्थर और बहता पानी, पृ॰ 44

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला
मो॰ 9888370486

साहित्य-अध्ययन के लिए अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन की आवश्यकता

डॉ॰ नीतू कौशल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

प्रकृति के नियमानुसार कोई भी वस्तु अपने-आप में संपूर्ण नहीं है। प्रत्येक वस्तु कहीं तो किसी अन्य वस्तु की सहायक होती है, तो कहीं अन्य वस्तुएँ उसकी सहायक होती हैं। आत्मनिर्भरता के साथ-साथ परनिर्भरता भी आवश्यक है। समाज के किसी भी पक्ष के अध्ययन के लिए विभिन्न पक्षों को समझना अपेक्षित है। इसी लिए किसी भी ज्ञानानुशासन को किसी अन्य ज्ञानानुशासन के आलोक में ही पूर्णत: समझा जा सकता है। समाज कई क्षेत्रों में बंटा हुआ है और कभी-कभी कोई क्षेत्र किसी अन्य क्षेत्र की सीमाओं के साथ आकर इस प्रकार सट जाता है कि दोनों में विभाजक रेखा खींच पाना दुरूह हो जाता है। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन के माध्यम से एक विषय को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। भूमंडलीकरण, ज्ञान-विज्ञान, सूचना-प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरणों ने अध्ययन के नए-नए ढंग प्रस्तुत किए हैं। प्रत्येक ज्ञानानुशासन का चहुँमुखी विकास उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। इस चहुँमुखी विकास ने ही अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन एवं अनुसंधान की दिशाओं को प्रसारित किया है। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन एक संपन्न ज्ञानानुशासन द्वारा सहयोगी ज्ञानानुशासनों से नवीन ज्ञान प्राप्त करने और अल्प विकसित ज्ञानानुशासनों को नवीन ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया है।

साहित्य की आलोचना के लिए अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है। विशेषीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति ने ज्ञान को खंड-खंड कर दिया था। इसी खंडित ज्ञान को एकरूपता प्रदान करने का कार्य अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन ने किया। ज्ञान की अखंडता और उसके सर्वांगीण ज्ञान के लिए अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन की आवश्यकता समझी गई। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन का स्वरूप क्योंकि तब तक स्पष्ट नहीं था, इसलिए इस दिशा में किए गए प्रारंभिक प्रयास प्लेखमीव, जो कि मार्क्सवादी और समाजशास्त्रीय सिद्धांत देने वाला पहला व्यक्ति था, साहित्य की अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक दृष्टि के संतोषजनक रूप को निरूपित नहीं कर पाया।'[1] किन्तु धीरे-धीरे अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन का महत्त्व बढ़ता गया और उसका स्वरूप निर्धारित होता गया। इसीलिए आज के वैज्ञानिक दौर में ज्ञान-विज्ञान का पूरा लाभ उठाने के लिए अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। इसी की सहायता से

 ISSN 0975-735X

ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, समाज और मानव सभी को एक सूत्र में पिरोकर देखा जा सकता है।

अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन के मुख्य तीन भाग किए गए हैं (1) दैविकी (2) मानविकी (3) विज्ञान

अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन ष्टोध क्षेत्र में एक नवीन शोध प्रणाली है। यह साहित्यिक शोध को एक नई दृष्टि से देखने का प्रयास है। इसके माध्यम से किसी विशिष्ट साहित्य का अध्ययन अन्य ज्ञानानुशासनों के संदर्भ में किया जा सकता है।

अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन की पुरजोर माँग के पीछे ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते चरण का विशेष योगदान है। पिछले कुछ समय से ज्ञान और तकनीक से वैश्विक स्तर पर खान-पान, चिकित्सा, वातावरण, सेवाक्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र आदि सबके विकास में द्रुत गति से वृद्धि हुई है। यह कहना सर्वदा उचित है कि ज्ञान-विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। इसी वजह से प्रत्येक क्षेत्र ज्ञान-विज्ञान की चारों तरफ फैली चादर के नीचे आ गया है। ज्ञान-विज्ञान ने मानव को प्रभावित किया है और मानव को प्रभावित करने का अर्थ है सम्पूर्ण जगत को प्रभावित करना। ज्ञान-विज्ञान ने लोगों की जीवन-शैली में आमूल-चूल परिवर्तन ला दिए हैं। विज्ञान की विभिन्न तकनीकों ने मनुष्य के जीवन को पूरी तरह से बदल दिया है। अब महीनों का कार्य दिनों में और दिनों का कार्य घंटों में होने लग गया है। जैसे-जैसे मानव की आकांक्षाएँ बढ़ती गईं, वैसे-वैसे विज्ञान की परिधि भी विस्तृत होती गई। 'जो चमत्कार हमें बीसवीं सदी में दिखाई दिया और जिससे हम बीसवीं सदी को विज्ञान की सदी मानने लगे थे, वह दरअसल तकनीक के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति का नतीजा था।'[2] ज्ञान-विज्ञान ने समस्त भौगोलिक सीमाओं के बंधन को तोड़ समस्त विश्व को एक ही स्थान पर सीमित कर दिया। ज्ञान-विज्ञान ने मनुष्य के दृष्टिकोण को भौतिकतावादी बना दिया है। मनुष्य अब अपनी रूढ़िगत परंपराओं से कटने लगा है। अकेलापन चारों तरफ आच्छादित होने लगा है। 'आज धनोपार्जन और परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पति-पत्नी दोनों घर से बाहर कार्य करते हैं। उनका जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों पर कम ध्यान देते हैं।'[3] भौतिक सुख-सुविधाओं की पूर्ति की लालसा के कारण उत्पन्न हीनभाव लोगों में आत्मिक असंतुष्टि का कारण बन गया है। किंतु फिर भी विज्ञान के इस युग में मानव-जीवन अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है। विज्ञान ने मानव-जीवन को सरल एवं सुगम बनाया है।

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम में भी पिछले कुछ वर्षों में क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी ने विज्ञान के विभिन्न साधनों को प्रयोग करते हुए स्वयं को प्रफुलिल्त किया। सूचना-प्रौद्योगिकी के अंतर्गत विज्ञान के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है। सूचना-प्रौद्योगिकी के अंतर्गत जनसंचार के माध्यमों ने भी अहम भूमिका निभाई है।

मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान ने साहित्य को भी पूर्णत: प्रभावित किया है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य में तद्युगीन समाज की प्रतिछाया दिखाई पड़ती है। ज्ञान-विज्ञान ने समाज के मूलभूत ढाँचे को परिवर्तित किया। इसी कारण साहित्य पर भी ज्ञान-विज्ञान का प्रभाव स्वाभाविक ही था। ज्ञान-विज्ञान ने मानव-जीवन को सरल बनाया, डिक्शनरी ऑफ हिस्टरी ऑफ आइ-डियाज में लिखा है कि, 'हमारे भूतकालीन विचारों में परिवर्तन तकनीकीकरण के विकास के कारण ही आए हैं।'[4] ज्ञान-विज्ञान ने प्रत्येक

कार्य की अवधि को कम किया, जिससे मानव को गहन चिंतन-मनन करने के लिए पर्याप्त समय मिला। ज्ञान-विज्ञान ने जहाँ पुराने विषयों को नए दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा दी, वहीं नए विषयों को भी साहित्य में स्थान दिलवाया। ज्ञान-विज्ञान युग में जीने वाले साहित्यकारों के विषय भी ज्ञान-विज्ञान और उससे जुड़ी संबद्ध धारणाओं से ही संबंधित है। विज्ञान के प्रभाव से साहित्यिक लेखन-शैली में परिवर्तन आया। लेखकों ने अपनी भाषा में नए-नए शब्दों का प्रयोग करना प्रारंभ किया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान ने लोगों की मानसिकता को प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप उस परिवर्तित हो चुकी मानसिकता को शब्दरूप में अभिव्यक्त करनेवाला माध्यम साहित्य भी प्रभावित हुआ। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक शोधप्रक्रिया को नई दिशा की ओर प्रवृत्त कर रहा है, जिससे नए-नए विषयों को एकाकी रूप में न देखकर अन्य ज्ञानानुशासनों से जोड़कर देखने की दृष्टि प्राप्त हुई है। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन के लिए योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन की अपेक्षा बनी रहती है। इसके लिए विभिन्न विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है। विभिन्न ज्ञानानुशासनों के साहित्य से अवगत होना परमावश्यक है। इसके साथ ही इन ज्ञानानुशासनों से प्राप्त सैद्धांतिक आधारों को साहित्य पर लागू करने के लिए सूक्ष्म विवेचनात्मक पद्धति का अनुसरण किया जाना चाहिए। क्योंकि साहित्य से ही समूचे समाज को समझने की मूलभूत जानकारी मिल सकती है। तदुपरांत ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते प्रसार के चलते अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन में सहायक विभिन्न जनसंचार के माध्यमों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन के लिए यह माध्यम बेहद सहायक है। अंतर्ज्ञानानुशासनात्मक अध्ययन साहित्य को व्यापक फलक पर समझने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

संदर्भ

1. डेविड एल॰ सिलस, इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसिस, खंड-9, दि मैकमिलन कंपनी एंड द फ्री प्रेस, 1968, पृ॰ 418
2. सच्चिदानंद सिंह, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ॰ 183
3. उर्मिला मिश्र, आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ॰ 13
4. डिक्शनरी ऑफ हिस्टरी ऑफ आइडियाज, फिलिप पी॰विन्नर, पृ॰ 364

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला (पंजाब)
मो॰ 09463889798

नयी राह और दृष्टि का दिग्दर्शन है 'कुल का चिराग'

डॉ॰ रमेश तिवारी

पुरुषसत्तात्मक समाज में सारे नियम, कानून और सुविधाएँ पुरुषवर्ग के हाथों में ही मौजूद होती हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि आधी आबादी इन नियमों में उपेक्षित ही रह जाती है। इसलिए इन नियमों में सुधार और परिवर्तन की बहुत संभावनाएँ होती हैं। यहाँ आधी आबादी से आशय उस स्त्री-समाज से है, जो सदियों से पुरुषसत्तात्मक समाज के निशाने पर रहा है। हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के भेदभावपूर्ण जीवन-पद्धति का ही परिणाम है कि यहाँ बेटे-बेटियों को भी एक समान नहीं समझा जाता है। बेटों के जन्म पर जहाँ परिवार में अभूतपूर्व खुशी का वातावरण होता है, वहीं बेटी के जन्म पर किसी शोकसमाचार की प्राप्ति जैसा। परिवार में जब बात वंश या कुल की हो रही हो तो कुल का दीपक या चिराग तो बेटों को ही माना जाता है। बेटियाँ तो पराया धन होती हैं। इन मान्यताओं को ही केंद्र में रखते हुए श्रीमती सुषमा अग्रवाल ने जो नई औपन्यासिक कृति की रचना की है, उसका शीर्षक है–कुल का चिराग। बेटे-बेटी को लेकर परंपरागत सामाजिक रूढ़ियाँ हमें और हमारे समाज को विकृति की ओर लेकर जाती हैं, जहाँ बेटियों को जीवन में आगे बढ़ने के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता है। जबकि होना यह चाहिए कि हमारी संतान बेटा हो या बेटी हमें दोनों की परवरिश और शिक्षा-दीक्षा में कोई कोताही नहीं बरतनी चाहिए। किंतु ऐसा होता कहाँ है? बिडंबना यह है कि आज 21 वीं सदी में जीनेवाला समाज भी इन विकृत मान्यताओं में ही संलिप्त दिखाई देता है। श्रीमती सुषमा अग्रवाल एक स्त्री हैं। इसलिए भी उनके भीतर स्थित संवेदनशील लेखकीय मन का इन जीवन विकृतियों से लगातार सामना हुआ होगा और ऐसी परिस्थितियों की ही रचनात्मक परिणति स्वरूप इस उपन्यास की रचना हुई है।

समाज में बेटे-बेटी के रूप में प्राप्त संतान को लेकर हमारा नजरिया क्या है? और वह क्यों ऐसा है? उस नजरिये को कैसा होना चाहिए? क्या उस नजरिये में किसी बदलाव की जरूरत है? यदि हाँ, तो यह नजरिया कैसे बदला जा सकता है? यही वे तमाम चिंतनबिंदु हैं, जिन पर निगाह रखते हुए लेखिका ने बड़ी ही सावधानीपूर्वक और एक सधी हुई योजना के साथ इस उपन्यास की रचना की है। लेखिका ने इस उपन्यास में सवितादेवी, विमन्युसिंह, शुभ्रा, सिद्धार्थ, भावना, सर्वेश, स्वाति, सौम्या, सूर्यांश पात्रों को मिलाकर एक परिवार की कल्पना की है और इस एक परिवार के इर्द-गिर्द ही सारा उपन्यास गतिमान है। हालाँकि सौम्या के कॉलेज की सहपाठिन अनुप्रिया और सक्षम, रजत आदि पात्रों को भी प्रसंगवश रचा गया है, किंतु वे जुगनू की तरह

कहीं-कहीं ही अपना प्रकाश फैलाते दिखे हैं।

कथा मात्र इतनी सी है कि भावना अपने ससुराल आती है और उसे ससुराल में सभी लोगों से असीम स्नेह मिलता है। मायके से माँ के पत्र द्वारा ससुराल में सदा संयम, अनुशासन में रहने की सीख भी मिलती है। भावना की पहली संतान बेटी होती है, जिसका नाम स्वाति रखा जाता है। भावना की जेठानी शुभ्रा को अभी तक कोई संतान नहीं है। इसी बीच भावना के एक और संतान होने की संभावना बनती है। अबकी बार सासु माँ सवितादेवी की दिली तमन्ना है कि संतान बेटा ही हो, क्योंकि बेटी तो पहले हो ही चुकी है, अब बेटा हो जाए तो परिवार पूरा हो। उनकी मान्यता है कि कुल का चिराग तो बेटा ही होता है। यही सोच इस उपन्यास की रचना के मूल में है। बहरहाल, सवितादेवी की इच्छा के प्रतिकूल भावना को इस बार भी बेटी ही होती है। अन्य किसी को तो उतना फर्क नहीं पड़ता, किंतु सवितादेवी इस बेटी के आगमन पर प्रसन्न नहीं हो पातीं। इसके बाद आगे जेठानी की पहली संतान बेटे के रूप में होती है, जिसका नाम सूर्यांश रखा जाता है। भावना की बड़ी बेटी का नाम स्वाति, छोटी का सौम्या और जेठानी का बीटा सूर्यांश तीनों की परवरिश एक ही छत तले होती है। किंतु स्वभाव और प्रतिभा में तीनों अलग-अलग हैं। स्वाति डॉक्टर बनने के लिए पढ़ाई करती है और बनती भी है। सौम्या एस्ट्रोनॉट बनना चाहती है और अंतरिक्ष में जाने का अपना सपना पूरा करती भी है। किंतु उसी परिवार का बेटा सूर्यांश अधिक लाड़-प्यार में कुछ बनने की जगह गलत रास्ते पर चला जाता है। बुरे दोस्तों की संगति में पड़कर अपना लक्ष्य-निर्धारण नहीं कर पाता, जिसका खामियाजा उसे आगे चलकर भुगतना पड़ता है। वह निरंतर पढ़ाई में कमजोर प्रदर्शन करता है और अंत में उसकी जीविका और काम के तौर पर एक दुकान उसे सौंप दी जाती है। लेकिन वह दुकान भी ढंग से नहीं चला पाता। सवितादेवी जो बेटे-बेटी को लेकर अपनी जड़ मान्यताओं से ग्रस्त थीं, बेटियों और बेटे के प्रदर्शन के बाद अपनी मान्यताओं को सुधार लेती हैं और बेटी सौम्या को अपने कुल का चिराग कहते नहीं अघातीं। क्योंकि यही सौम्या अंतरिक्ष में जाकर अपने साथ-साथ परिवार, शहर और पूरे समाज का नाम बढ़ाने का गौरवशाली कार्य करती है।

'जिस सौम्या को उसके जन्म के समय वे सीने से न लगा पाई थीं, उसी सौम्या के लिए आज उनके सीने में प्यार की फुहार फूटती रहती है। उसी सौम्या ने उनका सीना गर्व से फुला दिया है। आज वे सीना तानकर सबके सामने गर्व से कहती हैं कि सौम्या मेरी पोती है। मेरे कुल का चिराग है, जिसने मेरे कुल का नाम रोशन किया है।' (पृ॰ 169)

तो मूल विषय जो लेखिका ने पकड़ा है वह इसी मानसिकता के परिवर्तन का है। लेखिका ने इस एक उदाहरण से मानो समाज को अपनी चिंतनधारा में बदलाव लाने का संदेश दे दिया है। यही समय की माँग भी है कि हम लड़के-लड़कियों में कोई भेदभाव न करें और दोनों को ही खुशी-खुशी स्वीकार करते हुए आगे बढ़ने के अवसर उपलब्ध कराएँ। आज लड़का हो या लड़की दोनों में कोई भी कुल का चिराग हो सकता है। इसके साथ ही यह भी संदेश है कि लड़कियों को पराया धन समझने की विकृत मानसिकता से हमें ऊपर उठना होगा। आज लड़कियों को पर्याप्त स्नेह और परवरिश देने का सही समय आ चुका है। इस उपन्यास की कथा इस भेदभावपूर्ण मानसिकता और परिवार की तीन पीढ़ियों को केंद्र में रखकर लिखी गई है। औपन्यासिक रूप देने के लिए लेखिका ने जगह-जगह विषय-विस्तार के क्रम में अपनी बातों को बौद्धिक-विमर्श

 ISSN 0975-735X

के रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास के आरंभ में भावना के ससुराल जाने पर उसकी माँ द्वारा लिखा गया पत्र जहाँ नई-नवेली दुल्हन को उसके गरिमामय आचरण, नियम, अनुशासन और संयमयुक्त जीवन जीने की सीख देता है वहीं उस पत्र को आखिर तक सँभाले रखना और अपनी बेटी को उसके विवाह से पूर्व उस पत्र के संदेश देना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

हमारी सामाजिक परंपरा है कि लड़की को माता-पिता का आँगन छोड़कर दूसरे आँगन में जाना ही होता है। (पृ॰ 9) बहुओं को दिए जानेवाले आशीर्वाद भी बड़े विचित्र हैं। पुत्रवती भव और सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भव का आशय है पुत्र को जन्म दो, पुत्रवती बनो और सौभाग्यवती का अर्थ पति की समृद्धि और स्वस्थ जीवन की कामना से जुड़ा है। दोनों ही आशीर्वादों में पत्नी या बहू के व्यक्तिगत जीवन को उपेक्षित ही छोड़ दिया गया है। भारतीय चिंतन दृष्टि में स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र वजूद कभी स्वीकार ही नहीं किया गया। इस चिंतनदृष्टि की हालत यह है कि इसमें स्त्री को सदा ही कोई न कोई रक्षक चाहिए। कभी पिता, कभी भाई, कभी पति, कभी पुत्र। उसका इन सबसे अलग अपना कोई वजूद भी हो सकता है, इसकी कल्पना ही बेमानी है। यही इस चिंतनदृष्टि की सीमा है। यह तब है, जबकि वेदों-उपनिषदों से समृद्ध इस देश में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' की बात कही गई थी। जब तक हम पुरुष के समक्ष स्त्री को बराबरी के स्तर पर स्वीकृति नहीं देंगे, न्याय नहीं होगा। भारतेंदु हरिश्चंद्र को इसीलिए आधुनिकता का जनक कहा गया कि उन्होंने सदियों पुरानी इस चिंतनधारा के समक्ष समाज को एक नई दृष्टि देते हुए 'नारि नर सम होंहिं' का मंत्र दिया था।

इस उपन्यास की एक और विशेषता यह है कि यह उपन्यास शहर के परिवेश में लिखा तो गया है, किंतु शहरी परिवेश का चित्रण नहीं किया गया है। परिवार की सभी स्त्रियाँ गृहिणी हैं। विमन्युसिंह वकील, बड़ा बेटा सिद्धार्थ भी वकील, छोटा बेटा सर्वेश डॉक्टर, दोनों की बहुएँ गृहिणी और विमन्युसिंह की पत्नी सवितादेवी भी गृहिणी हैं। बावजूद इसके उनमें कभी कोई तर्क-वितर्क होते नहीं दिखाया गया है। और तो और एक-दूसरे के प्रति सहयोग-भावना को ही व्यक्त किया गया है। भावना-सर्वेश की दो संतान स्वाति और सौम्या (दोनों बेटियाँ) हैं और भावना की चिंता और प्रयासों से बड़ी बहू शुभ्रा भी पुत्र प्राप्ति करती है, जिसका नाम सूर्यांश रखते हैं।

इस उपन्यास के आरंभ में ही भावना की माता का पत्र पुत्री (भावना) के नाम प्रस्तुत है। आप भी इस पत्र की कुछ पंक्तियों को पढ़कर उनका आनंद लीजिए-'विवाह के बाद तुम्हें प्रिय पति के साथ-साथ एक माता और पिता का साहचर्य मिला। वे माता-पिता तुम्हारे लिए पूजनीय हैं। तुम्हारा दायित्व है कि तुम सदैव उन्हें मान-सम्मान दो व उनके सुख-दुःख में भागीदार बनो। अब वे तुम्हारे माता-पिता हैं। उनकी सेवा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है।.....बेटी, तुम्हें जेठ व जेठानी को भी भाई-बहन की तरह स्नेह देना है। अपने प्यार की रिमझिम वर्षा से तुम्हें उस बगिया को सींचना है। प्यार के बिना तो जीवन का कोई अस्तित्व ही नहीं। प्यार से ही तो ज़िंदगी खूबसूरत बनती है। तुम्हारे मुँह से निकला हुआ हर शब्द फूलों की वर्षा करता हुआ घर के आँगन को स्वर्ग सा बना दे, यही तो एक माँ की शिक्षा व उसका आशीष वचन है।' (पृ॰ 14) गौरतलब है कि इस पत्र की उपयोगिता और महत्ता को जानते हुए भावना ने इसे बीस वर्षों से भी अधिक समय तक सँभाले रखा है। और जब बड़ी बेटी स्वाति की डॉक्टर बनने के बाद शादी तय होती है तो शादी से कुछ दिन पहले यह पत्र (जो एक माँ ने कभी अपनी नवविवाहिता बेटी को लिखा था उसे

आज वही बेटी अपनी भावी नवविवाहिता बेटी को पढ़ने के लिए) देती है, ताकि वह भी उन गुणों, उन मूल्यों को आजीवन याद रख सके, जिससे ससुराल में वह अपनी जिम्मेदारियों का सम्यक निर्वहन कर सके। (पृ॰ 152)

इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि जगह-जगह पर लेखिका ने इस उपन्यास के प्रसंगों के द्वारा समाज के सभी माता-पिता को मानो अपना संदेश दे दिया है। 'बच्चे का सही मार्गदर्शन करना माता-पिता का कर्त्तव्य है। इसमें सर्वाधिक भूमिका तो माँ की ही होती है, जो हर समय बच्चे की गतिविधियों को देखती है।' (पृ॰ 141) बेटी सौम्या अंतरिक्ष वैज्ञानिक बनने के बाद भी अपनी सहजता को नहीं छोड़ती है। जब वह वापस अपने सम्मान-समारोह में आती है और परिवारजनों से मिलती है तो उसी पुराने अंदाज में नजर आती है। लेखिका ने सौम्या में इस गुण का समावेश कर यह स्पष्ट संदेश दिया है कि हमारे लक्ष्य चाहे जितने भी ऊपर हों, हमारे पाँव जमीन पर ही होने चाहिए।

इस उपन्यास की भाषा-शैली की बात करें तो हम पाएँगे कि लेखिका ने बड़ी ही रोचकता और सहज-सरल शब्दों के साथ इस उपन्यास को रचा है। भाषा में एक विशेष प्रकार की रवानगी है, जो पाठकों के लिए अर्थगम्यता की दृष्टि से बाधक न होकर साधक और सहायक ही है। कुछ पंक्तियों को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है–

'दोनों बहनें देर तक स्नेह-गंगा में गोते लगाती रहीं।' (पृ॰ 153)

'उस समय तो वे दोनों ही कच्ची उम्र के ऐसे पड़ाव पर खड़े थे, जहाँ उन्होंने बड़ों के सहारे से चलना ही सीखा था। यही उम्र तो होती है, जिसमें दिग्भ्रमित होने का भय बना रहता है।' (पृ॰ 154)

'कच्ची उम्र के उस पड़ाव से गुजरकर आज दोनों ही परिपक्व हो गए थे।'...दिलों का यह मेल शायद ऊपर से ही निर्धारित था। दोनों ने दिल में जो अनुभव किया उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाए।' (पृ॰ 155)

'एकांत में बैठकर बातें करते देख भावना को समझने में देर न लगी कि सौम्या व सक्षम के दिलों के तार आज भी जुड़े हैं।' (पृ॰ 156) 'विदाई का समय भी कैसा नाजुक होता है, जब विवाह के समय हँसने-बोलने वाले सभी घरवालों की आँखें गीली हो जाती हैं। माता-पिता के तो कहने ही क्या? जिसे इतने वर्षों तक अपनी पलकों पर बैठकर रखा, उसे दूसरे के हाथों सौंपकर पल में ही विदा कर देते हैं, परंतु यही तो समाज का नियम है। भला बेटी को अपने पास कौन रख पाया है?' (पृ॰ 157)

'सक्षम के लिए स्वीकृति की बात सुनकर आज सौम्या के मन में मम्मी के द्वारा कहे गए वे शब्द गूँजने लगे–'यदि यह आकर्षण नहीं, प्रेम है तो यह समय के साथ-साथ विभिन्न तापों को सहते हुए कंचन की भाँति निखरकर आएगा।' (पृ॰ 159)

'आज मुझे ऐसा अहसास होता है कि सौम्या मेरी पोती ही नहीं, वरन पोता है, जिसने हमारे कुल का नाम रोशन किया है, हमारा मान बढ़ाया है। सच बताऊँ मुझे तो यह सोचकर खुशी होती है कि सौम्या मेरे कुल का चिराग है। सच आज मुझे अहसास होता है कि बेटी-बेटे में कोई अंतर नहीं। संतान तो संतान ही है।' (पृ॰ 170) ऐसे अनेक उदाहरण उपन्यास में भरे पड़े हैं, समय और स्थान की सीमा को ध्यान में रखकर उनमें से कुछ का ही यहाँ उल्लेख किया गया है।

 ISSN 0975-735X

वस्तुत: संवेदनशीलता और भावुकतापूर्ण वातावरण की चरम सीमा को स्पर्श करता यह उपन्यास अंत तक आते-आते अपने दयित्वनिर्वहन के गुणों के कारण विशिष्ट बन जाता है। लगभग आधा दर्जन से भी अधिक उपन्यासों की रचयिता रहीं सुषमा अग्रवाल की लेखनी ने रूढ़ियों का जवाब संयम, धैर्य, अनुशासन, परिश्रम और प्रतिभा के बल पर देने की जो कोशिश की है, वह अत्यंत सराहनीय है। एक समृद्ध शहरी परिवार के ताने-बाने में पुरातन और नवीन विचारों का द्वंद्व जो बेटी-बेटे को लेकर दिखाने की कोशिश लेखिका ने की है और जो कथा को प्रस्तुत करने का, उनसे जूझने, और जूझते हुए उनसे आगे बढ़ने का जो मार्ग ढूँढा है, वह निश्चित रूप से सराहनीय है और अनुकरणीय भी। लेखिका ने पूर्ववर्ती पीढ़ी की रूढ़िग्रस्तता का वर्तमान और भावी पीढ़ियों की रूढ़िमुक्तता में पर्यवसान कराते हुए अंतत: पुरानी पीढ़ियों की मानसिकता-परिवर्तन का उल्लेख कर समाज को स्पष्ट संदेश दे दिया है। मुझे उम्मीद है पढ़ते समय यह उपन्यास पाठकों को पूरी तरह बाँधे रखेगा और अपनी अंतिम परिणति में निश्चय ही एक संतुष्टि की अनुभूति कराएगा। इस महत्त्वपूर्ण उपन्यास की रचना के लिए मैं श्रीमती सुषमा अग्रवाल को हार्दिक साधुवाद देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि भविष्य में भी अपनी लेखनी की इस धार को वे अपनी रचनाओं में कायम रखेंगी।

कुल का चिराग (उपन्यास); लेखिका : सुषमा अग्रवाल; प्रकाशक : गीतिका प्रकाशन, साहित्य विहार, बिजनौर, (उ०प्र०), संस्करण : 2014, पृष्ठ 176, मूल्य : 200 रुपए।

अँधेरे की खिलाफत के कवि : राजेंद्र मिश्र

डॉ॰ रमेश तिवारी

सदियाँ गुजर रही हैं डॉ॰ राजेंद्र मिश्र का सद्य: प्रकाशित कविता-संग्रह है। 81 पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ॰ मिश्र की लेखनी बहुत महीन और दूर तक प्रहार करने में सक्षम है। आत्मकथ्य को 'यह मेरा सफरनामा है' शीर्षक से कवि ने पाठकों के सम्मुख रखा है। वह पाठकों से कहते हैं, 'मैं जानता हूँ जिंदगी एक सफरनामा है, इसके अलावा और कुछ नहीं है।...हम खत्म होना नहीं चाहते, पर खत्म होते हैं। हम जीना चाहते हैं, पर एक दिन ज़िंदगी हमें छोड़ देती है।... हम शुरू होते हैं फिर खत्म होते हैं, बस यही सच है।...यह मेरा सफरनामा होकर भी हर इंसान का सफरनामा है।' (पृष्ठ 5) साहित्य की संभावनाशीलता यही है। साहित्य व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाने में सहायक होता है। व्यक्ति यहाँ समाज का प्रतिनिधि बन जाता है और यहाँ व्यक्ति का संघर्ष समाज के, संस्कृति के संघर्षों की तरह चित्रित किया जाता है। इस आत्मकथ्य से भी यही बात उभरकर सामने आती है। कवि आगे कहता है, 'ये सभी कविताएँ एक जगह होकर भी अलग-अलग हैं। हरेक का अपना सफरनामा है।.....मेरी कविताएँ किताबों में रहकर भी किताब से बाहर जाना चाहती हैं।' (पृष्ठ 6) कवि इस काव्ययात्रा को अपने जीवन के सफरनामे से जोड़कर देखता है। और अपने ही क्यों वह तो इसे अपनी ज़िंदगी के साथ-साथ इंसानों की ज़िंदगी का सफरनामा भी मानता है–'ये मेरी ज़िंदगी का सफरनामा है। ये इंसान की जिदगी का सफरनामा है। सदियाँ गुजर रही हैं, कविताएँ जी रही हैं।...संसार ज़िंदगी का सफरनामा है। ये कविताएँ मेरा सफरनामा हैं। ये मेरी हैं, पर सबकी हैं। सबकी होकर ही मेरी हैं। इसीलिए यह सफरनामा चलता रहेगा।...मैं अपनी दुनिया में रहना चाहता हूँ। मैं यहाँ से नहीं जाना चाहता। पर जिन्होंने मुझे जन्म दिया, जब वे नहीं हैं तो मैं भी नहीं रहूँगा। मैं जानता हूँ कि मैं नहीं जानता, इस सफर के बाद किस सफर में रहना है। किसी सफर में नहीं। बस यही सच है।' (पृष्ठ 6)

'रोशनी अँधेरे में' इस संग्रह की पहली कविता है। यह कविता इस मायने में विशिष्ट है कि यह अंधकार से प्रकाश की ओर न ले जाकर हमें प्रकाश से अंधकार की ओर ले जाते दिखाई देती है–'खिड़कियाँ बंद हैं, दरवाजा खुला है / अपने ही लोगों ने मुझे छला है / मुझमें भय की एक अजीब आँधी पल रही है / यह आखिरी वक्त है / रोशनी अँधेरे में बदल रही है /....सब-कुछ एक धुंध में ढल रहा है / रोशनी में एक अँधेरा पल रहा है' (पृष्ठ 10)

बहुत कम संग्रह ऐसे पढ़ने को मिलेंगे, जिनमें कविता जीवन के अंतिम समय से शुरू हो रही हो, और इसीलिए वर्तमान रोशनीयुक्त होकर भी भावी अँधेरे का भय मौजूद है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस संग्रह के बहाने कवि पूरी-की-पूरी काव्ययात्रा का वर्णन रिवर्स गियर में करना चाहता है। बहरहाल, सच्चाई तो धीरे-धीरे ही सामने आएगी। बहरी परिवेश का आलम यह है कि

 ISSN 0975-735X

'सब तरफ दहशत है / कुछ ठीक नहीं चल रहा है / हर आदमी के भीतर / एक अनजान भय पल रहा है।/ सड़कें सुरक्षित नहीं हैं / लड़कियाँ सुरक्षित नहीं हैं / बच्चे सुरक्षित नहीं हैं / सब जगह एक आतंक का माहौल है /.....हर जगह खामोशी का राग है' (पृष्ठ 11) / ...इस देश की मिट्टी में / सब-कुछ जल रहा है / कुछ ठीक नहीं चल रहा है' (पृष्ठ 13)

कवि की दृष्टि बिलकुल साफ-साफ देख-समझ रही है और पाठकों को समझा रही है। उसके पास 'ज़िंदगी में कुछ न कर पाने का गम है / मेरी आँख नम है /...मुझे इस बात का भय नहीं / कि मेरे जाने का वक्त आ रहा है / दु:ख है इस बात का कि सब-कुछ अधूरा रह गया है / शायद कभी पूरा नहीं होगा' (पृष्ठ 14)

यह जानना बड़ा दिलचस्प है कि ऐसा क्या है, जिसे पूरा न कर पाने का कवि को दु:ख है। 'यदि हमारा अपना एक घर होता / हमारे बच्चे हमारे आसपास होते / हमारी ज़िंदगी में कम-से-कम जो जरूरी होता है / वह सब होता/ हमें अमीरी की नहीं / कम-से-कम सामान्य परिवार की जरूरतें पूरी हों / इस बात की जरूरत थी / मैं वह कुछ नहीं कर पाया' हालाँकि आगे कवि कहता है–'इतना ही है, हमारे पास एक छत है / जैसा भी है, एक फ्लैट है / और ज़िंदगी भर की कमाई के रूप में / मिलनेवाली कुछ पेंशन है।' (पृष्ठ 15)

कुछ लोग चाहें तो कह सकते हैं कि आपके पास इतना तो है। अधिसंख्य मनुष्यों के पास तो यह भी नहीं, तब उनके जीवन का क्या हो? उनके संघर्षों का क्या हो? ऐसा नहीं है कि उनके जीवन-संघर्षों के बारे में कवि की लेखनी मौन है। आगे इस संग्रह में उस सर्वहारा समाज के जीवन-संघर्षों को भी मुखरता से उठाने का कार्य कवि ने किया है। हाँ इतना जरूर है कि शुरुआती कविताओं में उसकी लेखनी अपने जीवन के आखिरी पड़ाव की अनुभूतियों को केंद्र में रखकर सक्रिय रही है। फिर भी उसका जीवन-संघर्ष मात्र अपने लिए नहीं है। वह कहता है–'जो मेरे साथ हैं / उनके लिए कुछ न कर पाने का गम है / सामने अँधेरे में कहीं रोशनी का नामोनिशान नहीं / मेरी आँख नम है' (पृष्ठ 18)

कवि को अब ऐसा लगने लगा है कि वह धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर है–'मैं बाहर से संवाद करने की जगह / अपने भीतर से बात कर रहा हूँ / मुझे लगता है / मैं धीरे-धीरे मर रहा हूँ।' (पृष्ठ 25) आखिर इस मृत्यु का कारण क्या है? इस कविता का शीर्षक ही इसका कारण है। शीर्षक है 'मेरी खामोशी'। ज़िंदगी है तो हरकत भी होगी ही। खामोशी तो मृत होने का ही लक्षण है। कवि इन स्थितियों का बार-बार सामना करता है–'एक संवेदनहीन संसार में / रहते हुए / दर्द का सामना करता हूँ / पता नहीं एक दिन में / मैं कितनी बार मरता हूँ' (पृष्ठ 26)

ऐसा नहीं है कि कवि अपने शुरुआती जीवन से ही ऐसा रहा है। उसने अपने जीवन में विद्रोह का रास्ता भी अख्तियार किया है–'पहले मैं यह सब सोचकर जोर से चीखता था / एक जुनून में उठ खड़ा होता था / इन सबके साथ एक विद्रोह / सब-कुछ बदलने की जिद / मेरे भीतर मचलने लगती थी / पर अब मैं सब-कुछ खामोश होकर देखता हूँ / आक्रोश के बीच भी कुछ नहीं बदला / जूनून भी ठंडा हो गया है / एक सैलाब / कई सलीबों में बदल गया है।' (पृष्ठ 28)

यही वो अनुभव है जो जीवन को अवसाद की ओर ले जा रहा है। वह बार-बार यह सोचने को विवश है कि उसके इस दुनिया से जाने के बाद क्या होगा? 'मेरे जाने के बाद भी कुछ नहीं

बदलेगा / पर जानता हूँ / मेरा जाना भी मेरा जाना नहीं है / एक यात्रा का खत्म होकर भी चलते रहना है / दुनिया इसी तरह की एक यात्रा है / जो चलती रहती है / व्यक्ति के नहीं मनुष्य के साथ/ असंख्य स्त्री-पुरुषों की यात्रा / जीवन-यात्रा है / जो मेरी ज़िंदगी के बाद भी चलती रहेगी' (पृष्ठ 39)

कवि जीवन के अंतिम समय में भी उम्मीदों से लबरेज हो कहता है–'सब-कुछ खोकर भी / बहुत कुछ पाने का जतन है / आखिरी वक्त / अब भी मेरा मुस्कुराने का मन है।' (पृष्ठ 41) एक दुनिया वह जी चुका है और एक दुनिया जो उसके सामने मौजूद है–'एक सारी दुनिया मेरे सामने खड़ी है / मेरी उम्मीद मेरी ज़िंदगी से बड़ी है / मैं अँधेरे में / रोशनी बनकर जीना चाहता हूँ / मैं समुद्र का / सारा पानी पीना चाहता हूँ / मैं सारी मशीनों का सामना कर सकता हूँ/ मैं अवसाद में प्यार का अमृत भर सकता हूँ / आखिरी वक्त ही वह वक्त है / जहाँ से मेरा वक्त शुरू होता है / एक नयी यात्रा की संभावना' (पृष्ठ 42).....

कवि स्वयं को गुजरे जमाने की आवाज नहीं बनाना चाहता है। इसलिए कहता है–'मुझे सदा वर्तमान रहना है / मैं कभी अतीत नहीं हो सकता / अपने वर्तमान में भविष्य की संभावना / यही मेरा रहस्य है, जिसे मैं जान रहा हूँ।' (पृष्ठ 43) कवि सारी उम्र अव्यवस्था से, अज्ञान के अंधकार से लड़ता रहा है। वह कहता भी है–'मैं अँधेरे के खिलाफ लड़ रहा हूँ / मैं ज़िंदगी को/ एक किताब की तरह पढ़ रहा हूँ।' (पृष्ठ 44)

कवि विनाशकारी शक्तियों से लोहा लेकर प्राणप्रण से डटा हुआ है–'मैं कह सकता हूँ / विनाश की हर ताकत से / युद्ध करता हुआ / मैं निर्माण का प्रतीक अब भी बड़ा हूँ।' (पृष्ठ 45) आधुनिकता के साथ-साथ आज के मानव-समाज में अकेलेपन, अजनबीपन की प्रवृत्तियों का भी विस्तार हुआ है। हम सब अपने-अपने स्तर पर कहीं-न-कहीं इस समस्या से जूझते हैं। कवि भी हम सबसे अलग नहीं है बल्कि हमारे ही समाज का हिस्सा है। कविता की पंक्तियों में भी यह पक्ष उभर कर आता है–'यह वक्त हर पल / अपने अकेलेपन से युद्ध करने का है / यह वक्त अपना खालीपन / अपने कर्म से भरने का है। यह वक्त खामोश रहने का नहीं है / यह वक्त भावों में बहने का नहीं है / यह वक्त चुपचाप / जमाने के जुल्मों को सहने का नहीं है।' (पृष्ठ 47)

इस तरह की पंक्तियों को रचकर कवि अपने पाठकों को सक्रिय होने का संदेश देना चाहता है। और इसीलिए आगे लिखता है–'यह वक्त लोगों के बीच रहने का है / यह वक्त दुखी लोगों के दर्द सहने का है। यह वक्त सुंदरता के फूल खिलाने का है / यह वक्त बिछुड़े लोगों को मिलाने का है। (पृष्ठ 48-49)

कवि की नजर ऐसे लोगों पर भी जाती है, जिनके जीवन का मुख्य उद्देश्य दूसरों के दु:ख-दर्द में सहभागी बनना रहा है। कवि ऐसे लोगों के बहाने अपने पाठकों को भी दूसरों के सुख-दु:ख में भागीदार बनाना चाहता है, जिससे पारस्परिक भाईचारे की भावना मजबूत हो सके। वह बिना किसी का नाम लिए सिर्फ गुण के आधार पर उनका उल्लेख अपनी कविता में भी करता है जो दूसरों के सुख-दु:ख के साथी हैं–'वह लगातार बड़ा होता जा रहा है / क्योंकि वह अपनी ज़िंदगी में / सबके साथ खड़ा रहा है / उसमें सबका दर्द रहा है / उसने सबका दर्द सहा है / वह अपने घर में रहकर भी / सबके घर में रहा है। / उसने अपने से भी अधिक / सबका दर्द सहा है।' (पृष्ठ 52)

 ISSN 0975-735X

कहा गया है कि सुख दु:ख सब है समयाधीन, सुख में कभी न गर्वित होना और न दु:ख में होना दीन। इस संग्रह में भी समय की महत्ता को भली-भाँति कवि ने प्रतिपादित किया है– 'संसार की हर चीज / समय की गिरफ्त में है / सब-कुछ जलता है फिर खत्म होता है / समय की गिरफ्त में सब-कुछ समा जाता है / जो आता है / एक दिन चला जाता है।' (पृष्ठ 86) समय की ताकत के आगे किसी की नहीं चलती। समय का चक्र अपनी गति से चल रहा है। हम सबको समय के साथ चलने की जरूरत है। जो समय के साथ नहीं चलता, समय भी उसके साथ नहीं चलता।

समय के साथ चलते-चलते हम कभी भविष्योन्मुखी होते हैं तो कभी अतीतोन्मुखी। और जब कभी हम मानव-सभ्यता के अतीत की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि एक वक्त ऐसा भी था, जब रंगभेद, नस्लभेद चरम पर था। आज अन्य कुरीतियों की तरह ये भी लगभग समाप्तप्राय हैं। किंतु कभी-कभी एकाध घटनाएँ ऐसी दिख ही जाती हैं, जिनसे हमारी चिंताएँ बढ़ जाती हैं। कवि भी यह सब देखता और अपनी कविताओं में दुखी मन से चित्रित करता है–'प्यार सब जगह है / धर्म की दीवारें टूट रही हैं / मनुष्य कहीं भी हो फर्क नहीं है / रंगों के भेद खत्म हो रहे हैं / फिर भी धर्म के लिए / रंग के लिए / अब भी युद्ध हो रहे हैं / यह बात अलग है, लोग यह सब पसंद नहीं करते / एक भी मौत आती है / तो हलचल मच जाती है।' (पृष्ठ 92-93)

कवि ने उम्मीदों के दामन को पूरी ताकत से पकड़ रखा है। उसे पूरी उम्मीद है कि आनेवाला वक्त वर्तमान से बेहतर ही होगा–'मैं नहीं जानता कल क्या होगा / पर जानता हूँ / जो दुनिया मैंने देखी है / वह दुनिया बेहतर होगी / लोग अपनी स्वतंत्रता के लिए / उठकर खड़े होंगे/ अब भीतर का युद्ध / बाहर के युद्ध को खत्म कर देगा / लोग अपनी गुलामी के खिलाफ उठकर खड़े होंगे / अब स्त्रियों को गुलामों की तरह / बेचा नहीं जाएगा / अब बच्चों को सामान की तरह खरीदा नहीं जाएगा /....मेरे बाद की दुनिया बेहतर होगी /...मैं जानता हूँ / कल की दुनिया / मनुष्यता के प्यार से बसाई जाएगी' (पृष्ठ 95)

उम्मीदों का यह मजबूत आधार ही है जो कवि को सक्रिय भी रखता है और उर्जस्वित भी। वरना आज मशीनीकरण के इस दौर में तो सब-कुछ यंत्रवत् हो गया है। जीवन-मूल्य, संवेदनशीलता आदि की बातें आज बेमानी हो रही हैं–'लोग वर्चुअल होकर जी रहे हैं / बिना कुछ हुए सब-कुछ हो रहे हैं।' (पृष्ठ 104) 'सदियाँ गुजर रही हैं' शीर्षक कविता में कवि इन समस्याओं पर बड़ी ही गहराई से विचार करता है–'वे स्त्री हैं / या पुरुष हैं / पर सभी उत्पाद हैं/ इंसानों को यह युग / एक उत्पाद में ढाल रहा है' (पृष्ठ 107-108) यह एक बड़ी समस्या है जिसमें इंसान और इंसानियत को बाजार निगल जाना चाहता है और मनुष्य है कि निरंतर अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है।

हम सबने कई जगह कई बार पढ़ा है कि ये दुनिया एक रंगमंच है और हम सब उस रंगमंच के किरदार। कवि भी इससे सहमति रखता है और कहता है–'मनुष्यों की ज़िंदगी एक मंच की तरह / जहाँ अभिनय करना है / पर यह अभिनय स्वतंत्र नहीं / सारा संचालित है / सब-कुछ निर्धारित है।' (पृष्ठ 109) इसी में आगे कवि कहता है–'इस शो केस में / मनुष्य मशीन में ढल रहा है / रोशनी के भीतर अँधेरा पल रहा है।' (पृष्ठ 110) आज के समाज की सच्चाई यह है कि गुंडों के डर से / शराफत मरती है।' (पृष्ठ 113) आज शराफत की चुप्पी के कारण ही मानवता

खतरे में है। इसी आसन्न संकट को देखकर मुक्तिबोध ने अभिव्यक्ति के खतरों को उठाने और गढ़-मठ सब ढहाने की बात की थी। यह दुनिया दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही है। कवि भी इस बदलाव को लक्षित करता है। किंतु वह जिस बदलाव की चर्चा यहाँ कर रहा है वह दूसरा है और इसका संदर्भ बेहतरी है। 'बदल गई है दुनिया / इसे भीतर के आदमी ने / बदला है / यह भीतर का आदमी / कहाँ है / यह भीतर का आदमी ही / साहित्य है / जो बाजार के आदमी की राजनीति / को बदलता है।'

सुदामा पांडेय 'धूमिल' ने बहुत पहले एक कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक है- रोटी और संसद। यह कविता उस दौर से लेकर आज तक अत्यंत चर्चित है। लगभग उसी तर्ज पर एक कविता यहाँ इस संग्रह में भी है, जिसका शीर्षक है–'मेरे देश की संसद'। इस कविता में देश की संसद और सांसदों के चरित्र पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है–'मेरे देश की संसद बहस नहीं करती / शोर मचाती है / चीखती है, चिल्लाती है / राजनीति करती है / देश की जनता मरती है।. ...लोकतंत्र में स्वतंत्रता / क्या सिर्फ नारा है / शोर है, संसद / अखाड़ा है /... पृष्ठ 131)

एक तरफ इस देश की भूखी-नंगी जनता है दूसरी तरफ इसी देश के करोड़पति नेता हैं। इन दोनों की एक ही समय-समाज में उपस्थिति से विद्रूपता की स्थिति पैदा होती है, जिसे कवि ने अपनी कविता में सामने रखा है–'नेताओं के पास करोड़ों की संपत्ति है / जबकि इस देश का आदमी नंगा है, भूखा है / उसके पास आश्रय गृह भी नहीं है / क्यों लोग फुटपाथ पर सोते हैं / क्यों लोग सड़कों पर भीख माँगते हैं / क्या यह संसद की जिम्मेदारी नहीं / कि जो लोग करोड़ों में खेलते हैं / वे इन लोगों के लिए आश्रय स्थल बनाएँ / रोजगार मुहैया कराएँ।' (पृष्ठ 131)

असल मुसीबत यह है कि जो भी राजनीति के सरोवर में उतरता है, वह भ्रष्ट हो ही जाता है। यदि इस देश की संसद अक्षम, निराश्रित जनों को सहायता देने के लिए पहल करे तो उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाएगा। लेकिन ऐसा निकट भविष्य में तो होता नहीं दिखाई देता है। क्योंकि संवेदनशीलता और मनुष्यता घटी है। चारों तरफ मशीनों और मशीनीकरण का दौर ही चल पड़ा है–'मशीन दृश्य होती जा रही है / 21 वीं सदी में मनुष्यता / अदृश्य होती जा रही है।' (पृष्ठ 142) फिलहाल 'सदियाँ गुजर रही हैं' संग्रह के द्वारा 'अँधेरे के खिलाफ' संघर्षरत इस महत्त्वपूर्ण रचनाकर्म के लिए कविवर राजेन्द्र मिश्र जी को कोटिशः बधाई और साधुवाद।

सदियाँ गुजर रही हैं (कविता-संग्रह), कवि : डॉ॰ राजेंद्र मिश्र; प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, उ॰प्र॰; संस्करण 2015, पृष्ठ 152; मूल्य 300 रुपए।

 ISSN 0975-735X

एक नयी दुनिया बसाने की कोशिश है 'रिश्ते नए अब जोड़िये'

डॉ॰ रमेश तिवारी

हिंदी साहित्य में कविता और उर्दू साहित्य में ग़ज़ल प्रायः एक जैसी गति रखती हैं। इन दिनों ग़ज़लों की परंपरा में एक नया ग़ज़ल-संग्रह पढ़ने का सुअवसर मिला। इस संग्रह का शीर्षक है–रिश्ते नए अब जोड़िए। बिजनौर, उत्तर प्रदेश स्थित वर्धमान कॉलेज के अँग्रेजी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ॰ बलजीत सिंह इसके रचयिता हैं। दीगर बात है कि रचनाकार महाविद्यालय में अँग्रेजी भाषा-साहित्य का प्राध्यापक रह चुका है। भाषा-साहित्य-संस्कृति-समाज-संवेदना की रग-रग से वाकिफ है। इन सबका प्रमाण हम इस संग्रह में मौजूद देख सकते हैं।

एक ऐसा संवेदनशील प्राध्यापक, जिसने समाज को अनगिनत बार, अनगिनत विषयों पर, अनगिनत दृष्टियों के साथ देखा, परखा और प्रस्तुत किया है। इनके लेखन का सर्वोत्तम वैशिष्ट्य जो मुझे समझ में आया, वह यह है कि वे मानव में ही खुदा की तलाश से अपनी रचनाधर्मिता को गति देते हैं और आद्योपांत उस तलाश में ही अपनी मुक्ति भी ढूँढते हैं। ऐसा रचनाकार दुनिया में रहकर भी दुनिया के बंधनों से मुक्त रहता है। अपनी रचनाओं में भी वह पाठकों को यही संदेश देता दिखाई देता है। जीवन में सिद्धांत और व्यवहार की यह एकरूपता रचनाकार की विश्वसनीयता का बहुत बड़ा प्रमाण है और यह विश्वसनीयता ही किसी भी बड़े और उपयोगी साहित्यकार का प्राण-तत्त्व है।

मानवतावादी दृष्टि, संकट में भी ईश्वर के प्रति अटल विश्वास तथा दीनों की सेवा ही दीनबंधु की सेवा है, ये तीन संदेश इस संग्रह में डॉ॰ बलजीत सिंह ने दिए हैं। ग़ज़लकार समाज की वस्तुस्थिति पर सूक्ष्म दृष्टि रखता है। उसकी संवेदनशील सूक्ष्म दृष्टि का ही प्रभाव है कि वह जब-जब अपनी आँखों से इंसानियत को मरते देखता है, उसकी लेखनी मानो स्वतः चल पड़ती है–'आज की दुनिया न जाने किस तरह चलने लगी / इंसा ज़िंदा है, मगर इंसानियत मरने लगी' (पृष्ठ 22) अथवा 'इस कदर उल्फत हुई पैसे से अब इंसान की / अब उसे मस्जिद में भी मौला नजर आता नहीं' (पृष्ठ 40) आदि पंक्तियाँ इसी दृष्टि का परिणाम हैं।

आज का मनुष्य परंपरागत मानवीय दोषों के जंजाल में बुरी तरह उलझ गया है। ये दोष हैं–काम, क्रोध, मद, लोभ, और माया-मोह। माया-मोह के जाल में उलझकर मनुष्य आज तमाम अमानवीय हरकतें करने में भी संकोच नहीं करता। इन विकृतियों पर भी रचनाकार चिंतन करते हुए इन्हें अपनी लेखनी के विषय बनाता है। इन दोषों से समाज को मुक्त कर कवि समाज में

त्याग, परोपकार, सेवा, दान आदि को स्थापित करना चाहता है। तभी तो वह लिखता है–'दिल तुम्हारा गर हकीकत में इबादतगाह है, मुफलिसों को बिन खिलाए खुद को भी खाने न दो। (पृष्ठ 32)

कवि वास्तव में ईशभक्ति, देशभक्ति, परोपकार जनसेवा आदि मानवमूल्यों को समाज में प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसलिए वह निरंतर इन विषयों को अपने लेखन में मुखरता के साथ प्रस्तुत करता है। भूमिका में डॉ॰ हरिश्चंद्र वर्मा ने बिलकुल ठीक लिखा है–'कवि का मूल लक्ष्य है मानव-जीवन को सुसंस्कृत और बेहतर बनाना। जीवनमूल्यों के अनुसरण से ही जीवन को मूल्यवान बनाया जा सकता है–'प्यार, हमदर्दी रहम हर सू अयाँ हों, कुछ सबक ऐसे सिखाना चाहता हूँ।' (पृष्ठ 80)।

कवि को अपनी लेखनी पर पूर्ण विश्वास है–'मेरी ग़ज़लें होंगी एक दिन आला ग़ज़लों में शुमार, क्योंकि खारिज कर रहीं ये हर किसी दिल का गुबार।' (पृष्ठ 55)। रचनाकार पाठकों को ज़िंदगी के असली अर्थ से वाकिफ कराना चाहता है–'ज़िंदगी का अर्थ समझो सीरियस मैटर है ये, गर करीने से जिओ तो स्वर्ग से बैटर है ये। लोग इसमें देखते हैं गम मुसीबत औ' कहर, चश्म-ए-उल्फत से पढ़ो तो एक लव लेटर है ये।' (पृष्ठ 34) अँग्रेजी के शब्दों का इस तरह प्रयोग देखकर हमें पुन: डॉ॰ वर्मा का भूमिका में दिया गया निष्कर्ष यहाँ उल्लेखनीय प्रतीत होता है–'डॉ॰ बलजीत सिंह की ग़ज़लें अनुभूति की गहनता तथा अभिव्यक्ति के अनूठे अंदाज के कारण बेहद प्रशंसनीय हैं।' (भूमिका, पृष्ठ 9)

संसार में दु:ख का एक बड़ा कारण इंसान का मोह ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में लिखा है–'मोह सबहिं ब्याधिन्ह कर मूला / तेहि ते पुनि उपजहिं बहू शूला'। अपने-पराये का मोह ही तमाम दुखों का कारण है, जन्मदाता है। लेखक इस भेद को स्पष्ट करते हुए यह बतलाना चाहता है कि गिले-शिकवे तो अपनों से ही होते हैं न कि गैरों से। ग़ज़ल के माध्यम से रचनाकार कहता है–'गैरों से जहाँ में कभी शिकवे नहीं होते, शिकवे न जिनसे होते वे अपने नहीं होते।'...ग़ज़लकार अपनी लेखनी के प्रति अत्यंत निष्ठावान है। वह स्वयं को उन लोगों से अलग रखता है, जो अपनी लेखनी को धन की लालसा में बेच देते हैं–'होंगे वो और जिनको कुछ सिक्के खरीद लें, जो सच्चे हैं इंसान वे सस्ते नहीं होते।' (पृष्ठ 15) विवेक और बुद्धि तो अनुभव से प्राप्त होनेवाली चीज है। इसे बाज़ार में खरीदा नहीं जा सकता–'किसने 'दानाई' खरीदी है कभी बाजार से, ज़िंदगी की धूप में तपना भी आना चाहिए।' (पृष्ठ 16)

साहित्य हमेशा लोकहित और अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए रचा जाना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो कहीं-न-कहीं अपने समाज और साहित्य के साथ दगा करते हैं। जीवनपथ में संघर्षरत प्रत्येक इंसान को कवि यह स्पष्ट संदेश देता है–'अगर तुग्यानियों (बाढ़) से तू लड़ेगा, खुदा खुद नाखुदा (मल्लाह) तेरा बनेगा। न रखना तू किसी से कोई ख्वाहिश, तुझे सारा जहाँ अच्छा लगेगा। तू दिल की कर दे अंदर तक सफाई, तुझे हर आदमी सच्चा लगेगा। तू खुद को कौम की खातिर लुटा दे, तुझे हर कोई दीवाना कहेगा। न कुछ तू कर सकेगा ज़िंदगी में, अगर सोचा, जमाना क्या कहेगा। खुदा को ढूँढ मत दैर-ओ-हरम में, किसी मुफलिस के दर पर वो मिलेगा।' (पृष्ठ 21)

जीवन को सन्मार्ग पर चलते हुए जीने के इन संदेशों से बढ़कर और कौनसे विषय होंगे

 ISSN 0975-735X

जिन पर रचना की जा सकती है। मेरी दृष्टि में यही इस संग्रह और लेखक की सार्थकता है कि उसने रचनाओं में अपने दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। कवि देखता है कि जो मेहनतकश समाज है वह भूखा है, अभावों से ग्रस्त जीवन जीने को मजबूर है। ये विसंगति उसे चैन से बैठने नहीं देती। वह लिखने को विवश है–'अब मशक्कत के मुकद्दर में लिखी है भुखमरी, देखिये हर-सू खियानत फूलने-फलने लगी।...कवि देखता है कि आज के समाज में इंसान को दुश्मनों से नहीं बल्कि अपने ही भाइयों से खतरा है–'दुश्मनों या गैरों का तो तज्किरा (जिक्र) ही छोड़िए, भाई को भी भाई की बहबूदी (समृद्धि) अब खलने लगी। इन कारणों से यह दुनिया कवि को दोजख से भी बुरी लग रही है। 'पूछिये मत कैफियत 'बलजीत' की इस दौर में, उसको दोजख से भी ये दुनिया बुरी लगने लगी।' (पृष्ठ 22)

गौरतलब है कि तमाम अवरोधों के बावजूद कवि का अपने प्रति भरोसा अभी भी कायम है–'लुट गया सब-कुछ मगर कायम रखा अपना जमीर / इसलिए 'बलजीत' की हर बात ही दमदार है।' (पृष्ठ 24)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की एक कविता बचपन में स्कूल के दिनों में पढ़ी थी, जिसकी याद आ गई है। शीर्षक था 'कुछ काम करो'। उसकी शुरुआती पंक्तियाँ थीं–'नर हो न निराश करो मन को / कुछ काम करो, कुछ काम करो।' इसी में आगे यह पंक्ति थी–'सब जाये अभी पर मान रहे / मरने पर गुंजित गान रहे' प्रकारांतर से अपने संग्रह में डॉ॰ बलजीत सिंह भी यही कहते दिखाई पड़ रहे हैं। इस दृष्टि से यह कहना गलत नहीं होगा कि डॉ॰ बलजीत सिंह की रचनाधर्मिता हिंदी साहित्य के स्वाभाविक विकास-यात्रा का अनुसरण करती है। अपनी ग़ज़लों में डॉ॰ सिंह ने समाज की विकृत तस्वीरों को भी ज्यों-का-त्यों पेश किया है। वास्तव में अपनी इन रचनाओं के द्वारा वे समाज को आईना दिखाना चाहते हैं, जिससे समाज को अपनी हकीकत का पता चल सके और वह उस तस्वीर को सुधारने-बदलने की दिशा में सक्रिय हो। इन पंक्तियों में कहीं-न-कहीं व्यंग्य को भी हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया है–'ज़िंदगी पूरी अगर जीनी है तो ये सीख ले, चाट तलवे माफिया के, बुजदिलों पर हो गरम। कामयाबी गर तुझे दरकार है इस दौर में, भूल तहजीब-ओ-तमीज औ' बन जा पक्का बेशरम। दोस्त का तो गोश्त तक खाने की आदत डाल ले, दौरे नौ (नया दौर) में इससे बढ़कर है नहीं कोई धरम। रास्ता माँ-बाप को दिखला के कह दे अलविदा, ताकि कल के वास्ते पालें न कुछ मन में भरम।' (पृष्ठ 29)

यह आज के समाज का असल चेहरा है। यही नहीं आज के नेताओं की हकीकत भी कवि सामने रखता है–'वो मुल्क बोलो कैसे कर पाएगा तरक्की, लीडर हरेक जिसका कमजर्फ हो गया है।' (पृष्ठ 30) इन तमाम विडंबनाओं भरे समाज को देखकर कवि गमगीन हो कह उठता है–'गमजदा दुनिया ने गमगीं कर दिया 'बलजीत' को, अब उसे तुम कहकहे दो, गम के अफसाने न दो।' (पृष्ठ 32)

हमारे भारतीय सामाजिक चिंतन ने इस दुनिया को एक रंगमंच और मनुष्यों को रंगमंच के पात्रों के रूप में चित्रित किया है। ग़ज़लकार इस परंपरागत विरासत का विस्तार भी इस संग्रह में करता दिखाई देता है–ज़िंदगी है खेल इसको खेलते रहिए हुजूर, जीत जाने पर मगर करना नहीं कत्अन (बिलकुल) गरूर। हारने पर हारना हिम्मत, है खालिस बुजदिली, आज गर हारा है कल को जीत जाएगा जरूर। मान लेगा जो कि दुनिया में मुसल्लम कुछ नहीं, खुद-ब-खुद वह सीख

लेगा ज़िंदा रहने का शऊर।...काम कुछ करना नहीं मौला की मर्जी के खिलाफ, शर्तिया तुझको मिलेगा दिन-ब-दिन दिल का सुरूर।' (पृष्ठ 33)

यह दुनिया एक रंगमंच है, रंगभूमि है हम सब यहाँ अपना-अपना पार्ट अदा करते हैं। हम सबकी डोर ऊपरवाले के हाथ में है। इस परंपरागत किंतु प्रासंगिक उक्ति को यहाँ इन पंक्तियों में प्रभावशाली ढंग से कहने की कोशिश की गई है–'गम के आँसू हैं अगर तो कहकहे भी हैं यहाँ, इसलिए कहते हैं उल्मा (विद्वान) इक बड़ा थ्येटर है ये।' (पृष्ठ 35)। थियेटर रूपी इस दुनिया में हम सबको कैसा रोल अदा करना है, यह भी ग़ज़लों के माध्यम से रचनाकार ने पाठकों को बताने की कोशिश की है–'रोते हुओं को हँसाकर तो देखो, उजड़े घरों को बसाकर तो देखो।...गम से जुदाई के वाकिफ तो हो तुम, बिछड़े हुओं को मिलाकर तो देखो। जानोगे तुम राज मेरी खुशी का, वीरां में गुलशन खिलाकर तो देखो। चिथड़ों से उसके न नफरत करो यों, सीने से उसको लगाकर तो देखो।...महफिल में गाएगे सब संग तुम्हारे, नग्मा कोई गम का गाकर तो देखो।'

कवि पाठकों के लिए आसान विकल्प नहीं देता, बल्कि कठिन रास्तों पर चलने की प्रेरणा देता है–'इधर भी कदम कुछ बढ़ाकर तो देखो, दुश्मन को हमदम बनाकर तो देखो।' (पृष्ठ 37) और 'दुनिया में किसी को भी सताना नहीं अच्छा, रोते हुओं को और रुलाना नहीं अच्छा। जो असलियत है सबको जाहिर हो ही जाएगी, बोलो न बार-बार, जमाना नहीं अच्छा।....बलजीत का है कौल जीयो गैर की खातिर, नेकी जो करो उसको जताना नहीं अच्छा। (पृष्ठ 38)

इसी भावना के वशीभूत अतीत में कभी यह कहा गया होगा कि 'नेकी कर दरिया में डाल'। यहाँ 'जिसके दिल में चाह है वह राह पायेगा जरूर, तू अगर सोया है सोएगी तेरी तकदीर भी। इसमें उस खालिक का या इस खल्क का है क्या कुसूर? 'चंद दिन में अपने भी बेगाने हो जायेंगे सब, गर नहीं सीखा है तूने ज़िंदा रहने का शऊर।... चूम ले चाहे फलक पर, पैर धरती पर रहें, चंदरोजा ज़िंदगी में, किसलिए इतना गुरूर। (पृष्ठ 39)

तात्पर्य यह हुआ कि रचनाकार अपने पाठकों को अहम् से मुक्ति दिलाने हेतु प्रयासरत है। उसे मालूम है कि आज सब-कुछ स्वार्थ-आधारित हो गया है। फिर भी वह हाथ-पर-हाथ धर के बैठता नहीं है। वह तो ऐसे सभी लोगों को, जो अपने लिए सदा से जीते आए हैं अपना नाम सामने रखकर धिक्कारता है–'जीया है हमेशा समाज में ये खुद की ही खातिर, मैं 'बलजीत' को डाँटना चाहता हूँ। (पृष्ठ 44) स्वयं को लक्षित कर अपनी बात कहना बहुत ही सफल और प्रभावशाली तरीका माना जाता है। इसमें गैरों की नाराजगी और गिले-शिकवों का जोखिम भी नहीं रहता। कवि इसी तरीके को यहाँ इस्तेमाल करता है। उसकी पक्षधरता भी बहुत साफ है–'खल्क की खातिर हमें भी कुछ तो करना चाहिए, नेक राहों से कभी पीछे न हटना चाहिए। ...मंजिले मकसूद (गंतव्य) तक जो राह पहुँचाती न हो, उसपे दानिशमंद (बुद्धिमान) को हरगिज न चलना चाहिए। (पृष्ठ 47)

मानव-जीवन जीने के क्रम में हम देखते हैं कि अधिसंख्य मानव ऐसे हैं, जो जीवन से निराश हो चुके हैं। कवि ऐसे सभी निराश लोगों के जीवन में ऊर्जा का संचार करना चाहता है। इसी कोशिश में वह लिखता है–'वक्त तुम पर भी किसी से कम नहीं, हर जगह होते हैं दिन हफ्ते में सात।' यानि सबको एक ही समय मिलता है उसी में कोई अरबपति बन जाता है और कोई कंगाल। यह सब अपनी-अपनी करनी के कारण ही है। इसलिए वह शूरवीरों के साहस को सदा

 ISSN 0975-735X

सलाम करता है, तवज्जो देता है–'चूम लूँ पेशानी उस जाँबाज की, जान दे दी मौत से खाई न मात। मुल्क पर कुर्बान जो भी हो गया, उससे ऊँची और होगी किसकी जात। (पृष्ठ 49) इससे पहले कि मानव-मानव के बीच नफरत की दीवार अभेद्य हो जाए रचनाकार कह उठता है– 'आदमी को आदमी से प्यार करना चाहिए, उसकी खातिर पैदा होना, जीना, मरना चाहिए। आज, कल, परसों या तरसों मौत आयेगी जरूर, एक उस लम्हे से क्यों ताउम्र डरना चाहिए? कवि कहता है कि 'कौम की खिदमत में हर लम्हा गुजरना चाहिए /.....और ..नेकियाँ करने को उसका दिल मचलना चाहिए' (पृष्ठ 50) आज की युवा पीढ़ी अपने माता-पिता बड़े-बुजुर्गों के प्रति उदासीन हो गई है। कवि इस संदर्भ में युवाओं को संबोधित कर कहता है–'आँखों से अपनी गैरों के गम जो भी रो रहा, मेरी नजर में वो भी इक शाइर है, दोस्तो।.... खिदमत जो वालिदेन (माता-पिता) की इस दौर में करे, बेशक वो इबादत के ही काबिल है, दोस्तो। (पृष्ठ 53) कवि इसके आगे भी लिखता है–'हौसले से ऊँचा दुनिया में कोई पर्वत नहीं, कौम पर मरने से बेहतर कोई भी किस्मत नहीं।' कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनको देखकर लिखना पड़ता है–'नीचे दरवाजे से जाने को न वो तैयार हैं, सर झुकाने की उसे अब तक पड़ी आदत नहीं। ....एक से इक ऊँचे दुनिया में बहुत जरदार हैं, खिदमती औलाद से बढ़कर कोई दौलत नहीं। (पृष्ठ 58) आप मानें या न मानें आजकल के बच्चे बहुत जल्दी सयाने और चतुर, व्यावहारिक हो रहे हैं। रचनाकार ने इस परिवेश को भली-भाँति समझ लिया है। इसीलिए वह सभी माता-पिता से कहता है–'घर में अब बातें सँभलकर कीजिएगा, आज के बच्चे सयाने हो गए हैं। (पृष्ठ 60)

बचपन में एक पंक्ति सुना करता था शायद आप लोगों ने भी सुना हो। 'हारिए न हिम्मत बिसारिए न हरि नाम / जाही विधि रखे राम ताही विधि रहिए।' दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर अंतिम वर्ष के विदाई समारोह के बाद अपने एक प्राध्यापक डॉ॰ श्रीनिवास शर्मा ने मेरी कॉपी पर आशीर्वचनस्वरुप जब इन्हीं पंक्तियों को लिखा तो स्मृति और ताजा हो गई। किसी भी इंसान को प्रेरणा देने के लिए यह एक अच्छी और उपयोगी पंक्ति हो सकती है। प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त डॉ॰ बलजीत सिंह भी मानो अपने पाठकों को प्रेरणा देते हुए कुछ ऐसे ही भाव इन पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं–'हौसला पर्वत-सा ऊँचा कीजिए, आसमाँ को भी चुनौती दीजिए। ... हस्बमंशा (इच्छानुसार) गर न पाई ज़िंदगी, जिस तरह रक्खे खुदा, रह लीजिए। (पृष्ठ 61) इस संग्रह के रचनाकार के लेखन का उत्स मात्र यह है कि 'ज़िंदगी बेहतर बनाना चाहता हूँ, इक नई दुनिया बसाना चाहता हूँ।...आदमी में अब कहाँ है आदमीयत, अब दरिंदे आजमाना चाहता हूँ। देखिए सूरत सभी रोनी हुई है, सबको हँसना मैं सिखाना चाहता हूँ। जर, जमीं, जन में सुकूँ मिलता नहीं है, राज ये सबको बताना चाहता हूँ। प्यार, हमदर्दी, रहम हर सू अयां हों, कुछ सबक ऐसे सिखाना चाहता हूँ। (पृष्ठ 80)। ऐसे समाजोपयोगी जीवनमूल्यों के अनुकरण की प्रेरणा देनेवाले ग़ज़ल-संग्रह के लिए डॉ॰ बलजीत सिंह निश्चय ही साधुवाद के अधिकारी हैं।

रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें), रचनाकार : डॉ॰ बलजीत सिंह; प्रकाशक : गीतिका प्रकाशन, साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰), संस्करण : 2015, पृष्ठ 96, मूल्य : रु.200 रुपए।

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

• **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा**	150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय**	300.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर**	500.00
अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल**	400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति**	450.00
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी**	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार**	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰**	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	350.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी**	450.00

 ISSN 0975-735X

साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान ● **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00

लोकरंगमंच के विविध आयाम ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 200.00

देवबंद की स्वांग-परंपरा ● **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा** 200.00

एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ ● **डॉ॰ शंकर क्षेम** 150.00

ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ ● **अनिरुद्ध सिन्हा** 150.00

समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) ● **डॉ॰ ज्योति व्यास** 150.00

कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल** 300.00

जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार ● **डॉ॰ अशोककुमार** 350.00

बिजनौर क्षेत्रा की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 500.00

आस्थावाद एवं अन्य निबंध ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00

साहित्य और संस्कृति ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00

हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद ● **डॉ॰ आशा रावत** 350.00

आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य ● **डॉ॰ प्रेम जनमेजय** 500.00

हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष ● **विनोदचंद्र पांडेय** 300.00

हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान ● **डॉ॰ स्वाति शर्मा** 450.00

भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव ● **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन** 300.00

हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति ● **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात** 495.00

हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास ● **रवींद्र प्रभात** 300.00

सूरदास का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु** 250.00

हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु** 500.00

साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन ● **डॉ॰ मीनल रश्मि** 250.00

समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना ● डॉ॰ शीला गहलौत 500.00

हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ ●डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि 500.00

नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक ● डॉ॰ अशोक उपाध्याय 200.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 700.00

साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00

वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष ● **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00

फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता**	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • **डॉ॰ शिवशंकर लधवे**	200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना • **डॉ॰ अनीता रानी**	400.00
सृजन और साहित्य • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	400.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ शशिप्रभा**	450.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	165.00
समालोचना के फलक • **डॉ॰ बागेश्री चक्रधर**	300.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	600.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (एक) • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (दो) • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (तीन) • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (चार) • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल • **डॉ॰ रमेश तिवारी**	400.00
हिंदी ग़ज़ल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल • **डॉ॰ पूनम अग्रवाल**	595.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ • **गिरीश पंकज**	200.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00

 ISSN 0975-735X

लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
चुटपुटकुले • **अशोक चक्रधर**	60.00
तमाशा • **अशोक चक्रधर**	60.00
सो तो है • **अशोक चक्रधर**	60.00
हँसो और मर जाओ • **अशोक चक्रधर**	60.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	200.00
धमकीबाज़ी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	200.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	220.00

आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	250.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा**	200.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा**	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्रा • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा**	200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय**	200.00
ज़िंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
सावधान पुलिस मंच पर है • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक थी माया • **विजयकुमार**	200.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल**	200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज**	200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	250.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल**	150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • **मीना अग्रवाल**	200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी**	200.00
एक बौना मानव • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
इमराना हाज़िर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता**	120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा**	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद**	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी**	200.00
अंतराल • **संगीता**	200.00
भाँति-भाँति की मानुसी • **अंशु त्रिपाठी**	250.00

 ISSN 0975-735X

लड़की हँस रही है • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	300.00
आत्मकथा का कोलाज • **नीलम चतुर्वेदी**	200.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र**	450.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा • **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा • **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00

एकांकी-नाटक

• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00

हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक ● **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी ● **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
दमन ● **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष ● **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी ● **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग ● **राजेन्द्र मिश्र**	200.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन ● **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है ● **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी ● **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने ● **बाबूसिंह चौहान**	100.00
पीठ पर नील गगन ● **बाबूसिंह चौहान**	100.00
अनुभव के पंख ● **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00
मेरे साक्षात्कार ● **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना ● **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फूलों की महक ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
संवाद साहित्यकारों से ● **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया**	200.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.000
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
कोई आवाज़ देता है ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
दिन दिवंगत हुए ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
पर्स पर तितली (हाइकु) ● **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00

भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी • **गीतिका गोयल**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	150.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
आठवाँ राग • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
हवाएँ खामोश हैं • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
सदियाँ गुजर रही हैं • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
उजियारा आशाओं का • **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की • **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है • **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष • **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग • **तारा प्रकाश**	200.00
तारा प्रकाश समग्र • **तारा प्रकाश**	600.00
शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00

ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
सुरों के ख़त • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
एक मुट्ठी धूप • **नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • **डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
मानव तू जग में सुंदरतम • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00

अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अनजाने आकाश में • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
बातें कुछ अनकही • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
मैंने देखा है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
हौसला तो है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
ज़िंदगी रुकती नहीं • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
जज़्बात की धूप • **धूप धौलपुरी**	250.00
मैं एक समुद्र • **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • **नवलकिशोर शर्मा**	180.00
जब चाँद डूब रहा था • **नवलकिशोर शर्मा**	200.00
एड्स शतक • **पूरणसिंह सैनी**	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	300.00
श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	800.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
राष्ट्र-शक्ति • **सलेकचंद संगल**	150.00
माँ तुझे प्रणाम • **सलेकचंद संगल**	150.00
लहरों के विरुद्ध • **डॉ॰ रामप्रकाश**	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • **महेंद्र कुमार**	200.00
पीड़ा का राजमहल • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	200.00
उड़ान जारी है • **विनोद भृंग**	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • **रामेश्वर वैष्णव**	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
धनुषभंजक राम • **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
कविताएँ फेसबुक से • **लालित्य ललित**	200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं • **लालित्य ललित**	200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द • **लालित्य ललित**	200.00
एक कुल्हड़ चाय • **स्वर्ण ज्योति**	200.00
रात • **दामोदर खड़से**	200.00
झरनों का तराना है • **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
अहसासों के ताने-बाने • **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
विरमाल गीत समग्र • **सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल**	500.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • **काका हाथरसी**	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेन्द्र उपाध्याय**	250.00
आत्मसरोवर • **ओम्प्रकाश अग्रवाल**	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती • **नीरजा द्विवेदी**	250.00
सफ़र साठ साल का • **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)**	400.00
यादों की गुल्लक • **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)**	300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**	200.00
उत्तरोत्तर • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
श्रद्धांजलि • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी**	200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग**	200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग**	200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल**	200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल**	200.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल**	200.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
पार्टी गेम्स • **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव • **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	200.00
गधा बत्तीसी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्र • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00

ISSN 0975-735X

चिड़ियों की दुनिया रंगीन ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
Tiny -Tots in Forest ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ ● **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत ● **बालकृष्ण गर्ग**	500.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन ● **डॉ॰ सरिता शाह**	200.00
● **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
● **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
अमृतवाणी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदांत दर्शन ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता ● **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ● **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas ● **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232

09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2

सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, फोन : 0562-2530684,
वेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई॰ में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र– दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में है।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी-शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रावृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

शिक्षणपरक कार्यक्रम :

(1) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (2) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (3) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (4) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (5) जनसंचार एवं पत्राकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधानपरक कार्यक्रम :

(1) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (2) हिंदीभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (3) हिंदीभाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (4) हिंदीभाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (5) हिंदी का समाज भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (6) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

 ISSN 0975-735X

शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास :

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्रा के विद्यालयों के लिए हिंदी-शिक्षण सामग्री निर्माण, (2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (3) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (4) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (5) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (6) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन :

हिंदीभाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रौमासिक पत्रिका-'गवेषणा', 'मीडिया', और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय :

भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाशिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्रा-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय :

हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ :

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत, ■ अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी॰ए॰ का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ, ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू॰एस॰ए॰, यू॰के॰, मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोकसाहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, कें॰हिं॰शि॰मं॰
ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय
निदेशक